भारत सरकार के विधि एवं न्याय मंत्रालय द्वारा पुरस्कृत

भारतीय वन अधिनियम मीमांसा

(Indian Forest Act–A critical Study)

लक्ष्मण सिंह खन्ना
I.F.S. (Retd.)

प्रकाशक

खन्ना बन्धु

७ तिलक मार्ग, देहरादून

भारतीय वन अधिनियम मीमांसा

लेखक की अन्य पुस्तकें

हिन्दी में—

(१) वन वर्धन [Silviculture]

(२) वन विज्ञान (वन वर्धन पद्धतियाँ, वन मापिकी तथा वन प्रबन्ध) [Forestry dealing with Silvicultural systems, Forest mensuration and Forest management]

(३) वन उपयोग [Forest Utilization] 'पुरस्कृत'

(४) वन अभियांत्रिकी (भवन निर्माण) [Forest Engineering (Building Construction)]

(५) वन सर्वेक्षण [Forest Survey]

(६) वन मार्ग तथा पुल [Forest Roads and Bridges] 'पुरस्कृत'

(७) वन रक्षण [Forest Protection]

वन जीव संस्करण तथा प्रबन्ध **पुरस्कृत**

अंग्रेजी में—

1. Principles and Practice of Silviculture
2. Forest Protection
3. Theory and Practice of Silvicultural Systems (सहलेखक के रूप में)
4. Forest mensuration " " "

भारत सरकार के विधि एवं न्याय मंत्रालय द्वारा पुरस्कृत

भारतीय वन अधिनियम मीमांसा

(Indian Forest Act–A critical Study)

लेखक

लक्ष्मण सिंह खन्ना

I.F.S. (Retd.)

प्रकाशक

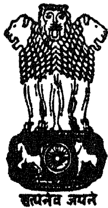
खन्ना बन्धु

७ तिलक मार्ग, देहरादून

प्रथम संस्करण—१९७३
द्वितीय संस्करण—१९७७
तृतीय संस्करण—१९८२ (पूर्ण रूप से पुनरीक्षित तथा परिवर्धित)

मूल्य : 15 रुपये

मुद्रक : जुपिटर ऑफसैट प्रेस, शाहदरा, दिल्ली-110032.



HIGH COURT OF MADHYA PRADESH
JABALPUR
3. 3. 1973

प्राक्कथन

श्री लक्ष्मण सिंह खन्ना ने अपने ३० वर्षीय सेवा काल में वन अपराधों के अभियोजन में रुचि लेकर तथा विधि सम्बन्धी अनेक पुस्तकों का अध्ययन करके जो वन अधिनियम सम्बन्धी ज्ञान एवं अनुभव अर्जित किया वह इस पुस्तक के रूप में मूर्तिमान है।

यह पुस्तक वन अधिकारियों और कर्मचारियों को भारतीय वन अधिनियम समझने में तथा उसकी विभिन्न धाराओं के अधीन न्यायालयों में वाद चलाने में अपेक्षित तथ्यों को प्रस्तुत करने की आवश्यकता समझने में सहायक होगी। वन कर्मचारियों को वन अपराध सम्बन्धी वाद न्यायालय में चलाने पड़ते हैं। अंग्रेजी का पर्याप्त ज्ञान न होने के कारण वे वन अधिनियम की विभिन्न धाराओं का अर्थ भली प्रकार नहीं समझते हैं। कुछ को यह भी ज्ञान नहीं होता कि वन अधिनियम की धाराओं में लिखे विभिन्न शब्दों में से कौन से शब्द अपराध रिपोर्ट में लिखें कि उनका वाद न्यायालय में सफल हो जावे, क्या-क्या अभिलेख उन्हें न्यायालय में अपने पक्ष की पुष्टि में प्रस्तुत करना चाहिए, इत्यादि।

इस पुस्तक के लिखने में लेखक ने विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा वन अपराधों के सम्बन्ध में दिए गए विद्वतापूर्ण निर्णयों की सहायता ली है और विभिन्न धाराओं की टिप्पणी लिखते समय उनका उल्लेख भी किया है जिससे पुस्तक की उपयोगिता बहुत बढ़ गई है।

निःसन्देह लेखक ने अथक परिश्रम करके इस सर्वोपयोगी पुस्तक की रचना की है। मेरा विश्वास है कि यह सभी वन-अधिकारियों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

शिवदयाल श्रीवास्तव

प्रथम संस्करण की भूमिका

वन कर्मचारियों को अपने सेवाकाल में वन अपराधों को रोकने तथा उनके हो जाने पर उनके अभियोजन का कार्य करना पड़ता है। यह कार्य वे दक्षतापूर्वक तभी कर सकते हैं जब उन्हें विधि का पर्याप्त ज्ञान हो।

दुर्भाग्य से हिन्दी में विधि पुस्तकों का नितान्त अभाव है। इसका परिणाम यह होता है कि अंग्रेजी का पर्याप्त ज्ञान न रखने वाले कर्मचारियों का विधि सम्बन्धी ज्ञान परम्पराओं पर तथा सुनी सुनाई बातों पर निर्भर रहता है। निश्चय ही, यह स्थिति बहुत असन्तोष जनक है और इसका परिणाम यह होता है कि अधिकांश अभियुक्त न्यायालय से विमुक्त हो जाते हैं। इस कमी को पूरा करने के उद्देश्य से ही इस पुस्तक को लिखने का प्रयास किया गया है जिससे वन कर्मचारियों को भारतीय वन अधिनियम की विभिन्न धाराओं का पूर्ण ज्ञान हो जावे, उनके अधीन किसी वाद को सफलता पूर्वक चलाने के लिए वे अपराध रिपोर्ट ठीक प्रकार लिख सकें तथा अभियोजन के लिए अपेक्षित साक्ष्य और अभिलेख न्यायालय में प्रस्तुत कर सकें।

इस पुस्तक को लिखने में मैंने अंग्रेजी में विधि सम्बन्धी अनेक पुस्तकों के अध्ययन तथा अपने ३० वर्ष के सेवाकाल के अनुभवों का लाभ उठाया है। साथ ही, विभिन्न उच्च न्यायालयों में वन वादों पर दिए गए विद्वतापूर्ण निर्णयों का अध्ययन कर उनके द्वारा भारतीय वन अधिनियम की विभिन्न धाराओं के अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। यह सब करने के बाद भी मैं इस पुस्तक को न्यायमूर्ति श्री शिवदयाल श्रीवास्तव, न्यायाधीश उच्च-न्यायालय, मध्यप्रदेश के मार्ग-दर्शन और प्रोत्साहन के बिना इस रूप में लिखने में सफल न होता। इस पुस्तक की पाण्डुलिपि आद्योपान्त पढ़कर उन्होंने बहुमूल्य सुझाव दिए जिनके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ। उन्होंने इस पुस्तक का प्राक्कथन लिखकर मुझे जो प्रोत्साहन दिया उसे मैं इस छोटे से प्रयास का बहुमूल्य पुरस्कार मानता हूँ।

यह पुस्तक वन कर्मचारियों और प्रशिक्षणार्थियों की आवश्यकता कहाँ तक पूरी करती है, इसका निर्णय तो सहृदय पाठक और सुविज्ञ प्रशिक्षक ही करेंगे। यदि यह पुस्तक वन कर्मचारियों और प्रशिक्षणार्थियों की आवश्यकता कुछ सीमा तक भी पूरी कर सके तो मैं अपने प्रयत्न को सफल समझूँगा। मेरी विनम्र प्रार्थना है कि वन विद्यालयों के सुविज्ञ प्रशिक्षक तथा अनुभवी वन अधिकारी-गण इस पुस्तक की त्रुटियों की ओर मेरा ध्यान आकर्षित कर और इसको सुधारने के लिए रचनात्मक सुझाव भेजकर मुझे अनुगृहीत करेंगे।

देहरादून
१६ मार्च, १६७३

लक्ष्मण सिंह खन्ना

तृतीय संस्करण की भूमिका

भारतीय वन अधिनियम मीमांसा के प्रथम दो संस्करण वन अधिकारियों, प्रशिक्षणार्थियों तथा न्यायालयों में वन अपराधों से सम्बन्धित अभिवक्ताओं में बहुत लोकप्रिय रहे। इस पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने के लिए इसका तीसरा संस्करण पूर्णतया पुनरीक्षित तथा परिवर्धित किया गया है। इस संस्करण की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

(i) प्रस्तावना शीर्षक वाले प्रथम अध्याय में सम्पत्ति तथा अधिकार के सम्बंध में संक्षिप्त ज्ञान, वन शिक्षा में वन विधि के अध्ययन का महत्व, आदि विषय बढ़ा दिए गए हैं।

(ii) भारतीय वन अधिनियम का भारत सरकार द्वारा तैयार किया गया हिंदी पाठ तथा विभिन्न धाराओं में राज्य सरकारों द्वारा किए गए अद्यतन (uptodate) संशोधन दिए गए हैं।

(iii) १९८० तक के उच्च न्यालयों के निर्णयों के आधार पर विभिन्न धाराओं की टिप्पणी में संशोधन कर दिया गया है।

(iv) आरक्षित वन, ग्राम वन तथा संरक्षित वनों का अन्तर स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है।

(v) दण्ड प्रक्रिया सम्बंधी महत्त्वपूर्ण पदों का अन्तर स्पष्ट किया गया है।

(vi) भारत सरकार के विधि एवं न्याय मंत्रालय द्वारा प्रकाशित विधि शब्दावली का प्रयोग किया गया है।

आशा है, इस नए रूप में यह पुस्तक अधिक लाभदायक सिद्ध होगी।

विजय दशमी
२७-१०-८२

लक्ष्मण सिंह खन्ना

विषय-सूची

अध्याय १

प्रस्तावना

सम्पत्ति

किसी भी सम्पत्ति, चाहे वह व्यक्तिगत हो या सार्वजनिक, के स्वामित्व, उपयोग, प्रबन्ध तथा अस्तित्व के रक्षण के लिए किसी लोक विधि की आवश्यकता होती है। वन भी एक सार्वजनिक सम्पत्ति है; अतः उसके लिए भी एक विशिष्ट विधि की आवश्यकता पड़ी। इस विधि का अध्ययन करने से पूर्व सम्पत्ति का कुछ ज्ञान आवश्यक है।

सम्पत्ति शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त होता है। एक ओर वह उन मूर्त वस्तुओं के लिए प्रयुक्त होता है, जिनसे उनका स्वामी दूसरों को अपवर्जित (exlcude) कर सके, जिनको वह बेच या नष्ट कर सके और जो मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी को मिल सके, जैसे भूमि, भवन, पशु आदि। दूसरी ओर, इस शब्द में वे सभी अधिकार आते हैं जो किसी व्यक्ति के पास हों।

सम्पत्ति का वर्गीकरण—सामान्यतया सम्पत्ति, मूर्त सम्पत्ति और अमूर्त सम्पत्ति वर्गों में विभाजित की जाती है। **मूर्त सम्पत्ति में समस्त भौतिक वस्तुएँ सम्मिलित होती हैं।** गोचर अस्तित्व के कारण इसे **गोचर सम्पत्ति** भी कहते हैं। ऐसी वस्तुओं के समग्र उपयोग का अधिकारी उनका स्वामी कहलाता है और ये वस्तुएँ उसकी सम्पत्ति कहलाती हैं। सामण्ड के अनुसार **मूर्त सम्पत्ति भौतिक वस्तुओं में स्वामित्व का ऐसा अधिकार है जो सामान्य, स्थायी और दाय योग्य या विरासत में मिलने योग्य होता है।** इस परिभाषा में प्रयुक्त 'सामान्य' शब्द का अर्थ यह है कि वह अधिकार अबाधित, आत्यन्तिक (absolute) और असीमित नहीं है। यदि आवश्यक हो तो समाज के हित में उस पर निर्बन्धन अधिरोपित किए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए भारतीय वन अधिनियम १९२७ की धारा ३५ के अधीन सरकार बाढ़, भूमि-स्खलन; आदि से रक्षा, झरनों, नदियों आदि में जल पूर्ति बनाए रखने तथा पथों, पुलों, रेलों और संचार के अन्य मार्गों के संरक्षण के उद्देश्य से किसी प्राइवेट वन के स्वामी को अपने वन या बंजर-भूमि में भूमि तोड़ने, ढोर चराने या वनस्पति साफ करने या जलाने को विनियमित या प्रतिषिद्ध कर सकती है।

मूर्त सम्पत्ति, (i) जंगम या चल और (ii) स्थावर या अचल दो प्रकार की हो सकती है। भारत के विभिन्न अधिनियमों में जंगम तथा स्थावर सम्पत्ति की स्पष्ट परिभाषा न देकर उनमें समाविष्ट वस्तुओं का उल्लेख है। भारतीय दण्ड संहिता १८६० की धारा २२ के अनुसार जंगम सम्पत्ति के अन्तर्गत हर भाँति की मूर्त सम्पत्ति आती है किन्तु भूमि और वे चीजें जो भू-बद्ध हों या भू-बद्ध किसी चीज से स्थायी रूप से जकड़ी हों, इसके अन्तर्गत नहीं आतीं। इस परिभाषा में 'बद्ध' शब्द से संकेत मिलता है कि वस्तुएँ पृथक भी की जा सकती हैं और ऐसा होने पर वे जंगम बन जाती हैं। अनेक वादों (cases) में यह निर्णय दिया गया है कि भूमि का कोई भाग, (जैसे—रेत, पत्थर, चिकनी मिट्टी, खनिज पदार्थ आदि) भूमि से खोदकर पृथक कर दिए जाने पर चोरी का विषय होने योग्य जंगम सम्पत्ति हो जाता है। सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम १८८२ की धारा ३ के अनुसार स्थावर सम्पत्ति के अन्तर्गत खड़ा काष्ठ, उगती फसलें या घास नहीं आतीं। इन परिभाषाओं से स्पष्ट है। कि भू-बद्ध रहने तक वृक्ष स्थावर सम्पत्ति है परन्तु पातन होते ही वह जंगम सम्पत्ति बन जाता है। इसी प्रकार फल, बीज, लीसा, गोंद आदि जब तक वृक्षों में हैं या लगे हैं, स्थावर सम्पत्ति हैं परन्तु तोड़ते या निकालते ही वे जंगम सम्पत्ति बन जाते हैं।

अमूर्त सम्पत्ति वह सम्पत्ति है जिसका कोई मूर्त स्वरूप न हो। गोचर न होने के कारण इसे अगोचर सम्पत्ति भी कहते हैं। यह भौतिक वस्तुओं में उन हितों और अधिकारों जिन्हें विधि मान्यता देती या संरक्षण प्रदान करती है, के रूप में होती है; जैसे पेटेन्ट, पट्टे, अधिसेविताएँ (servitude) आदि।

सम्पत्ति अर्जन करने की रीतियाँ—सम्पत्ति निम्नलिखित रीतियों से अर्जित की जा सकती है :

(१) **कब्जा—कब्जा वह स्थिति या शक्ति है जिसके कारण किसी व्यक्ति का किसी मूर्त सम्पत्ति पर ऐसा स्वामित्व हो जिससे वह उसके साथ अपनी इच्छानुसार तथा अपने प्रसादानुसार व्यवहार कर सके और दूसरों को उसमें बाधा पहुँचाने से अपवर्जित कर सके।** विधि कब्जे को भली भाँति सुरक्षा प्रदान करती है। किसी दूसरे के कब्जे में की सम्पत्ति में प्रवेश करना भारतीय दण्ड संहिता १८६० की धारा ४४१ के अधीन दण्डनीय है। कब्जा वास्तविक स्वामी को छोड़ सभी के विरुद्ध श्रेष्ठतर दावा है। कब्जे का महत्त्व इस लोकोक्ति से स्पष्ट है कि कब्जा सच्चा दावा झूठा या कब्जा ०·९ विधि है। कब्जा स्वत्व का मूल है। एक विहित अवधि तक बिना विघ्न बाधा या रुकावट के किसी वस्तु पर कब्जा रहने से कब्जाधारी को उस वस्तु का स्वामित्व चिरभोग द्वारा मिल जाता है।

(२) **चिरभोग (prescription)—चिरभोग अधिकारों को करने और उन्हें नष्ट करने में समयावसान के परिणाम को कहते हैं।** इसका तात्पर्य यह है कि निर्दिष्ट अवधि तक बिना बाधा किसी अधिकार का प्रयोग करने से उसमें हक की सृष्टि

होती है और यदि निर्दिष्ट अवधि तक किसी अधिकार का प्रयोग न किया जाये तो वह नष्ट हो जाता है।

(३) **करार** (agreement)—**हर एक वचन और ऐसे वचनों का हर एक संवर्ग, जो एक दूसरे के लिए प्रतिफल** (consideration) **हो, करार है।** दूसरे शब्दों में, **करार विधि में ऐसा कार्य है जिसके द्वारा दो या अधिक व्यक्ति किसी कार्य या बात के, एक या उनमें से किसी व्यक्ति द्वारा दूसरे या उनमें से अन्यों के उपयोग के लिए किए जाने या किए जाने से प्रविरत** (abstain) **रहने के बारे में अपनी सम्मत्ति घोषित करते हैं।** प्रत्येक करार में एक पक्षकार द्वारा प्रस्थापना (proposal या offer) की जाती है और दूसरे पक्षकार द्वारा उसका प्रतिग्रहण होता है। उदाहरण के लिए, किसी नीलाम में किसी लॉट की सर्वाधिक बोली उस लॉट के सम्बन्ध में किसी ठेकेदार की प्रस्थापना है और जब वह प्रस्थापित मूल्य वन अधिकारी द्वारा प्रतिगृहीत कर लिया जाता है तो वह करार हो जाता है। इस प्रकार वह पूर्ववर्ती स्वामी की सहमति से एक हक अर्जित करने का एक साधन है।

वह करार, जो विधितः प्रवर्तनीय (enforceable) हो, **संविदा** (contract) कहलाता है। इस प्रकार करार संविदा से अधिक व्यापक शब्द है। संविदा में करार के मूलतत्वों के साथ विधि द्वारा प्रवर्तनीय कोई बाध्यता भी होनी चाहिए। उदाहरण के लिए यदि क और ख में यह करार है कि क ख के लिए एक भवन निर्माण करेगा और ख क को बीस हजार रुपया देगा तो यह संविदा है क्योंकि इस करार के कारण ख क के द्वारा किये जाने वाले किसी कार्य का हकदार बनता है। जब करार किसी व्यक्ति को इस बात के लिए समर्थ बनाता है कि वह दूसरे व्यक्ति को कोई कार्य करने या न करने के लिए विधि पूर्वक बाध्य कर सके, तो वह संविदा कहलाता है। इस प्रकार जहाँ सब संविदा करार होते हैं, सब करार संविदा नहीं होते।

(४) **विधिमान्य संविदा के मूलतत्त्व**—विधिमान्य संविदा में नीचे लिखे मूलतत्त्व होने चाहिए :

(i) **उसमें करार होना चाहिए**—विधिमान्य संविदा में करार होना चाहिए अर्थात् उसमें दो पक्षकार होने चाहिए। उनमें से एक द्वारा प्रस्थापना होनी चाहिए और दूसरे द्वारा उसका प्रतिग्रहण।

(ii) **दोनों पक्षकार संविदा करने के लिए सक्षम होने चाहिए**—विधि मान्य संविदा का दूसरा मूलतत्त्व यह है कि करार उन व्यक्तियों द्वारा किया जाना चाहिए जो संविदा करने के लिए सक्षम हों अर्थात्, वे प्राप्तवय हों, स्वस्थचित्त हों और किसी विधि द्वारा संविदा करने के लिए निरर्हित (disqualified) न किए गए हों।

(iii) **विधिक सम्बन्ध करने का आशय**—पक्षकारों में किसी विधिक सम्बन्ध सृष्ट या स्थापित करने का आशय होना चाहिए। यदि वे कोई विधि-विरुद्ध

या अनैतिक सम्बन्ध स्थापित करने का करार करते हैं तो वह करार संविदा नहीं होगा।

(iv) **प्रतिफल और उद्देश्य विधि पूर्ण होने चाहिए**—कोई करार तब तक संविदा नहीं होता जब तक वह विधि पूर्ण उद्देश्य से और विधि पूर्ण प्रतिफल के लिए न किया गया हो। उदाहरण के लिए यदि **क ख** को एक सरकारी पद दिलाने का वचन देता है और उसके प्रतिफल के रूप में **ख क** को एक हजार रुपया देने का वचन देता है तो यह करार शून्य है क्योंकि इसका प्रतिफल विधि विरुद्ध है।

(v) **पक्षकारों की स्वतन्त्र सम्मति आवश्यक**—करार पक्षकारों की स्वतन्त्र सम्मति से किया जाना चाहिए। सम्मति स्वतन्त्र तभी कही जाती है जब वह प्रपीड़न, असम्यक् असर, कपट, दुर्व्यपदेशन (misrepresentation) या भूल से कारित न कराई गई हो।

(vi) **संविदा लिखित होनी चाहिए**—संविदा लिखित होनी चाहिए, वह अनुप्रमाणित होनी चाहिए और यदि विधि द्वारा अपेक्षित हो तो उसका रजिस्ट्रीकरण होना चाहिए।

(vii) **संविदा शून्य** (void) **करार के प्रवर्ग में नहीं आनी चाहिए**—संविदा भारतीय संविदा अधिनियम १८७२ में वर्णित शून्य करारों के प्रवर्ग में नहीं आनी चाहिए।

(४) **विरासत**—विरासत का अर्थ है किसी व्यक्ति की मृत्यु के बाद उसकी सम्पत्ति उसके विधिक उत्तराधिकारी को मिलना।

अधिकार

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति का आचरण विनियमित तथा नियंत्रित हो। तात्पर्य यह है कि उसके कार्य अनुज्ञात (permitted) या (allowed) होने चाहिए जिससे समाज में नैतिक या विधिक दृष्टि से उच्छृंखलता न आ जावे। यही अनुज्ञात कार्य अधिकार होते हैं। जिन कार्यों को समाज का समर्थन प्राप्त होता है वे नैतिक अधिकार कहे जाते हैं और जिन कार्यों को विधि का समर्थन प्राप्त होता है वे मनुष्य के विधिक अधिकार कहे जाते हैं।

विधिक अधिकार कई प्रकार से वर्गीकृत किए जाते हैं। वनविधि की दृष्टि से उनका स्ववस्तु (*re-propria*) में अधिकार और पर-वस्तु (*re-aliana*) में अधिकार में वर्गीकरण महत्वपूर्ण है। स्व-वस्तु में अधिकार का अर्थ किसी व्यक्ति का अपनी वस्तु में अधिकार होता है। इसके विपरीत पर-वस्तु में अधिकार दूसरों की वस्तु में अधिकार होता है। इसे विल्लंगम् (encumbrance) भी कहा जाता है। सामण्ड के अनुसार पर-वस्तु में अधिकार या विल्लंगम् ऐसा अधिकार है जो उसी विषय के बारे में किसी अन्य व्यक्ति के होने वाले कुछ अधिक सामान्य अधिकारों को सीमित

या अल्पीकृत करता है। उदाहरण के लिए किसी भूमि का स्वामी होने के कारण क को उस पर स्व-वस्तु में अधिकार है; परन्तु जब क उस भूमि को ख को पट्टे पर देता है तो ख का उस पर पर-वस्तु में अधिकार हो जाता है और क का अधिकार ख के अधिकार के अधीन और उसके द्वारा सीमित हो जाता है। जो अधिकार अधीन हो जाता है वह अनुसेवी (servient) अधिकार कहलाता है और सीमित या अल्पीकृत करने वाला अधिकार अधिष्ठायी (dominant) अधिकार कहलाता है।

पर-वस्तु में अधिकार चार प्रकार के होते हैं परन्तु वन विधि की दृष्टि से निम्न लिखित दो महत्त्वपूर्ण हैं :

(१) **पट्टा (lease)**—सम्पत्ति अन्तरण (transfer) अधिनियम के अनुसार **अचल सम्पत्ति का पट्टा ऐसी सम्पत्ति का उपयोग करने के अधिकार का ऐसा अन्तरण है जो एक अभिव्यक्त या विवक्षित** (implied) **समय के लिए या शाश्वत काल के लिए, किसी कीमत के, जो दी गई हो या जिसके देने का वचन दिया गया हो, अथवा धन या फसलों के अंश या सेवा के जो अन्तरक को दी जाती है, प्रतिफल के रूप में दिया गया हो।** सामण्ड के अनुसार, पट्टा एक प्रकार का विल्लंगम् है जो किसी व्यक्ति के स्वामित्व में होने वाली सम्पत्ति के कब्जे और उपयोग का अधिकार किसी अन्य व्यक्ति को देता है।

(२) **अधिसेविताएँ (servitude)**—अधिसेविताएँ वे अधिकार हैं जो अधिसेविता धारक को या तो अन्य व्यक्ति की सम्पत्ति को कुछ वर्गों के निश्चित रूप से सीमित उपयोग में लाने की शक्ति देते हैं या उस सम्पत्ति के स्वामी को कुछ वर्गों के निश्चित रूप से सीमित उपयोगों में लाने से अपवर्जित करते हैं। सामण्ड के अनुसार, अधिसेविता विल्लंगम् का वह रूप है जो किसी व्यक्ति को किसी भू-खण्ड का कब्जा दिए बिना उसके सीमित उपयोग का अधिकार देता है; जैसे किसी दूसरे की भूमि पर मार्ग या पशु चराने का अधिकार।

पट्टे और अधिसेविता में अन्तर—(i) पट्टे में पट्टाधारक को सम्पत्ति का कब्जा और उपयोग का अधिकार दोनों मिलते हैं। इसके विपरीत अधिसेविता धारक को सम्पत्ति का कब्जा नहीं मिलता। उसे तो कुछ वर्गों के सीमित उपयोग का अधिकार मिलता है।

(ii) पट्टेदार का कब्जा अनन्य होता है अर्थात् उसे स्वामी सहित अन्य सब व्यक्तियों को उसके उपयोग से अपवर्जित करने का अधिकार होता है। इसके विपरीत, अधिसेविता धारक को अन्य किसी को अपवर्जित करने का अधिकार नहीं होता।

अधिसेविताओं के महत्त्वपूर्ण लक्षण—अधिसेविताओं का पहला महत्त्वपूर्ण लक्षण यह है कि उस में भूमि का कब्जा नहीं मिलता। अधिसेविता धारक को केवल कुछ वर्गों के सीमित उपयोग का अधिकार मिलता है। उसका दूसरा लक्षण यह है कि वह कोई कार्य करने का दायित्व चाहे न सौंपे, परन्तु कुछ करने से

अपवर्जित कर सकती है। उसका तीसरा लक्षण यह है कि अधिसेविता अपनी ही सम्पत्ति पर नहीं हो सकती। दूसरे शब्दों में, यह आवश्यक है कि अधिष्ठायी भूमि अर्थात् वह भूमि जिसके लाभ के लिए अधिसेविता का अस्तित्व है, अनुसेवी भूमि अर्थात् वह भूमि जिस पर अधिसेविता विल्लंगम् है, भिन्न व्यक्तियों की सम्पत्ति होनी चाहिए।

अधिसेविताओं का वर्गीकरण—अधिसेविताओं का वर्गीकरण भिन्न-भिन्न विधियों में भिन्न प्रकार से किया गया है। रोमन विधि में अधिसेविताएँ स्थावर एवं व्यक्तिगत अधिसेविताओं में वर्गीकृत हैं। **स्थावर अधिसेविता वह अधिसेविता है जो किसी स्थावर सम्पत्ति से संलग्न हो।** उदाहरण के लिए एक खेत के स्वामी के रूप में **क** को **ख** के बगीचे में से मार्ग का अधिकार है। यह स्थावर अधिसेविता है क्योंकि यह अधिकार **क** को व्यक्ति के रूप में न होकर एक खेत के स्वामी होने के कारण मिला है। **व्यक्तिगत अधिसेविता किसी व्यक्ति या समाज के पक्ष में होती है।** भारत में वन अधिकार सामान्यतया स्थावर अधिसेविताओं के रूप में हैं।

आंग्ल विधि में अधिसेविता प्राइवेट और लोक अधिसेविताओं में वर्गीकृत की जाती है। **प्राइवेट अधिसेविता वह अधिसेविता है जिसमें उपयोग का अधिकार किसी नियत व्यक्ति या व्यक्तियों में निहित होता है। लोक अधिसेविता उस अधिसेविता को कहते हैं जिसमें अधिकार सर्वसाधारण में निहित होता है।** प्राइवेट अधिसेविता भी दो वर्गों में वर्गीकृत की जाती है। पहले वर्ग में **सुखाचार या अनुलग्न अधिसेविता आती है।** यह अधिसेविता **किसी भूखण्ड से संलग्न वह अधिकार है जो उसके स्वामी को किसी अन्य व्यक्ति के भूखण्ड को किसी विशेष प्रकार से उपयोग करने (जैसे, उसके ऊपर चलना या उस पर कूड़ा डालना) को अनुज्ञात करता है, परन्तु अनुसेवी सम्पत्ति की किसी प्राकृतिक उपज लेने को अनुज्ञात नहीं करता।** दूसरे शब्दों में, **यह बिना लाभ वाला विशेषाधिकार है।** दूसरे वर्ग में **पर-भूमि भोगाधिकार** (प्रोफिट-ए-प्रैन्ड्रे) आता है। **यह वह अधिसेविता है जिसमें दूसरे की भूमि में से कोई लाभ प्राप्त करने का अधिकार मिलता है।** उदाहरण के लिए किसी अन्य की भूमि में पशु चराने का अधिकार, घास काटने या पत्थर उठाने का अधिकार आदि।

भारतीय विधि में सुखाचार (easement) आंग्ल विधि के सुखाचार की अपेक्षा अधिक व्यापक है, क्योंकि उसमें आंग्ल विधि का पर-भूमि-भोगाधिकार भी सम्मिलित होता है। दूसरे शब्दों में, **भारतीय विधि में सुखाचार में आवश्यकता के सुखाचारों के साथ-साथ लाभदायक पदार्थों को प्राप्त करने का अधिकार भी सम्मिलित है।** भारतीय सुखाचार अधिनियम १८८२ **के** अनुसार **सुखाचार एक ऐसा अधिकार है जो किसी भूमि के स्वामी या अधिभोगी को उस हैसियत में, उस भूमि के फायदाप्रद उपभोग के लिए, किसी अन्य भूमि में या उस पर जो उसकी नहीं**

है, कोई बात करने या करते रहने के लिए या किसी बात का किया जाना रोकने और रोकते रहने के लिए प्राप्त है। उदाहरण के लिए क को किसी खेत का स्वामी की हैसियत से निकटवर्ती वन में अपने पशु चराने, वहाँ से अपने निजी घरेलू उपयोग के लिए काष्ठ तथा ईंधन लाने, गिरी हुई पत्तियों का उपयोग करने, वन में बहती हुई नदी में मछली पकड़ने का अधिकार विभिन्न सुखाचार हैं।

भारतीय सुखाचार अधिनियम में सुखाचारों के निर्वापन (extinction) की कई परिस्थितियों का विस्तृत वर्णन है। उन परिस्थितियों के अतिरिक्त भारतीय वन अधिनियम में भी दो परिस्थितियों का उल्लेख है जिसमें सुखाचार निर्वापित हो जाते हैं। पहली परिस्थिति तब होती है जब आरक्षित वन बनाने की प्रक्रिया प्रारम्भ होने पर न तो उनका दावा किया जाए और न उनके अस्तित्व की कोई जानकारी वन व्यवस्थापन (बन्दोबस्त) अधिकारी को जाँच में मिली हो। ऐसी दशा में वे सुखाचार निर्वापित हो जाते हैं। दूसरी परिस्थिति तब होती है जब वन व्यवस्थापन अधिकारी वन की क्षमता ध्यान में रख कर उन सुखाचारों को स्वीकृत नहीं कर पाता। ऐसी दशा में वह किसी धनराशि के संदाय या भूमि के अनुदान या अन्य किसी रीति से अधिकारों या सुखाचारों को कम या निर्वाप्ति कर सकता है।

भारतीय वनों में ग्रामवासियों के अधिकार पर्याप्त मात्रा में होते हैं। ये अधिकार उन्हें चिरभोग के कारण प्राप्त हुए हैं। आरक्षित वन बनाते समय अधिकारों की जाँच वन व्यस्थापन अधिकारी द्वारा दावों के लिए लिखित आवेदन या मौखिक कथन के रूप में माँगकर प्रारम्भ की जाती है। वन व्यवस्थापन अधिकारी अभिलेखों से भी अधिकारों के बारे में पता लगाता है। अन्त में वह सिद्ध हुए अधिकारों को मंजूर करके उनके प्रयोग की व्यवस्था करता है। कभी-कभी ऐसे कई सुखाचार होते हैं जो चिरभोग के अभाव में अधिकार रूप से तो स्वीकृत नहीं किए जा सकते परन्तु उनको बन्द कर देने से ग्रामवासियों को अपार कष्ट होता है। ऐसी स्थिति में राज्य सरकार उन्हें विशेषाधिकार, सुविधा या रियायत के रूप में दे देती है। इस प्रकार स्वीकृत अधिकारों और विशेषाधिकार या सुविधाओं में निम्नलिखित अन्तर होता है :

(i) स्वीकृत अधिकार वन व्यवस्थापन अकिधारी द्वारा स्वीकृत अधिकार है। वह विधिमान्य अधिकार है और उसका धारक उसे न्यायालय द्वारा प्रवर्तित करा सकता है। इसके विपरीत विशेषाधिकार या सुविधा विधिक अधिकार नहीं है। वह तो राज्य सरकार ग्रामवासियों के कष्टों को कम करने के लिए उन्हें अनुज्ञात करती है।

(ii) स्वीकृत अधिकार स्थायी होता है और उसके लिए कुछ संदाय नहीं करना पड़ता। इसके विपरीत विशेषाधिकार या सुविधा राज्य सरकार द्वारा किसी विशेष अवधि के लिए दिया जाता है और उस अवधि के अन्त में, यदि आवश्यक हो तो, उसका नवीनीकरण करना पड़ता है। इसके लिए कभी-कभी नाम मात्र का शुल्क

देना पड़ता है पर सामान्यतया यह भी निःशुल्क दिया जाता है।

(iii) स्वीकृत अधिकार वन व्यवस्थापन अधिकारी द्वारा वन व्यवस्थापन के समय राज्य सरकार से सिफारिश करके स्वीकृत कराया जाता है। इसके विपरीत, सुविधा राज्य सरकार द्वारा अपने आप कभी भी स्वीकृत की जा सकती है।

(iv) स्वीकृत अधिकार अप्रतिसंहरणीय (irrevocable) होता है परन्तु सुविधा राज्य सरकार अपने प्रसादानुसार प्रतिसंहृत कर सकती है।

वन-विधि

वन-विधि वन से सम्बन्धित इस देश की लोक विधि की एक शाखा है। वन रूपी विशिष्ट सम्पत्ति के लिए बनाई जाने के कारण वह एक विशेष विधि है। इसकी परिभाषा के रूप में कहा जा सकता है कि **वन-विधि संसद तथा विधान मण्डलों के अधिनियमों के रूप में प्रभुत्व सम्पन्न जन समाज (राष्ट्र) की इच्छा की ऐसी अभिव्यक्ति है जो वन सम्पत्ति के सुचारू प्रबन्ध, प्रशासन तथा संरक्षण के लिए उसके स्वामी या उसके प्रतिनिधियों तथा उसके सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों और ग्राम समाजों के अधिकारों तथा दायित्वों का विवेचन कर उन्हें विनियमित करती हैं।** भारत में लगभग आधे राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों में केन्द्र सरकार द्वारा अधिनियमित भारतीय वन अधिनियम १९२७ लागू है। इन राज्यों ने भी राज्य की विशेष परिस्थितियों के कारण उसमें कहीं-कहीं संशोधन किए हैं। इस प्रकार लगभग आधे राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों में उनके द्वारा यथा संशोधित भारतीय वन अधिनियम १९२७ लागू है। शेष राज्यों ने अपने राज्य वन अधिनियम बनाए हैं। सारांश यह है कि वन सम्पत्ति की दृष्टि से भारतीय वन अधिनियम १९२७ या कुछ राज्यों में राज्य वन अधिनियम वन विधि का प्रमुख आधार है।

वन शिक्षा में वन-विधि के अध्ययन का महत्त्व—वन शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य वन अधिकारी पद के अभ्यर्थियों को उस ज्ञान से अवगत कराना है जिससे वे अपने पदों के कर्त्तव्यों और दायित्वों की अपेक्षाओं को सुचारु रूप से पूरा और उनकी चुनौतियों का सक्षम रूप से सामना कर सकें। वन अधिकारी पद ग्रहण करते ही एक विस्तृत तथा मूल्यवान सम्पत्ति का व्यवस्थापक बन जाता है। इस जटिल प्रशासनिक दायित्व को संभालने तथा बिना रुकावट सुचारु रूप से चलाते रहने के सक्षम बनाने के लिए वन अधिकारी पद के अभ्यर्थियों को वन विद्यालयों में ही वन-विधि का ज्ञान दे दिया जाता है। इसका महत्त्व निम्नलिखित बातों से स्पष्ट है :

(i) **वन की विधिक स्थिति का ज्ञान**—प्रत्येक वन अधिकारी के अधिक्षेत्र में विस्तृत वन क्षेत्र होता है। इस समस्त वन की विधिक स्थिति समान नहीं होती। इसमें आरक्षित वन, संरक्षित वन, ग्राम वन तथा प्राइवेट वन आदि सभी प्रकार के वन होते हैं। इन विभिन्न प्रकार के वनों में वन अधिकारियों की शक्तियाँ और ग्रामवासियों के अधिकार भिन्न-भिन्न होते हैं। अतः यह आवश्यक है कि वन अधिकारी

को पदभार ग्रहण करने से पूर्व प्रशिक्षण काल में ही वनों का विधि की दृष्टि से वर्गीकरण, उन वर्गों की विशेषताएं, उनमें वन अधिकारियों की शक्तियाँ; ग्रामवासियों के अधिकार आदि का ज्ञान करा दिया जाए जिससे कार्य भार संभालने पर उसे वनों की प्रशासनिक व्यवस्था करने में कठिनाई न हो। भारतीय वन अधिनियम में आरक्षित वनों, संरक्षित वनों, ग्राम वनों आदि का अलग-अलग वर्णन कर उनमें स्वामी के प्रतिनिधि रूपी वन अधिकारी तथा निकटतम ग्रामवासियों के अधिकारों का समुचित विवेचन है।

(ii) **वनों का संरक्षण**—आरक्षित, संरक्षित तथा ग्राम वनों के संरक्षण के लिए भारतीय वन अधिनियम में उनसे सम्बन्धित अध्यायों में प्रतिषिद्ध कार्यों का विस्तृत विवेचन करके उनके उल्लंघन को दण्डनीय अपराध बनाया गया है और दण्ड की व्यवस्था की गयी है। समय, परिस्थिति, स्थान, नियम आदि अनेक बातें किसी कार्य को वैध या अवैध बनाती हैं। उदाहरण के लिए वन में आग ले जाना एक कार्य है। यही कार्य यदि आरक्षित वन में उस ऋतु में किया जाए जब वन अधिकारी ने विज्ञापन द्वारा उसका प्रतिषेध कर रखा हो तो वह अपराध है, अन्य समयों में नहीं। इस प्रकार वन अधिकारियों को वन-विधि की शिक्षा द्वारा कब कौनसा कार्य अपराध होता है, इसका ज्ञान कराया जाता है।

(iii) **वन अपराधों का सफल अभियोजन**—वन अपराधों के सफल अभियोजन के लिए यह आवश्यक है कि वन अधिकारियों को विभिन्न धाराओं के शब्दों और उनमें अन्तर्निहित अर्थ का ज्ञान हो जिससे अपराध रिपोर्ट लिखते समय उचित शब्दों का उपयोग किया जाए। यदि अपराध रिपोर्ट में उचित शब्दों का उपयोग न किया गया हो तो बाद में कितना ही योग्य वकील क्यों न रखा जाय अभियुक्त को दण्ड नहीं दिलाया जा सकता। इसलिए वन अधिनियम की धाराओं का ज्ञान महत्त्वपूर्ण है।

(iv) **वन अपराधों के अन्वेषण की प्रक्रिया**—वन अधिकारियों को कार्यभार संभालते ही वन अपराधों का अन्वेषण, अभियुक्तों की गिरफ्तारी, अपराध से संबद्ध औजारों, छकड़ों या वाहनों, पशुओं आदि का अभिग्रहण करना पड़ता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रशिक्षण के समय ही उन्हें वन अधिनियम में वर्णित प्रक्रिया ही नहीं वरन् दण्ड प्रक्रिया संहिता १९७३ के महत्त्वपूर्ण भागों का भी ज्ञान करा दिया जाए जिससे पदभार संभालने के बाद इन कार्यों को मनमाने या त्रुटिपूर्ण ढंग से करके वह अपने लिए विपत्ति और विभाग को नुकसान की सम्भावना पैदा न कर दे। उदाहरण के लिए, एक मास या उससे अधिक के कारावास से दण्डनीय किसी वन अपराध से सम्पृक्त व्यक्ति वन अधिनियम के अनुसार गिरफ्तार किया जा सकता है परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि गिरफ्तारी के बाद अनावश्यक विलम्ब के उसे अधिकारिता प्राप्त मजिस्ट्रेट या निटकतम पुलिस स्टेशन के भारसाधक अधिकारी के सम्मुख ले जाया जाए। यदि अज्ञानवश कोई वन अधिकारी उसे अपने पास ही बन्द

रखे तो वह अपने लिए विपत्ति पैदा कर लेगा।

(v) **वन अपराधों के विषय में साक्ष्य एकत्र करना**—वन अपराधों का न्यायालय में संचालन तो वकील या लोक अभियोजक करते हैं परन्तु उनके लिए साक्ष्य आदि का प्रबन्ध वन अधिकारी को करना पड़ता है। अतः यह आवश्यक है कि प्रशिक्षण काल में ही वन अधिकारी पद के अभ्यर्थियों को वन अधिनियम के साथ-साथ भारतीय साक्ष्य अधिनियम के महत्त्वपूर्ण अंशों का अच्छा ज्ञान करा दिया जाए जिससे वे पद भार संभालने पर अन्वेषण करते समय सुसंगत तथा निश्चायक साक्ष्य एकत्र करें।

(vi) **वन कार्यों की संविदा**—वन संरक्षण के अतिरिक्त वन अधिकारियों को कार्यभार संभालते ही अनेक वन कार्यों से सम्बन्धित संविदाओं को तैयार तथा/या निष्पादन करना पड़ता है। अतः यह आवश्यक है कि उन्हें विधिमान्य संविदा के मूल तत्व तथा संविदा अधिनियम के महत्त्वपूर्ण उपबन्धों का समुचित ज्ञान हो।

(vii) **राजस्व की वसूली**—वन अधिकारियों को वन राजस्व की वसूली भी करनी पड़ती है। सामान्यतया यह वसूली वन-उपज की निकासी पर नियंत्रण रख कर की जाती है। परन्तु कभी-कभी सब वन-उपज निकल जाने के बाद भी राजस्व बकाया रह जाता है तो वह वन अधिनियम के उपबन्धों तथा राजस्व वसूली अधिनियम १८९० की सहायता से वसूल किया जा सकता है। अतः वन अधिनियम तथा राजस्व वसूली अधिनियम का अध्ययन वन शिक्षा के अन्तर्गत करा देने से वन अधिकारी कार्यभार संभालते ही अपने कर्त्तव्यों का पालन भली भाँति तथा सक्षम रूप से कर सकता है।

सारांश यह है कि वन अधिनियम का प्रमुख रूप से तथा कुछ अन्य लोक विधियों के महत्त्वपूर्ण अंशों का अध्ययन वन अधिकारी को अपने जटिल प्रशासनिक दायित्व को निभाने के लिए सक्षम बनाता है। अतः वन शिक्षा में इसका बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है।

विशेष वन अधिनियम की आवश्यकता—साधारणतया सब सम्पत्तियों की रक्षा देश की सामान्य विधियों से हो जाती है। यही नहीं, वन सम्पत्ति तथा वन-उपजों के प्रकरण में भी कभी-कभी दण्ड प्रक्रिया संहिता के अधीन अभियोजन करना पड़ता है। ऐसी दशा में यह प्रश्न स्वाभाविक है कि जब देश की सामान्य दण्ड तथा प्रक्रिया विधियाँ अन्य सब प्रकार की सम्पत्तियों का संरक्षण करने में समर्थ हैं तो वनों के संरक्षण के लिए विशेष वन विधि बनाने की आवश्यकता क्यों पड़ी? यह सत्य है कि सब प्रकार की सम्पत्तियों, चाहे वे सरकारी हों या प्राइवेट, की रक्षा देश की सामान्य विधि से हो जाती है परन्तु निम्नलिखित विशेष परिस्थितियों के कारण एक विशेष वन अधिनियम बनाना पड़ा :

(i) **वन सम्पत्ति का आकार तथा सार्वजनिक स्वरूप**—साधारणतया समस्त

सम्पत्तियाँ छोटे से क्षेत्रफल पर होती हैं और उन पर उनके स्वामियों का पूर्ण अधिकार होता है। वे उनकी रक्षा तारबाड़ या अन्य किसी रीति से कर लेते हैं। इसके विपरीत, वन सम्पत्ति बहुत विस्तृत क्षेत्र में फैली रहती है। फलस्वरूप सामान्य रीतियों से उसकी रक्षा व्यावहारिक नहीं है। दूसरी ओर, वह सार्वजनिक सम्पत्ति समझी जाती है। उसकी प्राकृतिक उत्पत्ति जनसाधारण को उससे अपनी इच्छानुसार तथा आवश्यकतानुसार वन-उपज लेने के लिए प्रेरित करती है। जो मनुष्य किसी अन्य व्यक्ति के उद्यान से एक फल तोड़ने या किसी के गोचर में पशु चराने को दण्डनीय अपराध समझते हैं वे भी वन से कोई वन-उपज लेने में नहीं झिझकते। अत: सार्वजनिक हित को ध्यान में रखकर यह आवश्यक है कि जनसाधारण को बताया जाए कि विभिन्न प्रकार के वनों में कौन से कार्य किन-किन नियमों के अधीन किए जा सकते हैं। ऐसा करना तभी सम्भव था जब विशेष अधिनियम बनाया जाता।

(ii) **वन सम्पत्ति में अन्य व्यक्तियों के अधिकार**—साधारणतया अन्य सम्पत्तियों में उनके स्वामी के अतिरिक्त अन्य लोगों के अधिकार नहीं होते परन्तु वन राज्य सरकार की ऐसी सम्पत्ति है जिसमें अन्य व्यक्तियों के अधिकार बहुधा होते हैं। अत: वन अधिकारों के प्रयोगों को नियंत्रण में रखने, उनके बढ़ने की सम्भावना रोकने और आवश्यकता पड़ने पर उन अधिकारों को प्रतिकर देकर बन्द करने के लिए विशेष व्यवस्थाओं की आवश्यकता थी। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही विशेष वन अधिनियम बनाना पड़ा।

(iii) **सरकारी वनों की विधिक स्थिति**—अन्य व्यक्तियों के अधिकारों की उपस्थिति वन प्रबन्ध को प्रभावित करती है। अत: वनों के संरक्षण तथा ग्राम निवासियों के अधिकारों की उपस्थिति के अनुसार वनों का आरक्षित, संरक्षित तथा ग्राम वनों में वर्गीकरण किया जाता है। इन विभिन्न के वर्गों वनों के गठन की प्रक्रिया भी भिन्न होती है। अत: विभिन्न वर्गों के वनों के गठन की प्रक्रिया का वर्णन करने और उनमें से प्रत्येक में प्रतिषिद्ध कार्यों को दण्डनीय बनाने के लिए विशेष अधिनियम बनाना पड़ा।

(iv) **प्राइवेट वनों का संरक्षण**—वनों का जलवायु तथा भूमि पर बहुत प्रभाव पड़ता है। पर्वतीय क्षेत्र में तो यह महत्त्व और भी बढ़ जाता है क्योंकि वन तथा अन्य वनस्पति भूमि तथा जल का संरक्षण करती है। वनों का यह प्रभाव उन्हीं के सीमा क्षेत्र में सीमित न होकर बहुत दूर-दूर स्थानों पर भी पड़ता है। अत: यह आवश्यक है कि प्राइवेट वनों के संरक्षण और उनमें कतिपय कार्य प्रतिषिद्ध करने की शक्ति सरकार में हो। यह तभी सम्भव हो सकता था जब विशेष वन अधिनियम बनाकर उसमें ऐसी व्यवस्था की जाती।

(v) **वनों को अनेक प्रकार की क्षतियाँ**—वन में अनेक प्रकार की वन-उपजें होती हैं। उनके अन्तर्गत वृक्ष और उसके विभिन्न भागों से लेकर घास, बेलें, नरकुल,

काई तक, वन पशु, उनकी खालों तथा हड्डियों से लेकर रेशम के कोए, शहद, मोम तक और सतही मिट्टी से लेकर भूमि के अन्दर पाए जाने वाले खनिज तक आते हैं। इन विभिन्न वन-उपजों को अनेक प्रकार की क्षतियाँ होती हैं। उदाहरण के लिए किसी वृक्ष को गिराने से लेकर उसका परितक्षण (girdle) करना, छाँटना (lop), छेवना (tap), पत्ते तोड़ना, छाल उतारना सभी वन को क्षति हैं। इतनी विभिन्न प्रकार की क्षतियों को भारतीय दण्ड संहिता के सामान्य अपराधों जैसे चोरी, अतिचार आदि के अन्तर्गत लाना सरल कार्य नहीं था। इसलिए यह आवश्यक था कि एक विशेष वन अधिनियम बनाकर विभिन्न वर्गों के वनों में होने वाली विभिन्न क्षतियों तथा उन परिस्थितियों जिनमें वे दण्डनीय हों, का वर्णन किया जाए।

(vi) **वन अपराधों को निपटाने के लिए सरल प्रक्रिया की अपेक्षा**—अधिकांश वन अपराध जैसे पत्ते तोड़ना, शाखा काटना, घास काटना आदि, बहुत तुच्छ होते हैं। परन्तु उनकी संख्या बहुत अधिक होती है। इतने अधिक तुच्छ अपराधों को न्यायालय में विचारण के लिए भेजने से न्यायालयों में वादों की बाढ़ हो जाती। साथ ही जनता को, जो जाने-अनजाने अपराध कर बैठती है, बहुत कष्ट होता। वन अधिकारी भी वन में वन वर्धनीय कार्यों की उपेक्षा कर न्यायालय में ही खड़े दिखाई देते। अतः तीनों पक्षों के श्रम, समय और धन के अपव्यय को बचाने और कष्ट और असुविधा दूर करने के लिए ऐसे वन अपराधों को निपटाने के लिए एक अत्यन्त सरल प्रक्रिया की अपेक्षा थी। वह प्रक्रिया वन अपराधों का वन अधिकारियों द्वारा शमन (compound) करना था। अतः कतिपय गम्भीर अपराधों को छोड़ अन्य अपराधों को वन अधिकारियों द्वारा शमन किए जाने की व्यवस्था करने के लिए एक विशेष वन अधिनियम बनाना पड़ा।

(vii) **केन्द्रीय सरकार के हित**—वन सम्पत्ति राज्य सरकारों के अधीन है और वे ही शुल्क आदि के उद्ग्रहण के लिए नियम बनाती हैं। परन्तु केन्द्रीय सरकार के हित के लिए देश की सीमा के अन्दर आने वाली तथा देश में पैदा होने वाली वन-उपज पर शुल्क उद्ग्रहण करने का अधिकार होना चाहिए। ऐसी व्यवस्था भी एक विशेष वन अधिनियम बनाकर ही सम्भव थी।

(viii) **अभिवहन के दौरान वन-उपज का संरक्षण**—वन सीमा के अन्दर तो वन-उपज को संरक्षण मिलता है परन्तु जब वन-उपज वन सीमा के बाहर जाती है तब भी उसके स्वामी तथा राज्य सरकार के हितों की रक्षा के लिए उसके संरक्षण की आवश्यकता होती है। ऐसा संरक्षण विशेष वन अधिनियम के द्वारा ही सम्भव था ताकि उसमें अभिवहन के लिए नियम बनाकर यह व्यवस्था की जा सके कि अभिवहन विहित मार्गों से, अधिकृत अधिकारी द्वारा दिए गए पासों के अधीन होना चाहिये; वन उपज पर स्वामी का सम्पत्ति चिह्न और सरकारी निर्यात चिह्न होना चाहिए; मार्ग में बनी चौकियों पर उसकी जाँच करवानी चाहिए और वहाँ अपेक्षित शुल्क चुकाना चाहिए।

पर्वतीय वनों की इमारती लकड़ी को नदियों में बहाकर मण्डियों तक पहुँचाया जाता है। नदियों में बहते हुए कुछ इमारती लकड़ी किनारों पर अटक जाती है, तट पर रेत में दब जाती है या कभी-कभी ऊँचे स्थानों में लग जाती है। ऐसी अटकी हुई, दबी हुई या रुकी हुई इमारती लकड़ी के, विशेष कर जब उस पर सम्पत्ति चिह्न न हो, एकत्र करके उसके व्ययन की व्यवस्था करने के लिए एक विशेष वन अधिनियम बनाना पड़ा। कभी-कभी नदी में बाढ़ आ जाने पर इमारती लकड़ी वन सीमा या मण्डियों से बहुत दूर मैदानों में बिखर जाती है। ऐसी लकड़ी को एकत्र करने, पकड़ने आदि के लिए वन अधिकारियों को शक्ति प्रदान करने के लिए भी विशेष वन अधिनियम बनाना पड़ा।

(ix) **आग से संरक्षण**—वन को आग से बहुत क्षति पहुंचती है। अतः उसके संरक्षण के लिए ग्रीष्म ऋतु में वनों में और उसके आसपास आग जलाना प्रतिषिद्ध करने तथा कुछ वर्गों के व्यक्तियों को लगी हुई आग की सूचना देने तथा उसे बुझाने में सहायता देने के लिए बाध्य करने के लिए एक विशेष अधिनियम आवश्यक था।

(x) **वनों के प्रबन्ध और संरक्षण के लिए अपेक्षित शक्तियों से विनिहित वन सेवा की व्यवस्था**—वनों के प्रबन्ध और संक्षरण के लिए एक विशेष वन सेवा की आवश्यकता होती है। अतः यह आवश्यक है कि वन अपराधों को रोकने, अपराध होने पर अभियुक्तों को गिरफ्तार करने, अपराध से सम्बद्ध तथा उनमें उपयोग में लाए गए औजारों, वाहनों आदि के अभिग्रहण करने, गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों तथा अभिगृहीत सम्पत्ति को बन्धपत्र निष्पादित करने पर निर्मुक्त करने तथा अपराधों को शमन करने की शक्तियों को वन अधिकारियों में विनिहित किया जाए और यह एक विशेष अधिनियम बनाकर ही सम्भव था।

(xi) **वनों से प्राप्त होने वाले राजस्व की वसूली**—वनों से पर्याप्त राजस्व प्राप्त होता है। उसकी समय पर वसूली के लिए नियम बनाने, वसूली न होने पर वन-उपज की निकासी रोकने और उसका धारणाधिकार वन अधिकारी में होने और उसको बेचने की शक्ति वन अधिकारियों में विनिहित करने के लिए भी एक विशेष वन अधिनियम आवश्यक था।

भारत में वन विधि का विकास

भारत में सर्वप्रथम वन अधिनियम १८६५ में अधिनियमित हुआ और वह भारतीय वन अधिनियम १८६५ के नाम से प्रसिद्ध है। यह अधिनियम केवल सरकारी वनों से सम्बन्धित था परन्तु उसमें दी गई वन की परिभाषा के कारण विस्तृत भूमियाँ जिन पर लागू करने के उद्देश्य से वह बनाया गया था, इसकी परिधि के बाहर छूट गईं। इसके अतिरिक्त इसमें ग्रामवासियों के अधिकारों के अवधारण तथा उनके विनियमन की कोई व्यवस्था नहीं थी। इन

दोषों को दूर करने के उद्देश्य से १८७८ में एक नया भारतीय वन अधिनियम बनाया गया। इसमें भी समय-समय पर कुछ त्रुटियां पाई गयीं और उन्हें विभिन्न संशोधन अधिनियमों से दूर किया गया। अन्त में वन-उपज के अभिवहन और इमारती लकड़ी तथा अन्य वन-उपज पर उद्ग्रहणीय शुल्क से सम्बद्ध विधि के समेकन (consolidate) के उद्देश्य से १९२७ में एक व्यापक अधिनियम जो भारतीय वन अधिनियम १९२७ कहलाया, अधिनियमित किया गया। इस अधिनियम में भी समय-समय पर आवश्यकता अनुसार तथा देश के राजनैतिक परिवर्तनों के कारण महत्त्व-पूर्ण संशोधन हुए हैं। इस प्रकार भारतीय वन अधिनियम १९२७ का वर्तमान रूप भारतीय वन (संशोधन) अधिनियम १९३०, १९३३, भारत सरकार (भारतीय विधि अनुकूलन) आदेश १९३७, निरसन तथा संशोधन अधिनियम १९४७, भारतीय स्वतन्त्रता (केन्द्रीय अधिनियम तथा अध्यादेश अनुकूलन) आदेश १९४८, विधि अनुकूलन आदेश १९५० तथा १९५६ द्वारा किए गए संशोधनों का परिणाम हैं।

भारतीय वन अधिनियम १९२७ में नाम, विस्तार तथा निर्वचन खण्ड सम्बन्धी प्रारम्भिक विवेचन तथा उन पर टिप्पणियाँ

धारा १—(१) **इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम भारतीय वन अधिनियम १९२७ है।**

(२) इसका विस्तार उन राज्य क्षेत्रों को छोड़कर, जो प्रथम नवम्बर १९५६ से ठीक पूर्व भाग ख राज्यों में समाविष्ट थे, सम्पूर्ण भारत पर है।

(३) यह उन राज्य क्षेत्रों को लागू है जो प्रथम नवम्बर १९५६ से ठीक पूर्व बिहार, मुम्बई, कुर्ग, दिल्ली, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बंगाल में समाविष्ट थे, किन्तु किसी भी राज्य की सरकार राजपत्र में अधि-सूचना द्वारा इस अधिनियम को उस पूर्ण राज्य में या उसके किसी विनिर्दिष्ट भाग में, जिस पर इसका विस्तार है और जहाँ यह प्रवर्तन में नहीं है, प्रवर्तन में ला सकेगी।

इस धारा में मध्य प्रदेश, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश राज्यों ने निम्नलिखित संशोधन किए हैं :

मध्य प्रदेश संशोधन—मध्य प्रदेश सरकार ने १९५८ के मध्य प्रदेश अधिनियम संख्या २३ की धारा ३ के द्वारा भारतीय वन अधिनियम १९२७ की धारा १ में निम्नलिखित संशोधन किए हैं :

(i) उपधारा (२) में 'भाग ख राज्यों में' शब्दों के पहले 'मध्य प्रदेश राज्य के मध्य भारत और सिरोंज क्षेत्र से भिन्न' शब्द अन्तः स्थापित किए जाएं।

(ii) उपधारा (३) में 'यह मध्य भारत, विन्ध्य प्रदेश, भोपाल तथा मध्य प्रदेश के सिरोंज क्षेत्र में समाविष्ट राज्य क्षेत्रों को भी लागू है' जोड़ दिया जाए।

हरियाणा संशोधन—पंजाब सरकार के १९६२ के पंजाब अधिनियम संख्या १३ के द्वारा भारतीय वन अधिनियम की उपधारा (२) के बाद एक उपधारा

(२-ए) इस आशय से जोड़ी है कि उपधारा (२) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी इसका विस्तार उन राज्यक्षेत्रों में है जो प्रथम नवम्बर १९५६ से ठीक पूर्व पटियाला तथा पूर्वी पंजाब रियासत संघ में समाविष्ट थे। इसके अतिरिक्त उपधारा (३) में 'उड़ीसा' शब्द के बाद 'पटियाला तथा पूर्वी पंजाब रियासत संघ' शब्द अन्तः स्थापित किए हैं।

हिमाचल प्रदेश संशोधन—हिमाचल प्रदेश सरकार ने भी वन अधिनियम की उपधारा (२) के बाद एक उपधारा (२-ए) इस आशय से जोड़ी है कि उपधारा (२) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी इसका विस्तार ऐसे राज्य क्षेत्रों, जो प्रथम नवम्बर १९५६ के ठीक पूर्व पटियाला तथा पूर्वी पंजाब रियासत संघ में समाविष्ट थे और पंजाब पुनर्गठन अधिनियम की धारा ५ के अधीन हिमाचल प्रदेश में तब से विलीन हो गए हैं, में भी है।

टिप्पणी—वन अधिनियम की धारा १ की उपधारा (२) में 'विस्तार' और उपधारा (३) में 'लागू' शब्द प्रयोग किए गए हैं। इन दोनों शब्दों में यह अन्तर है कि जहाँ 'विस्तार' शब्द केवल अधिकारिता की व्यापकता दिखाता है, 'लागू' शब्द उसका वास्तविक प्रवर्तन दिखाता है। उदाहरण के लिए भारतीय वन अधिनियम का असम तथा मद्रास (नया नाम तमिलनाडु और आन्ध्र प्रदेश) में विस्तार है परन्तु वह वहाँ लागू नहीं है। उन राज्यों ने क्रमशः अपने विनियमन या अधिनियम बना लिए हैं।

उपधारा (३) में 'किन्तु किसी भी राज्य की सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस अधिनियम को उस पूर्ण राज्य में या उसके किसी विनिर्दिष्ट भाग में, जिस पर इसका विस्तार है और जहाँ वह प्रवर्तन में नहीं है, प्रवर्तन में ला सकेगी' वाक्यांश ने राज्य सरकारों को यह छूट दे दी है कि वे इस अधिनियम को राज्य के उन भागों में जहाँ उसका विस्तार है परन्तु वह प्रवर्तन में नहीं हैं, प्रवर्तन में ला सकती हैं। इसी शक्ति का प्रयोग करते हुए उपरोक्त राज्य सरकारों ने राज्य सीमा में फेर-बदल के परिणामस्वरूप राज्यों में मिले नए क्षेत्रों तथा उसमें विलीन रियासतों में भी उसे लागू कर दिया है।

अधिनियम में प्रयुक्त पदों का निर्वचन

धारा २—इस अधिनियम में जब तक कि कोई बात विषय या संदर्भ से विरुद्ध न हो–

(१) 'पशु' के अन्तर्गत हाथी, ऊँट, भैंस, घोड़े, घोड़ियाँ, खस्सी पशु, टट्टू, बछड़े, बछेड़ियाँ, खच्चर, गधे, सुअर, मेढे, मेढ़ियाँ, भेड़ें, मेमने, बकरियाँ और बकरियों के मेमने हैं।

(२) 'वन अधिकारी' से ऐसा कोई व्यक्ति अभिप्रेत है जिसे राज्य सरकार या राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त सशक्त कोई अधिकारी इस अधिनियम के सब

या किसी प्रयोजन को पूरा करने के लिए अथवा इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए किसी नियम के अधीन वन अधिकारी द्वारा की जाने के लिए कोई बात करने के लिए नियुक्त करे;

(३) 'वन अपराध' से इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए किसी नियम के अधीन दण्डनीय कोई अपराध अभिप्रेत है।

(४) 'वन-उपज' के अन्तर्गत—

(क) निम्नलिखित वस्तुएँ आती हैं अर्थात् इमारती लकड़ी, लकड़ी का कोयला, कुचुक, खैर, लकड़ी का तेल, राल, प्राकृतिक वार्निश, छाल, लाख, महुआ के फूल, महुआ के बीज, कुथ और हरड़, भले ही वे वन में पाई या वन से लाई गयी हों या नहीं; और

(ख) निम्नलिखित वस्तुएँ, उस सूरत में आती हैं जिसमें कि वे वन में पाई जाती हैं, अर्थात्—

(i) वृक्ष और पत्ते, फूल और फल और वृक्षों के इसमें इसके पूर्व अवर्णित सब अन्य भाग और उपज,

(ii) (घास, बेलें, नरकुल और काई सहित) वे पौधे जो वृक्ष नहीं हैं और ऐसे पौधों के सब भाग और उपज,

(iii) वन्य पशु और खालें, हाथी दाँत, सींग, हड्डियाँ, रेशम, रेशम के कोए, शहद और मोम तथा पशुओं के सब अन्य भाग या उत्पाद,

(iv) पीट, सतही मिट्टी, चट्टान और (चूना पत्थर, लेटराइट, खनिज तेल और खानों और खदानों की सब पैदावार सहित) खनिज;

(४ क) 'स्वामी' के अन्तर्गत, ऐसी सम्पत्ति के बारे में, प्रतिपाल्य अधिकरण आता है जो ऐसे अधिकरण के अधीक्षण या भार साधन में है;

(५) 'नदी' के अन्तर्गत कोई सरिता, नहर, सकरी खाड़ी, या अन्य प्राकृतिक या कृत्रिम जल सरणी है,

(६) 'इमारती लकड़ी' के अन्तर्गत वृक्ष आते हैं जबकि वे गिर गए हों या गिराए गए हों और सब प्रकार की लकड़ी चाहे वह किसी प्रयोजन के लिए काटी, गढ़ी, या खोखली की गई हो या नहीं, और

(७) 'वृक्ष' के अन्तर्गत ताड़, बाँस, ठूँठ, झाड़-झांखड़, और बेंत आते हैं।

संशोधन

बिहार संशोधन—बिहार सरकार ने १९३४ के बिहार और उड़ीसा अधिनियम संख्या ३ की धारा २ के द्वारा भारतीय अधिनियम की धारा २ के खण्ड (४ क) के स्थान पर निम्नलिखित नया खण्ड प्रतिस्थापित किया है :

(४-क) 'स्वामी' के अन्तर्गत—

(i) ऐसी सम्पत्ति के बारे में, प्रतिपाल्य अधिकरण अधिनियम १८७९ या मद्रास प्रतिपाल्य अधिकरण १८९९ के अधीन गठित प्रतिपाल्य अधिकरण आता है जो ऐसे अधिकरणों में से किसी एक के अधीक्षण या भार साधन में है;

(ii) ऐसी सम्पत्ति के बारे में, छोटा नागपुर विल्लंगमित सम्पदा अधिनियम १८७६ की धारा २ के अधीन नियुक्त प्रबन्धक आता है जिसका प्रबन्ध ऐसे प्रबन्धक में निहित है।

मध्य प्रदेश संशोधन—मध्य प्रदेश सरकार ने भारतीय वन अधिनियम की धारा २ के खण्ड (४) के उपखण्ड (क) में 'लाख' शब्द के बाद 'चपड़ा, गोंद' और उपखण्ड (ख) के क्रम संख्या (iv) के बाद क्रम संख्या (v) खड़ी कृषि फसल अन्तः स्थापित किए हैं।

टिप्पणी—इस धारा में कहीं तो 'के अन्तर्गत है या आता है' शब्दों का प्रयोग किया गया है और कहीं 'से अभिप्रेत है' (means) शब्द का। जहाँ परिभाषाओं में 'के अन्तर्गत है या आता है', शब्दों का प्रयोग किया गया है वहाँ पारिभाषित शब्द का सामान्य अर्थ लिया जाता है और परिभाषा में वर्णित बातें भी उसमें सम्मिलित समझी जाती हैं। उदाहरण के लिए 'पशु' के अन्तर्गत गाय, बैल नहीं लिखे हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं कि वे पशु नहीं हैं। वास्तव में तात्पर्य यह है गाय, बैल तो सामान्यतया पशु माने ही जाते हैं; इनके अतिरिक्त जो पशु वन अधिनियम के अन्तर्गत आते हैं वे लिख दिए गए हैं। जिस परिभाषा में 'से अभिप्रेत है' शब्द का प्रयोग किया गया है, वह स्वतः पूर्ण है और उस शब्द की परिभाषा में किए गए अर्थ से भिन्न कोई अर्थ नहीं होता।

'वन अधिकारी' शब्द की परिभाषा से स्पष्ट है कि इसमें मुख्य वन संरक्षक से लेकर निम्नतम श्रेणी के कार्यपालक (executive) अधिकारी आते हैं। उदाहरण के लिए **अब्दुल अजीज बनाम संघ राज्य क्षेत्र त्रिपुरा** वाद (१९६३ (१) **क्रि० एल० जे०** ५५८) में न्यायाधीश ने मत प्रकट किया है कि रोपवन रक्षक (प्लान्टेशन वाचर) भारतीय वन अधिनियम १९२७ की धारा २ (२) के अर्थों में वन अधिकारी है। इस शब्द के अन्तर्गत सब कार्यपालक अधिकारी आते हैं चाहे वे इस समय किसी विशेष कार्य जैसे कार्य या प्रबन्ध योजना (वर्किंग प्लान) बनाना, अनुसन्धान करना आदि पर लगे हों क्योंकि वे मूल रूप से वन अधिनियम के प्रयोजनों को पूरा करने के लिए ही नियुक्त किए गए हैं। वन अधिकारी होने के लिए वन विभाग का अधिकारी होना भी आवश्यक नहीं है। किसी अन्य विभाग का अधिकारी भी वन अधिकारी हो सकता है यदि राज्य सरकार उसे वन अधिनियम के प्रयोजनों को पूरा करने के लिए राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना द्वारा नियुक्त करे। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश में नैनीताल के सहायक आयुक्त, कुमाऊँ डिवीजन

के संरक्षित वनों के लिए वन अधिकारी नियुक्त किए गए हैं।

'वन-उपज' की परिभाषा के दो भाग हैं। धारा २ (४) (क) में उन वस्तुओं का उल्लेख है जो 'वन में पाई या वन से लाई गई हों या नहीं'। इस पद की व्याख्या करते हुए **यशवन्त मनु डोडामनी बनाम मैसूर राज्य वाद मैसूर** (१९६२ (१) **क्रि० एल० जे०** ८३२) के निर्णय में कहा गया कि 'वन में पाई गई हों' पद आवश्यक रूप से यह अपेक्षा नहीं करता कि वस्तुओं के वन-उपज बनने के पूर्व उन वस्तुओं का किसी जीवित व्यक्ति द्वारा वन में वास्तविक प्रकटीकरण किया जाए। यह पद वास्तव में उन वस्तुओं को निर्देशित करता है जो वन में उगती हैं जैसे इमारती लकड़ी के वृक्ष, ईंधन वृक्ष, फल, फूल आदि या खनिज निक्षेप या वन में विद्यमान पत्थर। इस प्रकार प्रभेदक विशेषता वन क्षेत्र के अन्दर उनके अस्तित्व या उगने या निक्षेप का होना है, न कि किसी जीवित व्यक्ति द्वारा उनका प्रकटीकरण। 'वन से लाई गई हों' पद का अन्तर्निहित भाव समानतः इस प्रकार लायी गई वस्तु के स्रोत के वन में होने पर बल देता है। 'से' शब्द के प्रयोग से वस्तु के लाए जाने के भाव में उसके प्रवहण या परिवहन का प्रारम्भ असंदिग्ध रूप से वन में है। इसी प्रकार **कासी प्रसाद साहू बनाम उड़ीसा राज्य वाद** [ए० आई० आर० १९६३ उड़ीसा २४] के निर्णय में कहा गया कि उपखण्ड (क) में वर्णित महुआ के फूल, महुआ के बीज आदि वस्तुएँ वन-उपज होंगी भले ही वे वन में पाई या वन से लाई गई हों या नहीं। परन्तु उपखण्ड (ख) में वन-उपज का वर्णन करते हुए स्पष्ट रूप से कथित है कि वे वन-उपज केवल उसी सूरत में होंगी जिसमें कि वे वन में पाई जाती हैं या वन से लाई जाती हैं। इसलिए महुआ के फूल, भले ही वे वन से लाए गए थे या नहीं, भारतीय वन अधिनियम के प्रयोजनों के लिए वन-उपज समझे जायेंगे। शब्दों का नैसर्गिक अर्थ देते हुए स्पष्ट अनुमान यह है कि प्राइवेट भूमि पर उगे हुए वृक्षों के महुआ के फूल भी वन-उपज परिभाषा के अन्तर्गत आते हैं।

वन-उपज की परिभाषा में रेत का उल्लेख नहीं है। इस सम्बन्ध में **महेन्द्र नाथ पाठक बनाम असम राज्य वाद** (**नि० प०** १९७० : **असम तथा नागालैण्ड**-६६) में अभिनिर्धारित किया गया कि जो शब्द वन-उपज की परिभाषा की व्यापकता का निर्देश करते हुए दिया गया है वह 'इन्क्लूड्स' (के अन्तर्गत आता है) है। उस शब्द को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि जो भी वस्तुएँ उस धारा में वर्णित हैं उनके अतिरिक्त अन्य वस्तुएँ भी हो सकती हैं। संक्षेप में, वन में प्रायः जो भी पाया जाता है, वन-उपज है। इसी प्रकार **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम जिला जज बिजनौर तथा अन्य वाद** (**ए० आई० आर० १९८१ इलाहाबाद २०५**) में मछली को भी वन-उपज अभिनिर्धारित किया गया है।

वन-उपज की परिभाषा के सम्बन्ध में यह बात ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि उपखण्ड (क) में वर्णित वस्तुएँ हर दशा में वन-उपज होती हैं तथापि इसका यह अर्थ नहीं कि वे सरकार की सम्पत्ति हैं। उदाहरण के लिए इमारती लकड़ी वन-

उपज है परन्तु वन-उपज होने से ही वह सरकार की सम्पत्ति नहीं हो जाती। उसकी चोरी का अभियोग सिद्ध करने के लिए उसे सरकारी वन से बिना अनुज्ञा पत्र के किसी वृक्ष को गिराकर निकाले जाने का तथ्य सिद्ध करना पड़ेगा।

'इमारती लकड़ी' शब्द का उल्लेख धारा २ (४) (क) में है और फिर वह धारा २ (६) में इसलिए वर्णित किया गया ताकि इस पद को एक व्यापक अर्थ दिया जा सके। इस प्रकार इमारती लकड़ी के अन्तर्गत वृक्ष आते हैं जबकि वे गिर गए हों, गिराए गए हों और सब प्रकार की लकड़ी चाहे वह किसी प्रयोजन के लिए काटी, गढ़ी या खोखली की गई हो या नहीं। इस धारा को धारा २ (७) के साथ पढ़ने से यह निष्कर्ष निकलता है कि इमारती लकड़ी पद में उन प्रजातियों के वृक्ष भी हो सकते हैं जो सामान्यतया भवन निर्माण के काम नहीं आते। **थुना रुना अना वेलाचामी सर्वई बनाम समुसुवावा राउदर** (ए० आई० आर० १९२८ मद्रास ३९२) वाद में अभिनिर्धारित किया गया इमारती लकड़ी पद वृक्षों के उस वर्ग तक जिसकी इमारती लकड़ी निर्माण प्रयोजन के लिए उपयोग में लाई जाती है, सीमित नहीं किया जा सकता।

वन—इस पद की परिभाषा भारतीय वन अधिनियम १९२७ में नहीं है। इस साशय लोप का कारण तो यह था कि १८६५ के अधिनियम में परिभाषा देने के सुखद अनुभव नहीं हुए परन्तु उद्देश्य यह था कि परिभाषा की अनुपस्थिति में न्यायाधीशों द्वारा उसे शब्द कोषों की सहायता से अधिकतम व्यापक अर्थ में लिया जाए। उदाहरण के लिए **लक्ष्मण इच्छाराम बनाम डिवीजनल फॉरेस्ट आफीसर रायगढ़ वाद** (ए० आई० आर० १९६३ नागपुर ५१) में अभिनिर्धारित किया गया कि अधिनियम में परिभाषित न होने की स्थिति में इस पद को सामान्य शब्द कोष के अर्थ में लिया जाना चाहिए। शार्टर आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी में वन का अर्थ (i) चरागाह से यदाकदा अन्तर्मिश्रित वृक्षों और निम्नरोह से ढका हुआ विस्तृत भू-भाग, (ii) जंगल भूमि का क्षेत्र जो सामान्यतया उस प्रकार का है जो जंगली जानवरों के शिकार और आखेट आदि के लिए पृथक कर दिया जाता है, या (iii) कोई वन्य बिना जुता बंजर, के रूप में दिया गया है। वन-उपज की परिभाषा के उपखण्ड (ख) के अधीन क्रमांक (ii), (iii) तथा (iv) उपदर्शित करते हैं कि 'वन' शब्द परिभाषा में अपने अधिकतम व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।

अध्याय २

आरक्षित वन

(Reserved Forest)

वन अनुसंधान संस्थान देहरादून द्वारा प्रकाशित 'इण्डियन फॉरेस्ट एण्ड फॉरेस्ट प्रोडक्ट्स टर्मीनॉलौजी' के अनुसार **आरक्षित वन भारतीय वन अधिनियम या अन्य किसी वन विधि के अधीन इस प्रकार गठित किसी क्षेत्र को कहते हैं।** भारतीय वन अधिनियम १९२७ के अध्याय २ में आरक्षित वन के सम्बन्ध में विधिक व्यवस्थाएँ हैं। इनमें उसके गठन की प्रक्रिया, उसके लिए धारा २० के अधीन निकाली जाने वाली अधिसूचना, आरक्षण का प्रभाव तथा आरक्षित वन में प्रतिषिद्ध कार्य तथा उनको करने पर दण्ड आदि का वर्णन है। अतः दूसरे शब्दों में **आरक्षित वन वह वन है जो भारतीय वन अधिनियम १९२७ के अध्याय २ (या किसी अन्य विधि) में वर्णित प्रक्रिया द्वारा गठित किए जाने के बाद उसकी धारा २० के अधीन अधिसूचना द्वारा नियत तारीख से आरक्षित वन घोषित किया गया हो।**

आरक्षण का उद्देश्य—वन राष्ट्र के लिए बहुत लाभकारी होते हैं। वे जलवायु पर अनुकूल प्रभाव डालते हैं। विनाशकारी बाढ़ों तथा सूखे पर नियंत्रण रखते हैं और भूमि तथा जल का संरक्षण करते हैं। इन लाभों के कारण कृषि पर इतना अनुकूल प्रभाव पड़ता है कि वन कृषि की 'पोषक माता' (foster mother) कहलाते हैं। वनों के ये लाभ राष्ट्र को अनन्त काल तक तभी मिल सकते हैं जब वन चिरस्थायी या शाश्वत हों। परन्तु अपनी प्राकृतिक उत्पत्ति के कारण वन सार्वजनिक सम्पत्ति समझे जाते हैं और प्रत्येक व्यक्ति उनका मनमाना उपयोग करना चाहता है। ऐसे अनियमित और अत्यधिक समुपयोजन (exploitation) से वनों की दशा खराब हो जाती है। अतः आरक्षण का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य वनों को अच्छी दशा में चिरस्थायी बनाना है जिससे उनसे मिलने वाले लाभ भी चिरस्थायी हों।

ऊपर लिखे लाभों के अतिरिक्त वन देश के निवासियों की तथा उद्योगों की प्रकाष्ठ तथा अन्य वन-उपज सम्बन्धी आवश्यकता पूरी करते हैं। परन्तु वन के निकट रहने वाले व्यक्तियों के मनमाना उपयोग से उसमें बाधा पड़ती है। अतः आरक्षण का दूसरा उद्देश्य यह है कि पड़ौसी ग्रामवासियों के अधिकार निश्चित रूप से निर्धारित कर दिए जाएँ जिससे वैधानिक प्रबन्ध द्वारा उन वनों की शेष उपज राष्ट्र तथा उसके उद्योगों के काम में लायी जा सके। कोई निर्बन्धन या प्रतिषेध उस

समय तक प्रभावी नहीं होता जब तक कि उसके उल्लंघन के लिए शास्ति का उपबन्ध न हो। अतः भारतीय वन अधिनियम १९२७ में आरक्षित वन गठन की प्रक्रिया के वर्णन के साथ उसमें कतिपय कार्यों को प्रतिषिद्ध करके उनके उल्लंघन के लिए शास्ति का उपबन्ध करना आरक्षण का तीसरा उद्देश्य है।

आरक्षित वनों के सम्बन्ध में अधिनियम की विभिन्न धाराएं

धारा ३—राज्य सरकार ऐसी किसी भूमि या बंजर भूमि को, जो सरकार की सम्पत्ति है या जिस पर सरकार के साम्पत्तिक अधिकार हैं या जिसकी पूरी वन-उपज या उस उपज के किसी भाग की सरकार हकदार है, इसमें इसके पश्चात् उपबन्धित रीति से आरक्षित वन बना सकेगी।

संशोधन—उत्तर प्रदेश सरकार ने भारतीय वन अधिनियम १९२७ की धारा ३ के स्थान पर इण्डियन फॉरेस्ट (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम, १९६५ की धारा २ के द्वारा निम्नलिखित नई धारा प्रतिस्थापित की है :

३. राज्य सरकार किसी ऐसी वन-भूमि या बंजर-भूमि को या किसी खाता (होल्डिंग) अथवा गाँव आबादी में तत्समय सम्मिलित भूमि से भिन्न किसी ऐसी अन्य भूमि को जो सरकार की सम्पत्ति हो अथवा जिस पर सरकार का स्वामिगत अधिकार हो या जिसकी सम्पूर्ण वन-उपज अथवा उस उपज के किसी भाग की हकदार सरकार हो, एतस्मिन्पश्चात् उपबन्धित रीति से आरक्षित वन बना सकती है।

स्पष्टीकरण—पद 'खाता' का वह अर्थ होगा जो यू० पी० टेनेन्सी एक्ट १९३९ में पद 'खाता' के लिए दिया गया हो और पद 'गाँव आबादी' का वह अर्थ होगा जो संयुक्त प्रान्त का गाँव आबादी एक्ट, सन् १९४७ ई० में इसके लिए दिया गया हो।

टिप्पणी—यह धारा सरकार को कतिपय भूमियों को आरक्षित वन घोषित करने की शक्ति देती है। इस धारा के अनुसार राज्य सरकार केवल उसी वन-भूमि या बंजर-भूमि को आरक्षित वन बना सकती है (i) जो सरकार की सम्पत्ति है; (ii) या जिस पर सरकार के साम्पत्तिक अधिकार हैं; (iii) या जिसकी पूरी वन-उपज या उस उपज के किसी भाग की सरकार हकदार है। जब तक कोई वन या बंजर-भूमि इन तीनों में से कोई एक शर्त्त पूरी नहीं करती, वह आरक्षित वन नहीं बनायी जा सकती। **रघुनाथसिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य वाद (आई० एल० आर० १९६२ इलाहाबाद ११)** में अभिनिर्धारित किया गया कि कोई भूमि केवल इसलिए आरक्षित वन घोषित नहीं की जा सकती कि उस पर वृक्ष हैं। जहाँ वृक्ष राज्य सरकार के कभी नहीं थे, वहाँ सरकार अधिनियम की धारा ३ के अधीन ऐसी भूमि को आरक्षित वन घोषित नहीं कर सकती। इस धारा से यह भी स्पष्ट है धारा ३ में प्रदत्त शक्ति का प्रयोग सरकार के विनिश्चय या मत पर निर्भर नहीं है वरन् एक तथ्य के प्रश्न पर निर्भर है। इस तथ्य को विनिश्चय करने की शक्ति

यह धारा सरकार को नहीं देती। अतः जब यह प्रश्न उठे कि क्या वाद की भूमि वन या बंजर-भूमि है या नहीं और क्या सरकार उसकी उपज के किसी भाग की हकदार है या नहीं तो ये प्रश्न न्यायालय द्वारा ही विनिश्चय किए जा सकते हैं न कि सरकार के मत के द्वारा। [**बलवन्त रामचन्द्र नाटू बनाम सपरिषद सैक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इण्डिया (आई० एल० आर० २६ मुम्बई ४८०)**]

धारा ४—(१) **जब कभी किसी भूमि को आरक्षित वन बनाने का विनिश्चय कर लिया गया हो, तब राज्य सरकार—(क) यह घोषणा करने वाली कि यह विनिश्चित किया गया है कि ऐसी भूमि को आरक्षित वन बनाया जाए, (ख) ऐसी भूमि की स्थिति, और सीमाओं को यथासम्भव विनिर्दिष्ट करने वाली, तथा (ग) ऐसी सीमाओं के अन्दर समाविष्ट किसी भूमि में या उस भूमि पर या किसी वन-उपज में या उस उपज पर उन किन्हीं अधिकारों की, जिनकी बाबत यह अभिकथित है कि वे किसी व्यक्ति के पक्ष में विद्यमान हैं, विद्यमानता, स्वरूप और विस्तार की जाँच और अवधारण करने के लिए और उसके सम्बन्ध में ऐसी कार्यवाही करने के लिए, जैसी इस अध्याय में उपबन्धित है, अधिकारी (जिसे इसमें इसके पश्चात् वन-व्यवस्थापन अधिकारी कहा गया है) नियुक्त करने वाली अधिसूचना, राजपत्र में निकालेगी।**

स्पष्टीकरण—खण्ड (ख) के प्रयोजनों के लिए यह पर्याप्त होगा कि वन की सीमाएँ, पथों, नदियों, टीलों या अन्य सुविदित या सहज समझी जाने वाली सीमाओं द्वारा वर्णित कर दी जाएँ।

(२) उपधारा (१) के खण्ड (ग) के अधीन नियुक्त अधिकारी मामूली तौर पर ऐसा व्यक्ति होगा, जिसने वन व्यवस्थापन अधिकारी के पद के सिवाय कोई वन पद धारण नहीं कर रखा है।

(३) इस धारा की कोई बात राज्य सरकार को इस अधिनियम के अधीन वन व्यवस्थापन अधिकारी के कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए तीन से अनधिक किसी संख्या में अधिकारियों को, जिनमें से एक से अनधिक ऐसा व्यक्ति होगा, जो पूर्वोक्त रूप में के सिवाय कोई वन पद धारण करता है, नियुक्त करने से निवारित नहीं करेगी।

टिप्पणी—जब किसी वन-भूमि या बजर-भूमि को आरक्षित वन के रूप में गठित करने का विनिश्चय किया जाता है तो सरकार का कर्त्तव्य है कि वह स्थानीय निवासियों तथा उन व्यक्तियों को जिनका उसमें हित हो, अपने विनिश्चय की जानकारी दे। इसके लिए धारा ४ के अधीन राजपत्र में एक अधिसूचना निकालकर विनिश्चय की घोषणा की जाती है। इस घोषणा के साथ उस भूमि की स्थिति और सीमाओं को विनिर्दिष्ट करने वाला वर्णन तथा लगभग क्षेत्रफल भी अधिसूचना में दिया जाता है। सीमाओं के वर्णन के लिए पथों, नदियों, टीलों या अन्य सुविदित या सहज समझी जाने वाली सीमाओं का वर्णन पर्याप्त होता है। इस अधिसूचना के

द्वारा एक व्यवस्थापन अधिकारी की नियुक्ति भी की जाती है ताकि वह आरक्षित वन गठित करते समय प्रस्थापित आरक्षित वन में भूमि तथा उसकी उपज में या उस पर किन्हीं अधिकारों की विद्यमानता, स्वरूप और विस्तार की जाँच और अवधारण करे।

इस धारा में 'किसी भूमि' शब्दों का यह अभिप्राय नहीं है कि सरकार जिस भूमि को चाहे आरक्षित वन बना सकती है। **जंग बहादुर बनाम राज्य वाद** [१९७१ ए० डब्लू० आर० (एच० सी०) ५९९] में अभिनिर्धारित किया गया कि 'किसी भूमि' शब्द को धारा ३ के साथ पढ़ना चाहिए। दूसरे शब्दों में, 'किसी भूमि' शब्द धारा ३ में वर्णित भूमियों तक ही सीमित है।

यद्यपि यह धारा आरक्षित वन बनाने के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रारम्भिक कदम है तथापि इस अधिसूचना के प्रकाशित कर देने मात्र से ही आरक्षित वन नहीं बन जाता। **भगवान सहाय बनाम डिवीजनल फॉरेस्ट ऑफीसर हजारी बाग वाद (ए० आई० आर० १९४७ पटना २६४)** में अभिनिर्धारित किया गया कि जब तक अधिनियम की धारा २० के अधीन अधिसूचना जारी नहीं होती तब तक कोई वन आरक्षित वन नहीं बनता, चाहे धारा ४ के अधीन अधिसूचना प्रकाशित हो चुकी हो।

धारा ५—धारा ४ के अधीन अधिसूचना निकाले जाने के पश्चात् ऐसी अधिसूचना में समाविष्ट भूमि में या उस भूमि पर कोई अधिकार, उत्तराधिकार के जरिए या सरकार द्वारा या ऐसे व्यक्ति द्वारा या उसकी ओर से, जिसमें ऐसा अधिकार निहित था, जबकि अधिसूचना निकाली गई थी, लिखित रूप में दिए गए अनुदान या की गई संविदा के अधीन अर्जित होने के सिवाय अर्जित न होगा और खेती या किसी अन्य प्रयोजन के लिए ऐसी भूमि में नई कटाई-सफाई ऐसे नियमों के अनुसार किए जाने के सिवाय न की जाएगी जैसे राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त बनाए जाएँ।

संशोधन

उत्तर प्रदेश सरकार ने भारतीय वन अधिनियम, १९२७ की धारा ५ के स्थान पर इण्डियन फॉरेस्ट (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम, १९६५ की धारा ३ के द्वारा अग्रलिखित नई धारा प्रतिस्थापित की है।

५—धारा ४ के अधीन अधिसूचना निकाले जाने के पश्चात् ऐसी अधिसूचना में समाविष्ट भूमि में या उस पर कोई अधिकार, उत्तराधिकार के जरिए या राज्य सरकार द्वारा या किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा या उसकी ओर से जिसमें विज्ञप्ति जारी करते समय ऐसा करने का अधिकार निहित था, किसी लिखित अनुदान या की गई संविदा के अधीन अर्जित होने के सिवाय अर्जित न होगा और राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त बनाए गए नियमों के अनुसार होने के सिवाय ऐसी भूमि में खेती या किसी अन्य प्रयोजन के लिए न तो कोई नई कटाई-सफाई की जाएगी और न वहाँ

का कोई वृक्ष गिराया जाएगा, न उसका परितक्षण किया जाएगा, न उसे छाँटा जाएगा, न उसे छेवा जाएगा, न उसे जलाया जाएगा, न उसकी छाल उतारी जाएगी, न उसकी पत्तियाँ तोड़ी जाएँगी, न अन्यथा उसे नुकसान पहुँचाया जाएगा और न वहाँ से किसी वन-उपज को हटाया जाएगा।

टिप्पणी—आरक्षित वन बनाने में काफी समय लग जाता है। इस कारण यह आवश्यक है कि वन अधिकारों का प्रोद्भूत होना वर्जित कर दिया जाए; अन्यथा जहाँ एक ओर नए अधिकारों के प्रोद्भूत होते रहने से आरक्षित वन बनाने के कार्य का कभी अन्त नहीं होगा, वहाँ दूसरी ओर बहुत अधिक नए अधिकार हो जाने से आरक्षित वन बनाने का उद्देश्य ही विफल हो सकता है।

इस धारा में 'नई कटाई-सफाई' शब्द महत्त्वपूर्ण हैं। 'नई' शब्द से तात्पर्य धारा ४ की अधिसूचना निकलने के बाद है। यदि कोई कटाई-सफाई धारा ४ के अधीन अधिसूचना निकालने से पूर्व की है तो वह नई नहीं कही जा सकती। कटाई-सफाई का तात्पर्य वन या बंजर-भूमि पर से वृक्षों, झाड़ियों आदि को काट कर हटाना है। प्रयोजन चाहे जो हो, यदि भूमि आवरण-हीन की गई तो यह कार्य कटाई-सफाई कहलाएगा। **मटरू खाँ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (इलाहाबाद लॉ जरनल १९६० पृष्ठ ५९०)** वाद में अभिनिर्धारित किया गया कि जब कोई भू-भाग वृक्ष-विरहित किया जा रहा है तो उस भू-भाग की कटाई-सफाई की जा रही है। ऐसी कटाई-सफाई के आशय या प्रयोजन के पता लगाने की आवश्यकता नहीं है; केवल कार्य को देखना है और उसका मूल्यांकन करना है। अतः वृक्षों को काट कर हटाने के कार्य को कटाई-सफाई का कार्य मानना भारतीय वन अधिनियम की धारा ५ या धारा २६ में प्रयुक्त भाषा के साथ कोई हिंसा करना नहीं होगा। उत्तर प्रदेश सरकार ने अपने राज्य में प्रवर्तन के लिए मूल अधिनियम की धारा ५ के स्थान पर एक नई धारा प्रतिस्थापित कर दी है। इस प्रतिस्थापित धारा में कटाई-सफाई के साथ-साथ अन्य कई कार्य स्पष्टतया वर्जित कर दिए हैं।

धारा ६—जब कि धारा ४ के अधीन अधिसूचना निकाली जा चुकी है, तब वन व्यवस्थापन अधिकारी—

(क) प्रस्थापित वन की स्थिति और सीमाओं को यथासंभव विनिर्दिष्ट करने वाली,

(ख) उन परिणामों की, जो ऐसे वन के आरक्षण पर इसमें इसके पश्चात् यथा उपबंधित रूप में सुनिश्चित होंगे, व्याख्या करने वाली, और

(ग) ऐसी उद्घोषणा की तारीख से तीन मास से अन्यून कालावधि नियत करने वाली और धारा ४ या ५ में वर्णित किसी अधिकार का दावा करने वाले हर व्यक्ति से यह अपेक्षा करने वाली कि वह वन व्यवस्थापन अधिकारी के समक्ष, ऐसे अधिकार के स्वरूप को और उसके सम्बन्ध में दावाकृत प्रतिकर के (यदि कोई हो) परिमाण और विशिष्टियों को विनिर्दिष्ट करने वाली लिखित सूचना ऐसी कालावधि

के अन्दर उपस्थित करे, या उपस्थित होकर कथन करे,

उद्घोषणा उस भूमि के, जो उस उद्घोषणा में समाविष्ट हैं, पड़ौस के हर नगर और ग्राम में स्थानीय जनभाषा में प्रकाशित करेगा।

टिप्पणी—धारा ४ के अधीन निकाली गई अधिसूचना राजपत्र में प्रकाशित होती है। प्रत्येक व्यक्ति और विशेषकर ग्रामवासियों से यह आशा नहीं की जाती कि वे राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचनाओं को पढ़ेंगे। अतः सरकार के विनिश्चय की जानकारी प्रभावित होने वाले अधिकतम व्यक्तियों को देने के लिए धारा ६ में वन व्यवस्थापन अधिकारी को निदेश दिया गया है कि वह पद ग्रहण करते ही प्रस्थापित आरक्षित वन के पड़ौस के हर नगर और ग्राम में स्थानीय जनभाषा में एक उद्घोषणा प्रकाशित कर प्रस्थापित (proposed) आरक्षित वन की स्थिति तथा सीमाएँ, आरक्षण के परिणाम आदि समझावे और भूमि या वन-उपज या अन्य दावों को निमंत्रित करे। दावा प्रस्तुत करने के लिए उद्घोषणा की तारीख से तीन मास से अन्यून कालावधि नियत की जाती है। दावेदारों के लिए यह आवश्यक नहीं कि वे लिखित आवेदन ही दें। यदि वे वन व्यवस्थापन अधिकारी के सामने उपस्थित होकर दावों का कथन करते हैं तो वह अधिकारी ही उन्हें लेखबद्ध कर लेता है। इस उद्घोषणा की स्थानीय जनभाषा में छपी प्रतियाँ समस्त पड़ौसी ग्रामों में चिपकवायी जाती हैं और पटवारी या ग्रामप्रधानों द्वारा बँटवाई जाती हैं।

हरदयाल बनाम जिला जज झाँसी तथा अन्य वाद (ए० आई० आर० १९७२ इलाहाबाद ४७१) में अभिनिर्धारित किया गया है कि धारा ६ के अधीन उद्घोषणा में दी गई कालावधि बढ़ाने के लिए कोई आवेदन पत्र देना आवश्यक नहीं है। विधि में यह अपेक्षा कहीं नहीं की गई है कि दावेदार कालावधि के अन्दर दावा प्रस्तुत न कर सकने के विलम्ब को उपमर्षित (condone) करने के लिए प्रार्थना करते हुए एक औपचारिक आवेदन पत्र द्वारा स्पष्टीकरण दे और वन व्यवस्थापन अधिकारी अपना समाधान अभिलिखित करे।

धारा ७—वन व्यवस्थापन अधिकारी धारा ६ के अधीन दिए गए सब कथनों को लिखेगा तथा उस धारा के अधीन सम्यक् रूप से किए गए सब दावों की और उन अधिकारों के अस्तित्व की, जो धारा ४ या धारा ५ में वर्णित हैं, और जिनके लिए दावा धारा ६ के अधीन नहीं किया गया है, जाँच किसी सुविधाजनक स्थान पर वहाँ तक करेगा, जहाँ तक कि वे सरकार के अभिलेखों और ऐसे किन्हीं व्यक्तियों के, जिनकी बाबत यह संभाव्यता है कि वे उनसे परिचित होंगे, साक्ष्य से अभिनिश्चेय हैं।

धारा ८—ऐसी जाँच के प्रयोजन के लिए वन व्यवस्थापन अधिकारी निम्नलिखित शक्तियाँ प्रयुक्त कर सकेगा, अर्थात्—(क) किसी भूमि पर स्वयं या इस प्रयोजन के लिए अपने द्वारा अधिकृत किसी अधिकारी द्वारा प्रवेश करने और उसका सर्वेक्षण करने, उसे अभ्यंकित करने और उसका नक्शा बनाने की शक्ति, और

(ख) वादों के विचारण में सिविल न्यायालय की शक्तियाँ।

टिप्पणी—धारा ६ के अधीन उद्घोषणा प्रकाशित करने के बाद वन व्यवस्थापन अधिकारी प्रस्थापित आरक्षित वन का, जितना अधिक सम्भव हो, निरीक्षण करता है। इन दौरों में वह स्वयं भी सभाएं आयोजित कर ग्रामवासियों तथा अधीनस्थ राजस्व कर्मचारियों को की जा रही कार्यवाही का अर्थ समझाता है और उससे प्रभावित व्यक्तियों को दावा प्रस्तुत करने का अवसर देता है। वह स्वयं भी सरकारी अभिलेख देख कर और जानकार व्यक्तियों के कथन लेकर ऐसे अधिकारों का पता लगाता है जिनका दावा प्रस्तुत न किया गया हो। तब वह सुविधाजनक स्थान को जाँच के लिए चुनता है और दोनों पक्षकारों (दावेदार तथा वन विभाग) को अपने पक्ष के समर्थन में साक्ष्य आदि प्रस्तुत करने के लिए निमन्त्रित करता है। इस जाँच के लिए वह धारा ८ में प्रदत्त शक्तियों का उपयोग कर सकता है। वह दावेदारों तथा उनके साथियों को शपथ दिला कर उनके कथन अभिलिखित करता है। आवेदन पत्रों पर नियमानुसार न्यायालय फीस का स्टाम्प लगाया जाता है। वन विभाग की ओर से उप-वन संरक्षक या सहायक वन संरक्षक उपस्थित हो सकता है। दोनों पक्षकार अपने दावों की पैरवी के लिए धारा १६ के अधीन प्लीडर नियुक्त कर सकते हैं। वन व्यवस्थापन अधिकारी प्रतिदिन किये गये कार्यों की दैनिक डायरी लिख कर उसके नीचे प्रतिदिन हस्ताक्षर करता है।

धारा ९—वे अधिकार, जिनका दावा धारा ६ के अधीन नहीं किया गया है और जिनके अस्तित्व की कोई जानकारी धारा ७ के अधीन की गई जाँच द्वारा नहीं मिली है, जब तक कि उन अधिकारों का दावा करने वाला व्यक्ति, वन व्यवस्थापन अधिकारी का यह समाधान कि धारा ६ के अधीन नियत कालावधि के अन्दर ऐसा दावा न करने के लिए उसके पास पर्याप्त कारण था, धारा २० के अधीन अधिसूचना के प्रकाशित होने से पूर्व नहीं कर देता, निर्वापित हो जायेंगे।

टिप्पणी—यह धारा केवल उन्हीं अधिकारों पर लागू होती है जो धारा ३ में उल्लिखित वन-भूमि में या बंजर-भूमि से सम्बन्धित हो। **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम महन्त अवैधनाथ (ए० आई० आर० १९७७ इलाहाबाद १९२)** वाद में अभिनिर्धारित किया गया है कि धारा ९ को आकर्षित कर सकने से पूर्व राज्य सरकार को यह सिद्ध करना होगा कि विवादग्रस्त भूमि अधिनियम की धारा ३ के अधीन वन-भूमि या बंजर-भूमि थी। यदि विवादग्रस्त भूमि धारा ३ के अधीन वन-भूमि या बंजर-भूमि न हो तो उस बाग भूमि में उसके धारक के अधिकार प्रभावित नहीं होते।

धारा १०—(१) वन व्यवस्थापन अधिकारी स्थानान्तरी खेती की पद्धति से सम्बन्धित दावे की अवस्था में, दावे की और किसी स्थानीय नियम या आदेश की, जिसके अधीन वह पद्धति अनुज्ञात या विनियमित होती है, विशिष्टियों को देने वाला कथन अभिलिखित करेगा, और वह कथन अपनी इस राय के साथ कि

क्या पद्धति पूर्णतः या भागतः अनुज्ञात या प्रतिषिद्ध होनी चाहिए, राज्य सरकार को भेजेगा।

(२) राज्य सरकार उस कथन और राय के प्राप्त होने पर उस पद्धति को पूर्णतः या भागतः अनुज्ञात या निषिद्ध करने वाला आदेश दे सकेगी।

(३) यदि ऐसी पद्धति पूर्णतः या भागतः अनुज्ञात की जाती है तो वन-व्यवस्थापन अधिकारी, (क) बन्दोबस्त वाली भूमि की सीमाओं को इस प्रकार बदल कर कि पर्याप्त विस्तार वाली, यथोचित प्रकार की और युक्तियुक्त रूप से सुविधाजनक स्थान में की भूमि दावेदारों के प्रयोजनों के लिए अपवर्जित हो जाए, या (ख) बन्दोबस्त वाली भूमि के कतिपय प्रभागों को पृथकतः अभ्यंकित कराकर और उसमें ऐसी शर्तों के अधीन, जो वह विहित करे, स्थानान्तरी खेती की पद्धति के लिए अनुज्ञा दावेदारों को देकर, उसके प्रयोग का प्रबन्ध कर सकेगा।

(४) उपधारा (३) के अधीन किये गए सब इन्तजाम राज्य सरकार की पूर्व मंजूरी के अधीन होंगे।

(५) सभी मामलों में स्थानान्तरी खेती की पद्धति के बारे में यह समझा जाएगा कि यह ऐसा विशेषाधिकार है जिसे राज्य सरकार नियंत्रित, निर्बन्धित और उत्सादित कर सकती है।

टिप्पणी—इस धारा से स्पष्ट है कि वन व्यवस्थापन अधिकारी को स्थानान्तरी खेती के दावे के सम्बन्ध में विनिश्चय करने तथा उस पद्धति को अनुज्ञात या प्रतिषिद्ध करने की कोई शक्ति नहीं है। यह शक्ति केवल राज्य सरकार में निहित है। सरकार द्वारा पूर्णतः या भागतः अनुज्ञात किये जाने की अवस्था में वन व्यवस्थापन अधिकारी को तो उनके प्रयोग का प्रबन्ध करके भी राज्य सरकार से मंजूरी लेनी पड़ती है।

धारा ११—(१) वन व्यवस्थापन अधिकारी किसी भूमि में या पर ऐसे किसी अधिकार विषयक किये गए दावे की दशा में, जो मार्ग अधिकार या चरागाह अधिकार या वन-उपज या जलमार्ग के अधिकार से भिन्न है, उसे पूर्णतः या भागतः मंजूर या खारिज करने वाला आदेश देगा।

(२) यदि ऐसा दावा पूर्णतः या भागतः मंजूर किया जाता है, तो वह व्यवस्थापन अधिकारी या तो—(i) ऐसी भूमि को प्रस्थापित वन सीमाओं से अपवर्जित करेगा; या (ii) ऐसे अधिकारों के अभ्यर्पण के लिए उसके स्वामी से करार करेगा; या (iii) भूमि अर्जन अधिनियम, १८९४ द्वारा उपबन्धित रीति से ऐसी भूमि को अर्जित करने के लिए कार्यवाही करेगा।

(३) ऐसी भूमि को इस प्रकार अर्जित करने के प्रयोजन के लिए—(क) वन व्यवस्थापन अधिकारी की बाबत यह समझा जाएगा कि वह भूमि अर्जन अधिनियम, १८९४ के अधीन कार्यवाही करने वाला कलक्टर है; (ख) दावेदार के बारे में यह समझा जाएगा कि वह हितबद्ध और उस अधिनियम की धारा ९ के

अधीन दी गई सूचना के अनुसार उसके समक्ष हाजिर होने वाला व्यक्ति है; (ग) उस अधिनियम की पूर्ववर्ती धाराओं के उपबन्धों के बारे मे यह समझा जाएगा कि उनका अनुपालन हो चुका है; और (घ) कलक्टर, दावेदार की सम्मति से या न्यायालय, दोनों पक्षकारों की सम्मति से, भूमि के रूप में प्रतिकर अधिनिर्णीत कर सकेगा।

संशोधन

उत्तर प्रदेश सरकार ने भारतीय वन अधिनियम १९२७ की धारा ११ में उपधारा (३) के पश्चात् इण्डियन फॉरेस्ट (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम, १९६५ की धारा ४ के द्वारा निम्नलिखित नयी उपधारा बढ़ा दी है :

(४) उपधारा (३) के उपबन्ध उस दशा में भी लागू होंगे जब वन व्यवस्थापन अधिकारी इस अधिनियम के अधीन अपील या पुनरीक्षण में दिए गए किसी आदेश के परिणामस्वरूप किसी भूमि का अर्जन करने की कार्यवाही करें।

टिप्पणी—इस धारा में भूमि से सम्बन्धित दावों को निपटाने की प्रक्रिया का वर्णन है। व्यवस्थापन अधिकारी ऐसे दावों को सुनकर अपना निर्णय सुनाता है। यदि वह ऐसा दावा पूर्णतः या भागतः मंजूर करता है तो वह उसके सम्बन्ध में कुछ प्रबन्ध करता है। यदि वह भूमि प्रस्थापित आरक्षित वन की बाहरी सीमा पर है तो वह आरक्षित वन की सीमा बदल कर उसे बाहर कर देता है। यदि वह भूमि अन्दर है तो वह उसके स्वामी के अधिकार के अभ्यर्पण के लिए करार करता है। उसके बदले में वह उसे उस भूमि के मूल्य बराबर धन प्रतिकर के रूप में दिलाता है या उस भूमि के बदले में समान मूल्य की भूमि आरक्षित वन के बाहर दिलाता है। इस करार के लिए दोनों पक्षकारों की लिखित सहमति होनी चाहिए। यदि यह सम्भव न हो तो उसे चक के रूप में स्वीकार कर उसकी सीमा निर्धारित कर आरक्षित वन सीमा के बाहर कर देता है। यदि चक के रूप में बनाना उचित न हो और दावेदार बदले में मूल्य या भूमि न ले तो वन व्यवस्थापन अधिकारी भूमि अर्जन अधिनियम के अधीन उसका अर्जन कर लेता है।

धारा १२—चरागाह या वन-उपज पर के अधिकारों से सम्बद्ध दावे की दशा में, वन व्यवस्थापन अधिकारी उन्हें पूर्णतः या भागतः मंजूर या खारिज करने वाला आदेश पारित करेगा।

धारा १३—वन व्यवस्थापन अधिकारी धारा १२ के अधीन कोई आदेश पारित करते समय निम्नलिखित को यावत्साध्य अभिलिखित करेगा—(क) अधिकार का दावा करने वाले व्यक्ति का नाम, उसके पिता का नाम, जाति, निवास और उपजीविका, और (ख) उन सब खेतों या खेतों के समूहों (यदि कोई हों) का नाम, स्थिति और क्षेत्रफल और उन सब भवनों के (यदि कोई हों) नाम और स्थिति, जिनके विषय में ऐसे अधिकारों के प्रयोग का दावा किया गया है।

धारा १४—यदि वन व्यवस्थापन अधिकारी धारा १२ के अधीन किसी दावे

को पूर्णतः या भागतः मंजूर कर लेता है, तो वह उन ढोरों की संख्या और वर्णन, जिन्हें दावेदार समय-समय पर वन में चराने के लिए हकदार है, वह ऋतु जिसके दौरान ऐसा चराना अनुज्ञात है, उस इमारती लकड़ी और अन्य वन-उपज का परिमाण जिसे वह समय-समय पर लेने या प्राप्त करने के लिए प्राधिकृत है, और ऐसी अन्य विशिष्टियाँ, जैसी उस मामले में अपेक्षित हों, विनिर्दिष्ट करके यह भी अभिलिखित करेगा कि कहाँ तक वह दावा इस प्रकार मंजूर किया गया है। वह यह भी अभिलिखित करेगा कि दावाकृत अधिकारों के प्रयोग द्वारा अभिप्राप्त इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज बेची जा सकेगी या वस्तु-विनियमित की जा सकेगी या नहीं।

धारा १५—(१) वन व्यवस्थापन अधिकारी, ऐसे अभिलेख तैयार करने के पश्चात् अपनी सर्वोत्तम योग्यता के अनुसार और जिस आरक्षित वन के सम्बन्ध में दावा किया गया है, उसको बनाए रखने का सम्यक् ध्यान करते हुए, ऐसे आदेश पारित करेगा, जिनसे इस प्रकार मंजूर किए गए अधिकारों का निरन्तर प्रयोग सुनिश्चित हो जाएगा।

(२) वन व्यवस्थापन अधिकारी इस प्रयोजन के लिए (क) पर्याप्त विस्तार वाले और युक्तियुक्त रूप से सुविधाजनक स्थान में के किसी अन्य वन खण्ड को ऐसे दावेदारों के प्रयोजन के लिए उपवर्णित कर सकेगा और उन्हें इस प्रकार मंजूर किए गए विस्तार तक (यथास्थिति) चरागाह या वन-उपज का अधिकार प्रदान करने वाला आदेश अभिलिखित कर सकेगा; या (ख) प्रस्थापित वन की सीमाओं को इस प्रकार बदल सकेगा कि दावेदारों के प्रयोजन के लिए पर्याप्त विस्तार की और युक्तियुक्त रूप से सुविधाजनक स्थान में की वन-भूमि अपवर्जित हो जाए; (ग) ऐसे दावेदारों को, यथास्थिति, चरागाह या वन-उपज के अधिकार ऐसे मंजूर किए गए विस्तार तक ऐसी ऋतु में, प्रस्थापित वन के ऐसे प्रभागों के अन्दर, और ऐसे नियमों के अधीन, जो राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त बनाए जाएँ, चालू रखने वाला आदेश अभिलिखित कर सकेगा।

टिप्पणी—धारा १२ से १५ में चरागाह या वन-उपज सम्बन्धी अधिकारों के दावों को निबटाने की प्रक्रिया का वर्णन है। यह वन व्यवस्थापन अधिकारी के कर्त्तव्यों में से सबसे महत्वपूर्ण कर्त्तव्य है क्योंकि वन का संरक्षण और ग्राम निवासियों की संतुष्टि इसी पर निर्भर करती है। इन दावों के प्राप्त होने पर वह इन दावों के सम्बन्ध में धारा १३ में दी गई सूचनाएँ अभिलिखित कर लेता है। फिर प्रत्येक दावे के सम्बन्ध में वह जाँच करता है और किसी विशिष्ट वन के सम्बन्ध में वन अधिकारी से यह जानकारी प्राप्त कर लेता है कि वह वन अधिकारों का कितना भार वहन कर सकता है। इसके बाद वह अपना निर्णय देता है। इस निर्णय को वह धारा १४ में दिए गए विस्तार से देता है और उनके प्रयोग के लिए धारा १५ में वर्णित प्रबन्ध करता है।

धारा १६—यदि वन व्यवस्थापन अधिकारी आरक्षित वन को बनाए रखने का सम्यक् ध्यान रखकर धारा १५ के अधीन ऐसा व्यवस्थापन करना असम्भव पाता है, जिससे इस प्रकार मंजूर किए गए विस्तार तक उक्त अधिकारों का निरन्तर प्रयोग सुनिश्चित हो जाता है, तो वह ऐसे नियमों के अधीन रहते हुए जिन्हें राज्य सरकार इस निमित्त बनाए, उसके बदले में ऐसे व्यक्तियों को धन राशि के संदाय द्वारा या भूमि के अनुदान द्वारा या किसी अन्य रीति से, जिसे वह ठीक समझता है, ऐसे अधिकारों का रूपान्तरण कर सकेगा।

टिप्पणी—इस धारा में वन व्यवस्थापन अधिकारी को यह शक्ति दी गई है कि यदि वह वन बनाए रखने का सम्यक् ध्यान रखकर धारा १५ के अधीन ऐसी व्यवस्था करना असम्भव पाता है जिसमें उसके द्वारा मंजूर किए अधिकारों का निरन्तर प्रयोग सुनिश्चित रहे तो वह ऐसे व्यक्तियों को धन के संदाय या भूमि के अनुदान या अन्य किसी रीति द्वारा उनके अधिकारों का रूपान्तरण कर सकता है।

धारा १७—ऐसा कोई व्यक्ति, जिसने इस अधिनियम के अधीन दावा किया है, या कोई वन अधिकारी राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त साधारणतः या विशेषतः सशक्त अन्य व्यक्ति ऐसे दावे पर धारा ११, धारा १२, धारा १५ या धारा १६ के अधीन वन व्यवस्थापन अधिकारी द्वारा पारित आदेश की तारीख से तीन मास के अन्दर ऐसे आदेश की अपील राजस्व विभाग के कलक्टर से अनिम्न पंक्ति के ऐसे अधिकारी के समक्ष उपस्थित कर सकेगा जिसे राज्य सरकार ऐसे आदेश के विरुद्ध अपील की सुनवाई करने के लिए राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियुक्त करे।

परन्तु राज्य सरकार एक न्यायालय (जिसे इसमें इसके पश्चात् वन न्यायालय कहा गया है) स्थापित कर सकेगी जो राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किए जाने वाले तीन व्यक्तियों से मिलकर गठित होगा, और जब इस प्रकार वन न्यायालय स्थापित हो जाए तब वैसी सब अपीलें उसके समक्ष उपस्थित की जाएँगी।

संशोधन

उत्तर प्रदेश सरकार ने भारतीय वन अधिनियम, १९२७ की धारा १७ के स्थान पर इण्डियन फॉरेस्ट (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम, १९६५ की धारा ५ के द्वारा निम्नलिखित नई धारा प्रतिस्थापित की है।

१७. ऐसा कोई व्यक्ति जिसने इस अधिनियम के अधीन दावा किया है या कोई वन अधिकारी या राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त साधारणतः या विशेषतः सशक्त अन्य व्यक्ति, ऐसे दावे पर धारा ११, धारा १२, धारा १५ या धारा १६ के अधीन वन व्यवस्थापन अधिकारी द्वारा पारित आदेश की तारीख से तीन मास के अन्दर ऐसे आदेश की अपील जिला जज के समक्ष उपस्थित कर सकेगा।

स्पष्टीकरण—इस धारा में और इस अध्याय की अनुवर्ती धाराओं में 'जिला जज' का तात्पर्य उस जिले के जिला जज से है, जिसमें भूमि स्थित हो और

उसके अन्तर्गत वह अपर जिला जज भी है जिसे जिला जज द्वारा अपील अन्तरित की जाए।

धारा १८—(१) धारा १७ के अधीन हर अपील लिखित अर्जी द्वारा की जाएगी और वन व्यवस्थापन अधिकारी को दी जा सकेगी जो उसे सुनवाई के लिए सक्षम अधिकारी को अविलम्ब भेज देगा।

(२) यदि अपील, धारा १७ के अधीन नियुक्त अधिकारी के समक्ष की जाए, तो भू-राजस्व से सम्बद्ध मामलों में अपील की सुनवाई के लिए तत्समय विहित रीति से उसकी सुनवाई की जाएगी।

(३) यदि अपील वन न्यायालय के समक्ष की जाए, तो न्यायालय अपील की सुनवाई के लिए कोई दिन और प्रस्थापित वन के आस-पास में ऐसा सुविधाजनक स्थान नियत करेगा, और उसकी सूचना पक्षकारों को देगा, और तदनुसार ऐसी अपील की सुनवाई करेगा।

(४) अपील पर, यथास्थिति, ऐसे अधिकारी द्वारा या न्यायालय द्वारा या ऐसे न्यायालय के सदस्यों के बहुमत द्वारा पारित आदेश, केवल राज्य सरकार के पुनरीक्षण के अधीन रहते हुए अन्तिम होगा।

संशोधन

उत्तर प्रदेश सरकार ने भारतीय वन अधिनियम, १९२७ की धारा १८ के स्थान पर इण्डियन फॉरेस्ट (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम, १९६५ की धारा ६ के द्वारा निम्नलिखित नई धारा प्रतिस्थापित की है।

१८. (१) धारा १७ के अधीन प्रत्येक अपील लिखित अर्जी द्वारा की जाएगी और वह वन व्यवस्थापन अधिकारी को दी जा सकेगी, जो उसे सुनवाई के लिए जिला जज को अविलम्ब भेज देगा।

(२) जिला जज पक्षों को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् अपीलाधीन आदेश की पुष्टि कर सकेगा या उसे अपास्त या उपान्तरित कर सकेगा या मामले को ऐसे निर्देशों के साथ, जो वह उचित समझे, वन व्यवस्थापन अधिकारी को प्रति-प्रेषित कर सकेगा।

(३) अपील के लम्बित रहने के दौरान जिला जज, पर्याप्त कारण होने पर ऐसे निर्बन्धनों पर, यदि कोई हों, जिन्हें वह उचित समझे, उस आदेश के जिसके विरुद्ध अपील की गई हो, प्रवर्तन को रोक सकेगा और कोई प्रासंगिक या आनुषंगिक आदेश पारित कर सकेगा।

(४) अपील पर पारित आदेश धारा २२ के उपबन्धों के अधीन रहते हुए अन्तिम होगा।

टिप्पणी—धारा १७ और १८ में धारा ११, धारा १२, धारा १५ या धारा १६ के अधीन वन व्यवस्थापन अधिकारी द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध अपील दायर करने और उसकी सुनवाई के बारे में व्यवस्था है। आदेश की तारीख

से ३ मास के अन्दर अपील हो सकती है। अपील लिखित अर्जी के रूप में वन व्यवस्थापन अधिकारी को दी जाती है और वह उसे सुनवाई के लिए सक्षम अधिकारी को अविलम्ब अग्रेषित कर देता है। अपील की सुनवाई के लिए सक्षम अधिकारी की नियुक्ति राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा करती है। यह अधिकारी राजस्व विभाग का होता है और उसका पद कलक्टर से अनिम्न पंक्ति का नहीं होता। **स्वामीनाथसिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** (ए० आई० आर० १९६७ **इलाहाबाद** ४७२) वाद में अभिनिर्धारित किया गया है कि जो अधिकारी राजपत्र में अधिसूचना द्वारा अपील सुनने के लिए नियुक्त किया गया है वही अपील सुन सकता है, अन्य अधिकारी नहीं सुन सकता।

धारा ११, १२, १५, या १६ में यह उपबन्धित नहीं है कि वन व्यवस्थापन अधिकारी पक्षकार को अपने आदेश की प्रति देगा या उसे सूचित करेगा। ऐसी स्थिति में यदि पक्षकार को अपील की कालावधि समाप्त होने पर निर्णय का ज्ञान हो तो क्या वह अपील नहीं कर सकता? इस सम्बन्ध में **मदनलाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (१९७९ उम० नि० प० १२३०)** वाद में अभिनिर्धारित किया गया है कि आदेश की तारीख से वह तारीख अभिप्रेत है जबकि पक्षकार को निर्णय संसूचित किया जाता है या उसके बारे में पक्षकार को ज्ञान होता है।

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम जिला जज फैजाबाद (ए० आई० आर० १९७१ इलाहाबाद २२९) में अभिनिर्धारित किया गया कि डिवीजनल फॉरेस्ट ऑफीसर धारा १७ के अधीन अपील दायर कर सकता है और उस अपील पर हस्ताक्षर कर सकता है। अधिनियम की धारा १७ में यह अपेक्षा नहीं की गई है कि अपील पर हस्ताक्षर करने वाला व्यक्ति स्वयं अपील प्रस्तुत करे। अतः डिवीजनल फॉरेस्ट ऑफीसर अपील अपने अधीनस्थ कर्मचारी के द्वारा वन व्यवस्थापन अधिकारी को परिदत्त करा सकता है।

धारा १७ में केवल धारा ११, धारा १२, धारा १५ या धारा १६ के अधीन पारित आदेशों के विरुद्ध अपील करने का उपबन्ध है। इससे स्पष्ट है कि धारा १० के अधीन राज्य सरकार के किसी आदेश के विरुद्ध अपील नहीं हो सकती। धारा १८ (४) उपबन्धित करती है कि अपील पर आदेश केवल राज्य सरकार के पुनरीक्षण के अधीन रहते हुए अन्तिम होगा। इससे स्पष्ट है कि सिविल न्यायालय की इसमें कोई अधिकारिता नहीं है। [**महालक्ष्मी बैंक लिमिटेड बनाम बंगाल प्रान्त (ए० आई० आर० १९४२ कलकत्ता ३७१)**] पर यह धारा राज्य सरकार को अपील में पारित प्रत्येक आदेश को पुनरीक्षित करने की शक्ति नहीं देती। राज्य सरकार केवल धारा २२ के उपबन्धों तक ही पुनरीक्षण कर सकती है।

धारा १९—राज्य सरकार या कोई व्यक्ति, जिसने इस अधिनियम के अधीन दावा किया है, इस अधिनियम के अधीन जांच या अपील के दौरान वन व्यवस्थापन

अधिकारी या अपील अधिकारी या न्यायालय के समक्ष हाजिर होने, अभिवचन करने और अपनी ओर से कार्य करने के लिए किसी व्यक्ति को नियुक्त कर सकेगा।

संशोधन

उत्तर प्रदेश सरकार ने भारतीय वन अधिनियम १९२७ की धारा १९ के स्थान पर इण्डियन फॉरेस्ट (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम १९६५ की धारा ७ के द्वारा निम्नलिखित नई धारा प्रतिस्थापित की है :

१९—राज्य सरकार या कोई व्यक्ति, जिसने इस अधिनियम के अधीन कोई दावा किया है, इस अधिनियम के अधीन किसी जाँच या अपील के दौरान वन व्यवस्थापन अधिकारी या जिला जज के समक्ष हाजिर होने, अभिवचन करने और अपनी ओर से कार्य करने के लिए किसी व्यक्ति को नियुक्त कर सकेगा।

वन को आरक्षित वन घोषित करने की अधिसूचना

धारा २०—(१) जब कि निम्नलिखित घटनाएं घटित हो गई हों, अर्थात्—

(क) जब कि दावा करने के लिए धारा ६ के अधीन नियत कालावधि बीत गई हो और उस धारा या धारा ९ के अधीन सब दावों का, यदि कोई हों, वन व्यवस्थापन अधिकारी द्वारा निपटारा कर दिया गया हो;

(ख) यदि कोई ऐसे दावे किए गए हों, तो जब कि ऐसे दावों पर पारित आदेशों की अपील करने के लिए धारा १७ द्वारा परिसीमित कालावधि बीत गई हो और यदि ऐसी कालावधि के अन्दर उपस्थित की गई सभी अपीलों का (यदि कोई हों) निपटारा अपील अधिकारी या न्यायालय ने कर दिया हो, और

(ग) जब कि प्रस्थापित वन में सम्मिलित की जाने वाली सब भूमियां (यदि कोई हों) जिन्हें धारा ११ के अन्तर्गत वन व्यवस्थापन अधिकारी ने भूमि अर्जन अधिनियम, १८९४ के अधीन अर्जित करने के लिए चुना है, उस अधिनियम की धारा १६ के अधीन सरकार में निहित हो गई हों;

तब राज्य सरकार परिनिर्मित सीमाचिन्हों के अनुसार या अन्यथा उस वन की, जिसे आरक्षित किया जाना है, सीमाओं को परिनिश्चित रूप से विनिर्दिष्ट करने वाली और अधिसूचना द्वारा नियत तारीख से उसे आरक्षित वन घोषित करने वाली अधिसूचना राजपत्र में प्रकाशित करेगी।

(२) ऐसा वन इस प्रकार नियत तारीख से आरक्षित वन समझा जाएगा।

संशोधन

उत्तर प्रदेश संशोधन—(१) उत्तर प्रदेश सरकार ने भारतीय वन अधिनियम, १९२७ की धारा २० की उपधारा (१-ख) के स्थान पर इण्डियन फॉरेस्ट (उत्तर-प्रदेश संशोधन अधिनियम १९६५ की धारा ८ के द्वारा निम्नलिखित नई धारा प्रति-स्थापित की है :

(ख) यदि कोई ऐसे दावे किए गए हों, तो जब कि ऐसे दावों पर दिए गए आदेशों की अपील करने के लिए धारा १७ के द्वारा परिसीमित कालावधि बीत गई

हो और यदि ऐसी कालावधि के अन्दर सभी अपीलों का (यदि कोई हों) निपटारा जिला जज ने कर दिया हो; और

(२) उत्तर प्रदेश सरकार ने भारतीय वन अधिनियम, १९२७ की धारा २० के बाद इण्डियन फॉरेस्ट (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम, १९६५ की धारा ९ के द्वारा निम्नलिखित नई धारा २०-(क) जोड़ दी है :

कतिपय वन-भूमि या बंजर-भूमि आरक्षित वन समझी जाएंगी

२०–(क) (१) इस अधिनियम अथवा तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में, जिसमें मर्ज्ड स्टेट (लाज) एक्ट, १९४९ या १९५० ई० का उत्तर प्रदेश विलीन रियासतों का (विधियों को लागू करने वाला) अधिनियम भी सम्मिलित है या उसके अधीन जारी किए गए किसी आदेश में किसी बात के होते हुए भी, किसी विलीन रियासत की कोई वन-भूमि या बंजर-भूमि, जो विलयन की तारीख (जिसे इस धारा में आगे उक्त तारीख कहा गया है) के ठीक पूर्व—

(क) उक्त राज्य में प्रवृत्त किसी भी अधिनियमिति के अधीन आरक्षित वन समझी जाती थी; या

(ख) उक्त राज्य में शासक द्वारा तत्समय प्रवृत्त किसी विधि (जिसमें कोई अधिनियमिति, नियम, विनियम, आदेश, अधिसूचना, विधि का बल रखने वाली रूढ़ि या प्रथा सम्मिलित है) के अधीन आरक्षित वन के रूप में मान्यता प्राप्त थी या घोषित की गई थी; या

(ग) शासक के प्राधिकार के अधीन रखी गई और कार्यान्वित की गई किसी प्रशासकीय रिपोर्ट या किसी वर्किंग प्लान अथवा रजिस्टर में आरक्षित वन के रूप में चर्चित की गई थी, तो वह उन अधिकारों या रियायतों, जो किसी व्यक्ति के पक्ष में उक्त तारीख से ठीक पूर्व प्रवृत्त हों, के अध्यधीन रहते हुए, उक्त तारीख से आरक्षित वन समझी जाएगी और तब से बराबर आरक्षित वन बनी रही समझी जाएगी।

स्पष्टीकरण १—राज्य सरकार अथवा उस निमित्त प्राधिकृत किसी भी अधिकारी का इस आशय का प्रमाण-पत्र कि कोई रिपोर्ट, वर्किंग प्लान अथवा रजिस्टर शासक के प्राधिकार में रखा गया था और उस पर कार्यवाही की गई थी, इस बात का निश्चायक साक्ष्य होगा कि उसे इस प्रकार रखा गया था और उस पर कार्यवाही की गयी थी।

स्पष्टीकरण २—इस उपधारा में उल्लिखित किसी अधिकार अथवा रियायत के अस्तित्व या परिमाण के सम्बन्ध में कोई प्रश्न उठने पर उसकी अवधारणा राज्य सरकार द्वारा की जाएगी, जिसका विनिश्चय जो ऐसी जांच के उपरान्त, यदि कोई हो, जिसे वह आवश्यक समझे दिया जाए, अन्तिम होगा।

स्पष्टीकरण ३—वर्किंग प्लान के अन्तर्गत वनों के प्रबन्ध तथा समुपयोजन के दौरान कार्यों को करने के प्रयोजन के लिए तैयार किए गए रेखांक, स्कीम, परियोजना, नक्शे, रेखाचित्र और अभिन्यास आते हैं।

(२) उपधारा (१) में उल्लिखित किसी भूमि में या उस पर, उक्त तारीख को या उसके पश्चात् उत्तराधिकार के जरिए अथवा राज्य सरकार द्वारा या किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा या उसकी ओर से, जिसमें उक्त तारीख से ठीक पूर्व ऐसा करने का अधिकार निहित था, किसी लिखित रूप में दिए गए अनुदान या की गई संविदा के अधीन अर्जित होने के सिवाय कोई भी अधिकार अर्जित हुआ नहीं समझा जाएगा और खेती या किसी अन्य प्रयोजन के लिए की गई कोई नयी कटाई-सफाई (सिवाय उस कटाई-सफाई के जो शासक द्वारा अनुदत्त रियायतों के अनुसार की गई हो और उक्त तारीख से ठीक पूर्व प्रवर्तन में हो या जो राज्य सरकार द्वारा उस निमित्त उक्त तारीख से बनाए गए नियमों के अनुसार की गई हो) इस अधिनियम में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होने पर भी विधिपूर्ण नहीं मानी या समझी जाएगी।

(३) राज्य सरकार धारा २२ में उल्लिखित प्रकार के किसी प्रबन्ध का पुनरीक्षण इण्डियन फॉरेस्ट (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम, १९६५ के प्रारम्भ होने के पाँच वर्ष के भीतर कर सकेगी और कोई भी प्रासंगिक या आनुषंगिक आदेश पारित कर सकेगी जिसके अन्तर्गत इस आशय का निदेश भी हो सकता है कि इस अध्याय के पूर्ववर्ती उपबन्धों में निर्दिष्ट कोई भी कार्यवाही की जाय।

(४) उपधारा (१) में उल्लिखित किसी भूमि के सम्बन्ध में धारा २४ और धारा २६ में—

(क) धारा २३ के निर्देश उपधारा (२) के निर्देश समझे जाएंगे; और

(ख) धारा १४ या धारा १५ के अधीन मंजूर किए गए, अभिलिखित या जारी रखे गए अधिकारों के निर्देश, उपधारा (१) में उल्लिखित तदनुरूप अधिनियमिति विधि, या दस्तावेज में अथवा उसके अधीन मंजूर किए गए, अभिलिखित या जारी रखे गए चरागाह या वन-उपज के अधिकारों के निर्देश समझे जाएँगे।

(५) उपधारा (१) में उल्लिखित किसी भूमि पर अनधिकृत अधिभोग या अतिचार के सम्बन्ध में बेदखली करने, अधिक्रमण खाली कराने या नुकसानी की वसूली कराने के लिए अथवा ऐसी भूमि से सम्बन्धित किसी वन-उपज के जिसके सम्बन्ध में कोई वन अपराध हुआ हो या ऐसे अपराध को करने में प्रयुक्त किन्हीं औजारों, नावों, छकड़ों या ढोरों के अभिग्रहण, अधिहरण, व्ययन या (उसका मूल्य संदाय करके या अन्यथा) निर्मुक्ति के लिए की गयी या की जाने वाली किसी भी कार्यवाही पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, इस धारा की किसी बात से इण्डियन फॉरेस्ट (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम, १९६५ के प्रारम्भ होने के पूर्व किए गए कार्य के लिए जो उक्त प्रारम्भ के पूर्व अपराध नहीं था, किसी भी व्यक्ति को सिद्ध-दोष करने के लिए प्राधिकृत किया गया नहीं समझा जाएगा।

मध्य प्रदेश संशोधन—मध्य प्रदेश सरकार ने १९६५ के मध्य प्रदेश अधिनियम संख्या ९ की धारा ३ के द्वारा भारतीय वन अधिनियम, १९२७ की धारा २० के

बाद निम्नलिखित नई धारा अन्तः स्थापित की है :

२०-क—**वन-भूमि या बंजर-भूमि आरक्षित वन समझी जाएगी**—(१) इस अधिनियम या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, इस राज्य के अब भाग रूप उन एकीकरण राज्यों में से किसी में विलयन की तारीख से ठीक पूर्व किसी भारतीय रियासत के अन्तर्गत समाविष्ट राज्यक्षेत्रों (एतस्मिन् पश्चात् इस धारा में विलीनीकृत राज्यक्षेत्रों के रूप में निर्देशित) में कोई वन-भूमि या बंजर-भूमि—

(i) जिन्हें विलयन की तारीख से ठीक पूर्व ऐसी किसी रियासत के शासक से, तत्समय प्रवृत्त किसी विधि, रूढ़ि, नियम, विनियम, आदेश या अधिसूचना के अनुसरण में, आरक्षित वन के रूप में मान्यता प्राप्त थी; या

(ii) जो उक्त तारीख से ठीक पूर्व किसी प्रशासनिक रिपोर्ट में उस रूप में र्चाचत की गई थी या किसी वर्किंग प्लान या रजिस्टर के अनुसरण में उस रूप में रखे गए या कार्य में लाए गए और तत्पश्चात् भी उसी रूप में र्चाचत की जाती रही है, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए आरक्षित वन समझी जाएगी।

(२) इस अधिनियम के अधीन प्रश्नगत क्षेत्र को लागू किसी नियम, आदेश या अधिसूचना की अनुपस्थिति में, उपधारा (१) में उल्लिखित कोई विधि, रूढ़ि, नियम, विनियम, आदेश या अधिसूचना, विधि में कोई बात प्रतिकूल होते हुए भी, विधिमान्यतः प्रवृत्त समझी जाएगी मानों कि उसमें इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों, आदेशों, अधिसूचनाओं का बल तथा प्रभाव है और जब तक कि उसके अनुसरण में अतिष्ठित, परिवर्तित या उपान्तरित न किए जाएँ तब तक इसी प्रकार प्रवर्तन में बने रहेंगे।

(३) पूर्वोक्त किसी रिपोर्ट, वर्किंग प्लान रजिस्टर या उसमें की किसी प्रविष्टि को किसी विधि न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकेगी; परन्तु यह तब जब कि राज्य सरकार ने सम्यक् रूप से प्रमाणित किया है कि ऐसी रिपोर्ट, वर्किंग प्लान या रजिस्टर विलयन की तारीख से पूर्व उक्त शासक के प्राधिकार के अधीन तैयार किया गया था और, राज्य सरकार के प्राधिकार के अधीन तत्पश्चात् उसी प्रकार मान्यता प्राप्त बना रहा है, रखा जाता रहा है, या कार्य में लाया जाता रहा है।

(४) विलीनीकृत राज्यक्षेत्रों में खेसरा वन, ग्राम वन या संरक्षित वन या आरक्षित वन से भिन्न वन, चाहे वे किसी नाम से अभिहित या स्थानीय रूप में जाने जाते हों, के रूप में मान्यता प्राप्त वन, इस अधिनियम के अर्थ में संरक्षित वन समझे जाएँगे और उपधारा (२) और (३) के उपबन्ध, यथावश्यक परिवर्तन सहित, लागू होंगे।

स्पष्टीकरण १—'र्वाकग प्लान' के अन्तर्गत वनों के प्रबन्ध तथा समुपयोजन के दौरान कार्यों को करने के प्रयोजन के लिए तैयार किए गए रेखांक, स्कीम, परियोजना, नक्शे, रेखाचित्र और अभिन्यास आते हैं।

स्पष्टीकरण २—'शासक' के अन्तर्गत विलयन की तारीख से पूर्व का दरबार प्रशासन आता है और 'राज्य सरकार' के अन्तर्गत उक्त तारीख के बाद उत्तरवर्ती सरकारें आती हैं।

स्पष्टीकरण ३—'भारतीय रियासत' पद का वही अर्थ होगा जो इस पद को भारत के संविधान के अनुच्छेद ३६६ के खण्ड (१५) में समनुदेशित है।

स्पष्टीकरण ४—'एकीकरण राज्यों' से मध्य प्रदेश, मध्य भारत, राजस्थान, विन्ध्य प्रदेश राज्य जैसे वे प्रथम नवम्बर १९५६ से पूर्व अस्तित्व में थे, अभिप्रेत हैं।

टिप्पणी—आरक्षित वन के सम्बन्ध में धारा २० अत्यन्त महत्वपूर्ण धारा है क्योंकि इसके अधीन अधिसूचना के निकलने बाद ही कोई वन भारतीय वन अधिनियम के अनुसार अधिसूचना में उल्लिखित तारीख से आरक्षित वन बनता है। इस अधिसूचना का प्रारूप वन व्यवस्थापन अधिकारी राज्य सरकार को भेजता है। अधिसूचना के प्रारूप के साथ वह (i) सीमा सूची (अनुसूची क), (ii) मंजूर किए दावों का विवरण (अनुसूची ख) तथा (iii) स्वयं द्वारा की गई कार्यवाही का संक्षिप्त विवरण भी भेजता है। इनके प्राप्त होने पर राज्य सरकार दिए जा सकने योग्य विशेषाधिकारों और सुविधाओं के बारे में विनिश्चय करती है और फिर उन्हें अनुसूची (ख) में सम्मिलित कर अधिसूचना को (क) और (ख) अनुसूचियों सहित राजपत्र में प्रकाशित करवा देती है।

धारा २१—ऐसी अधिसूचना द्वारा नियत तारीख के पूर्व, वन अधिकारी स्थानीय जनभाषा में उसका अनुवाद वन के आसपास के हर नगर और ग्राम में प्रकाशित कराएगा।

धारा २२—राज्य सरकार धारा १५ या १८ के अधीन किए गए किसी प्रबन्ध का पुनरीक्षण धारा २० के अधीन किसी अधिसूचना के प्रकाशन से पाँच वर्ष के अन्दर कर सकेगी और धारा १५ या धारा १८ के अधीन किए गए किसी आदेश को इस प्रयोजन के लिए विखण्डित या उपान्तरित कर सकेगी और निदेश दे सकेगी कि धारा १५ में विनिर्दिष्ट कार्यवाहियों में से कोई कार्यवाही ऐसी कार्यवाहियों में से किसी अन्य के बदले में की जाए या धारा १२ के अधीन मंजूर किए गए अधिकारों का धारा १६ के अधीन रूपान्तरण किया जाए।

संशोधन

उत्तर प्रदेश सरकार ने इस धारा के स्थान पर इण्डियन फॉरेस्ट (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम, १९६५ की धारा १० के अनुसार नीचे लिखी गई धारा प्रतिस्थापित की है :

२२. राज्य सरकार धारा १५ के अधीन या धारा १८ के अधीन अपील पर किए गए किसी प्रबन्ध का पुनरीक्षण धारा २० के अधीन किसी अधिसूचना के प्रकाशन से पाँच वर्ष के अन्दर कर सकेगी और धारा १५ या धारा १८ के अधीन दिए गए किसी आदेश को इस प्रयोजन के लिए विखण्डित या उपान्तरित कर

सकेगी और निदेश दे सकेगी कि धारा १५ में विनिर्दिष्ट कार्यवाहियों में से कोई कार्यवाही ऐसी कार्यवाहियों में से किसी अन्य के बदले में की जाए या धारा १२ के अधीन मंजूर किए गए अधिकारों का धारा १६ के अधीन रूपान्तरण किया जाए।

उत्तर प्रदेश सरकार ने ऊपर लिखे संशोधन अधिनियम, अर्थात् इण्डियन फॉरेस्ट (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम, १९६५ की धारा १६ के द्वारा अपीलों, पुनरीक्षणों आदि के सम्बन्ध में निम्नलिखित संक्रमण कालीन उपबन्ध भी किए हैं :

१६. **अपीलों, पुनरीक्षणों आदि के सम्बन्ध में संक्रमणकालीन उपबन्ध**—(१) इस अधिनियम के प्रारम्भ होने के पूर्व किए गए किसी दावे के विरुद्ध अपीलों के सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार तथा प्रक्रिया इस अधिनियम द्वारा यथासंशोधित मूल अधिनियम की धारा १७ तथा धारा १८ के उपबन्धों द्वारा शासित होगी।

(२) मूल अधिनियम, जैसा कि वह इस अधिनियम द्वारा संशोधित होने के पूर्व था, की धारा १७ के अधीन इस अधिनियम के प्रारम्भ होने के पूर्व, किसी अपीलीय अधिकारी के समक्ष विचाराधीन कोई अपील उसके द्वारा अधिकारिता रखने वाले जिला जज को अन्तरित कर दी जाएगी और वह एतद् द्वारा संशोधित उक्त अधिनियम की धारा १८ के अधीन ऐसे जज द्वारा निपटाई जाएगी।

(३) राज्य सरकार ऐसे क्षेत्रों के सम्बन्ध में, जो विनिर्दिष्ट किए जाएँ, राजपत्र में अधिसूचना प्रकाशित करके, उपधारा (५) तथा (६) में निर्दिष्ट अर्जियों का निर्णय करने के लिए एक या अधिक अधिकरण गठित कर सकेगी।

(४) अधिकरण जिला जज से अनिम्न पंक्ति के एक सिविल न्यायिक अधिकारी से गठित होगा।

स्पष्टीकरण—पद 'जिला जज' के अन्तर्गत 'अपर जिला जज' भी है।

(५) इस अधिनियम के आरम्भ होने के पूर्व पाँच वर्ष के अन्दर किसी भी समय राज्य सरकार को पुनरीक्षण के लिए उपस्थित की गई कोई ऐसी अर्जी, जो मूल अधिनियम की, जैसा कि वह इस अधिनियम द्वारा संशोधित होने से पूर्व था, धारा १८ की उपधारा (४) के अधीन दी जानी तात्पर्यित हो, चाहे वह ऐसे आरम्भ की तारीख को, राज्य सरकार के पास विचाराधीन हो या उसके द्वारा ऐसी तारीख से पूर्व उक्त उपधारा के अधीन निर्णीत की जानी तात्पर्यित हो, राज्य सरकार द्वारा, अधिकारिता रखने वाले अधिकरण को निर्दिष्ट की जाएगी और अधिकरण, पक्षों को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् पुनरीक्षण के अधीन आदेश की पुष्टि कर सकेगा, उसे अपास्त या उपान्तरित कर सकेगा अथवा मामले को ऐसे निदेशों के साथ, जो वह उचित समझे, वन व्यवस्थापन अधिकारी को वापस भेज सकेगा :

परन्तु इस उपधारा की किसी भी बात से राज्य सरकार के लिए वन अधिकारी द्वारा दी गई किसी अर्जी को, जिसे राज्य सरकार चलाना उचित न समझती हो, अधिकरण को निर्दिष्ट करना आवश्यक नहीं समझा जाएगा।

(६) इस अधिनियम के प्रारम्भ होने के पूर्व तीन महीने के अन्दर किसी समय मूल अधिनियम की धारा १८ के अधीन दिए गए अपीलीय अधिकारी के किसी विनिश्चय से व्यथित कोई पक्षकार, जब तक कि उसने राज्य सरकार को पुनरीक्षण के लिए ऐसी अर्जी पेश न कर दी हो, जो मूल अधिनियम की, जैसा कि वह इस अधिनियम द्वारा संशोधित होने से पूर्व था, धारा १८ की उपधारा (४) के अधीन दी जानी तात्पर्यित हो, इस प्रकार प्रारम्भ की तारीख से तीन महीने के अन्दर आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण के लिए अधिकरण के समक्ष अर्जी उपस्थित कर सकेगा और तदुपरान्त अधिकरण अर्जी का निपटारा कर सकेगा, मानों वह उसे उपधारा (५) के आधीन निर्दिष्ट की गई हो।

(७) एतद् द्वारा संशोधित मूल अधिनियम की धारा २२ के उपबन्धों के अधीन रहते हुए अधिकरण द्वारा दिया गया आदेश अन्तिम होगा।

(८) एतद् द्वारा संशोधित मूल अधिनियम की धारा ११ और २२ में अपील पर पारित आदेशों के निर्देशों के सम्बन्ध में यह समझा जाएगा कि उनमें इस धारा के अधीन अधिकरण द्वारा दिए गए आदेशों के निर्देश भी सम्मिलित हैं।

उत्तर प्रदेश सरकार ने प्रतिस्थापित नई धारा २२ के बाद इण्डियन फॉरेस्ट (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम १९७३ की धारा २ के द्वारा नीचे लिखी नई धारा जोड़ दी है:

२२. ए—(१) धारा २२ के उपबन्धों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना राज्य सरकार या तो स्वप्रेरणा से या इस निमित्त अर्जी दी जाने पर, धारा १८ के अधीन निर्णीत किसी अपील के अभिलेख मँगा सकती है और ऐसी अपील पर दिए गए आदेश की पुष्टि कर सकेगी, या उसे अपास्त या उपान्तरित कर सकेगी या ऐसे निदेशों के साथ, जिन्हें वह उचित समझे, मामला वन व्यवस्थापन अधिकारी के पास वापस भेज सकेगी।

(२) २२ नवम्बर १९६५ के पश्चात् इस धारा के अधीन कोई भी याचिका नहीं दी जा सकेगी और उक्त तारीख के पश्चात् राज्य सरकार इस धारा के अधीन किसी शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकेगी।

उत्तर प्रदेश सरकार ने इण्डियन फॉरेस्ट (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम, १९७३ की धारा ३ के द्वारा २३ नवम्बर १९६० और २२ नवम्बर, १९६५ की बीच की अवधि की पुनरीक्षण अर्जियों के लिए निम्नलिखित उपबन्ध किए हैं:

३--(१) २३ नवम्बर १९६० और २२ नवम्बर १९६५ के बीच किसी समय राज्य सरकार के समक्ष उपस्थित की गई अर्जी, जिसमें मूल अधिनियम की धारा १८ के अधीन अपील पर किए गए आदेश के पुनरीक्षण की माँग हो, जब तक कि वह किसी प्रवन्ध के पुनरीक्षण के लिए उक्त अधिनियम की धारा २२ के अधीन अर्जी न हो, इस अधिनियम की धारा २ द्वारा बढ़ाई गई उक्त अधिनियम की धारा २२-ए के अधीन दी गई समझी जाएगी।

(२) प्रत्येक ऐसी अर्जी, चाहे वह २३ नवम्बर, १९६५ को राज्य सरकार के पास विचाराधीन हो अथवा उसके द्वारा उक्त तारीख के पूर्व निर्णीत की गई तात्पयित हो, राज्य सरकार द्वारा अधिकारिता रखने वाले अधिकरण को निदिष्ट की जाएगी और अधिकरण राज्य सरकार के विनिश्चय, यदि कोई हो, की उपेक्षा करने के पश्चात् और पक्षकारों को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् पुनरीक्षणाधीन आदेश की पुष्टि कर सकता है, उसे अपास्त या उपान्तरित कर सकता है अथवा ऐसे निदेशों के साथ, जिन्हें वह उचित समझे, मामला वन व्यवस्थापन अधिकारी के पास वापस भेज सकता है;

परन्तु इस उपधारा की किसी बात से ऐसी अपेक्षा की गई नहीं समझी जाएगी कि राज्य सरकार वन अधिकारी द्वारा दी गई अर्जी, जिस पर राज्य सरकार आगे कार्यवाही करना उचित न समझे, अधिकरण को निदिष्ट करे और वन अधिकारी द्वारा दी गई प्रत्येक अर्जी, जो २३ नवम्वर १९६५ और इस अधिनियम के प्रारम्भ होने से तीन महीने की समाप्ति के बीच इस प्रकार निर्दिष्ट न की जाए, अस्वीकृत की गई समझी जाएगी, भले ही राज्य सरकार का उस पर तात्पयिक विनिश्चय, यदि कोई है, कुछ भी हो।

(३) इस अधिनियम के प्रारम्भ होने के पूर्व, प्रत्येक ऐसी अर्जी जो राज्य सरकार द्वारा इस अधिनियम के आरम्भ होने से पूर्व इण्डियन फॉरेस्ट (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम, १९६५ की धारा १६ की उपधारा (५) द्वारा प्रदत्त मानी गई शक्तियों के तात्पयित प्रयोग में अधिकरण को निर्दिष्ट किए जाने के लिए तात्पयित हों, इस धारा की उपधारा (२) के अधीन अधिकरण को निर्दिष्ट की गई समझी जाएगी मानों कि इस अधिनियम के उपबन्ध निर्देश के समय प्रभावी थे तथा तदनुसार—

(क) जहाँ कि या तो अधिकरण ने स्वयं यह अभिनिर्धारित किया हो कि निर्देश अक्षम है और तदनुसार अधिकारिता का प्रयोग करने से इन्कार किया हो, अथवा उच्च न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद २२६ अथवा अनुच्छेद २२७ के अधीन अपनी अधिकारिता के प्रयोग में अधिकरण के समक्ष कार्यवाहियाँ इस आधार पर अभिखण्डित कर दी गई हों कि अर्जी जो भारतीय वन अधिनियम, १९२७ की धारा १८ की उपधारा (४) के अधीन उपस्थित किए जाने के लिए तात्पयित थी, चलाने योग्य न थी क्योंकि वह उस अधिनियम की धारा २२ में उल्लिखित प्रयोजनों से भिन्न प्रयोजन के लिए थी और इस प्रकार इण्डियन फॉरेस्ट (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम, १९६५ की धारा १६ की उपधारा (५) के अधीन प्राधिकरण को निर्दिष्ट नहीं की जा सकती थी तब अधिकरण अपने समक्ष आवेदन दिए जाने पर, ऐसे किसी निर्णय, डिक्री या आदेश के होते हुए भी, इस अधिनियम के प्रारम्भ होने के तीन महीने के अदर अथवा ऐसे अतिरिक्त समय के अन्दर जिसे अधिकरण पर्याप्त हेतुक दर्शित करने पर अनुज्ञात करे, अपने आदेश का पुनर्विलोकन

कर सकेगा तथा उपधारा (२) के उपबन्धों के अनुसार निर्देश पर विनिश्चय कर सकेगा।

(ख) जहाँ कि अधिकरण ने उसे मामले के गुणागुणों के आधार पर विनिश्चित किया हो, वहाँ उसका विनिश्चय मूल अधिनियम की धारा २२ के अधीन रहते हुए विधिमान्य होगा तथा हमेशा से विधिमान्य समझा जाएगा, भले ही किसी न्यायालय का कोई निर्णय, डिक्री या आदेश उसके प्रतिकूल हो।

स्पष्टीकरण—पद 'अधिकरण' से इण्डियन फॉरेस्ट (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम १९६५ की धारा १६ की उपधारा (३) के अधीन गठित अधिकरण अभिप्रेत है।

टिप्पणी—धारा २२ के अधीन राज्य सरकार को यह शक्ति मिली है कि वह किसी अधिसूचना के प्रकाशन के पाँच वर्ष के अन्दर धारा १५ या धारा १८ के अधीन किए गए किसी प्रबन्ध का पुनरीक्षण कर सकती है और यदि आवश्यक समझे तो उन धाराओं के अधीन किए गए किसी आदेश को विखण्डित या उपान्तरित (modify) कर सकती है। इस धारा में धारा १५ या धारा १८ का उल्लेख है। मूल अधिनियम की धारा १५ का परिशीलन दिखाता है कि वह मंजूर किए गए अधिकारों के प्रयोग को सुनिश्चित करने के लिए प्रबन्ध से सम्बद्ध है। अतः धारा २२ के अधीन राज्य सरकार केवल इसी प्रबन्ध को पुनरीक्षित कर सकती है। अधिनियम की धारा १८ किसी प्रबन्ध के किए जाने को उपबन्धित नहीं करती। इस धारा में तो धारा १७ के अधीन की गई अपीलों की केवल सुनवाई उपबन्धित है। इसलिए धारा २२ जब धारा १८ के अधीन किए गए किसी प्रबन्ध के बारे में निर्देश देती है तब उसका धारा १५ के अधीन किए गए प्रबन्ध, जैसा कि वह धारा १८ के अधीन उपान्तरित किया गया हो, के सिवाय और कुछ अर्थ नहीं हो सकता। **मौहम्मद सिद्दीक बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (ए० आई० आर० १९६८ इलाहाबाद ३९६)** वाद में अभिनिर्धारित किया गया है कि धारा २२ केवल धारा १५ के अधीन किए गए प्रबन्ध का, जैसा कि वह धारा १७ के अधीन की गई अपील की धारा १८ के अधीन सुनवाई में उपान्तरित किया गया हो, पुनरीक्षण अनुध्यात (contemplate) करती है। अतः पुनरीक्षण की शक्तियाँ आत्यन्तिक नहीं हैं वरन् धारा २२ के अधीन उपबन्धित रीति से परिसीमित हैं।

इस टिप्पणी से यह भी स्पष्ट है कि यह धारा राज्य सरकार को धारा ११ या धारा १२ के अधीन वन व्यवस्थापन अधिकारी द्वारा अस्वीकृत दावे और उस आदेश के विरुद्ध धारा १७ के अधीन की गई अपील के अस्वीकृत हो जाने पर, पुनरीक्षण की शक्ति नहीं देती। इस आशय का निर्णय **रघुनाथसिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (आई० एल० आर० १९६२ इलाहाबाद ११)** तथा **मौहम्मद सिद्दीक बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (ए० आई० आर० १९६८ इलाहाबाद ३९६)** वादों में दिया गया है।

किसी भूमि को आरक्षित वन के रूप में घोषित करने की कार्यवाहियाँ न्यायिक प्रकृति की होती हैं। अतः प्रभावित पक्षकारों को सुने बिना दिया गया आदेश बिना अधिकारिता के है। सारांश यह है राज्य सरकार (या उत्तर प्रदेश में संशोधित व्यवस्था में जिला जज या अधिकरण) को पक्षकारों को सुनने का अवसर देने के बाद आदेश देना चाहिये। इसीलिए उत्तर प्रदेश में तो इण्डियन फॉरेस्ट (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम १९७३ की धारा ३ में पुनरीक्षण की व्यवस्था में पक्षकारों को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् आदेश देना स्पष्ट रूप से उपबन्धित है।

धारा २३—आरक्षित वन में या उस पर किसी प्रकार का कोई अधिकार, उत्तराधिकार द्वारा या सरकार द्वारा या उसकी ओर से या किसी व्यक्ति द्वारा, जिसमें ऐसा अधिकार उस समय निहित था, जिस समय धारा २० के अधीन अधिसूचना निकाली गई थी, या उसकी ओर से दिए गए अनुदान या की गई लिखित संविदा के अधीन अर्जित किए जाने के सिवाय, अर्जित नहीं होगा।

धारा २४—(१) धारा २३ में विनिर्दिष्ट किसी बात के होते हुए भी ऐसा कोई अधिकार, जो धारा १५ की उपधारा (२) के खण्ड (ग) के अधीन चालू रखा गया है, राज्य सरकार की मंजूरी के बिना अनुदान द्वारा, विक्रय द्वारा, पट्टे द्वारा, बन्धक द्वारा या अन्यथा अन्य-संक्रान्त न किया जाएगा;

परन्तु जब कि ऐसा कोई अधिकार किसी भूमि या गृह से अनुलग्न है तब वह ऐसी भूमि या गृह के साथ बेचा जा सकेगा या अन्यथा अन्य-संक्रान्त किया जा सकेगा।

(२) ऐसे किसी अधिकार के प्रयोग से अभिप्राप्त कोई इमारती लकड़ी या वन-उपज, उस मात्रा के सिवाय, जो धारा १४ के अधीन अभिलिखित आदेश में मंजूर की गई हो, बेची या विनियमित न की जा सकेगी।

टिप्पणी—धारा २३ तथा २४ में आरक्षण के प्रभाव का वर्णन है। आरक्षित वन में स्वीकृत अधिकारों के अतिरिक्त किसी प्रकार का कोई अधिकार किसी व्यक्ति द्वारा धारा २३ के अनुसार अर्जित नहीं किया जा सकता। इस प्रकार उस वन पर सरकार का पूर्ण नियंत्रण हो जाता है। उसमें से कोई वन-उपज या तो मंजूर किए गए अधिकारों का स्वामी ले जा सकता है या किसी वन अधिकारी द्वारा लिखित संविदा या अनुदान के अनुसार उसमें वर्णित व्यक्ति ले जा सकता है। इसके अतिरिक्त और कोई व्यक्ति कुछ नहीं पा सकता।

मंजूर किए गए अधिकार धारा २४ (१) के अनुसार राज्य सरकार की मंजूरी के बिना अनुदान द्वारा, विक्रय द्वारा, पट्टे द्वारा, बन्धक द्वारा या अन्य किसी रीति से अन्य-संक्रान्त (alienate) नहीं किए जा सकते। साथ ही अधिकार के प्रयोग में अभिप्राप्त कोई इमारती लकड़ी या वन-उपज धारा १४ के अधीन अभिलिखित आदेश में मंजूर की गई मात्रा तक के सिवाय बेची या विनियमित नहीं की जा सकती।

धारा २५—वन अधिकारी आरक्षित वन में के किसी लोक या प्राइवेट पथ या जल मार्ग को राज्य सरकार या इस निमित्त उसके सम्यक् रूप से प्राधिकृत किसी अधिकारी की पूर्व मंजूरी से बन्द कर सकेगा, परन्तु वह यह तभी कर सकेगा जब कि इस प्रकार बन्द किए गए पथ या जल मार्ग के बजाए ऐसा प्रतिस्थानी पथ या जल-मार्ग जिसको राज्य सरकार युक्तियुक्त रूप से सुविधाजनक समझती है, पहले से ही विद्यमान है, या वन अधिकारी द्वारा उसके बदले में उपबन्धित या सन्निर्मित किया गया है।

टिप्पणी—धारा २५ में आरक्षित वनों में के पथों और जल मार्गों को बन्द करने की सरकार की शक्ति का वर्णन है। इस धारा से स्पष्ट है कि सरकार पथ तथा जल मार्ग के अधिकारों के अस्तित्व को स्वीकार करती है। साधारणतया ये बन्द नहीं किए जाने चाहिए परन्तु यदि किसी विशेष परिस्थिति में कोई पथ या जल मार्ग बन्द करना पड़े तो उसके प्रतिस्थानी सुविधाजनक पथ या जल मार्ग की बिना मूल्य माँगे या शुल्क लगाए, व्यवस्था करना वन अधिकारी का कर्त्तव्य है। **सैक्रेटरी ऑफ स्टेट बनाम नागाराव तन्खो देशमुख वाद (ए० आई० आर० १९३८ नागपुर ४१५)** में अभिनिर्धारित किया गया है कि ऐसे प्रतिस्थानी मार्ग पर पशुओं के आने जाने पर अभिवहन शुल्क की व्यवस्था नहीं की जा सकती।

इस सम्बन्ध में वन विभाग द्वारा अपने कार्यों के लिए बनाए गए वन मार्गों की स्थिति भिन्न है क्योंकि वन मार्ग वन विभाग की सम्पत्ति हैं। अतः वे उस श्रेणी में भी नहीं आते जिसमें लोक राजमार्ग आदि। **आनन्द ट्रांसपोर्ट कम्पनी (प्राइवेट) लिमिटेड, रायपुर बनाम डिवीजनल फॉरेस्ट आफीसर वाद (ए० आई० आर० १९५९ मध्य प्रदेश २२४)** में अभिनिर्धारित किया गया कि वन विभाग को अपने मार्गों के, उन व्यक्तियों द्वारा जिनका विभाग के कार्यों से कोई सम्बन्ध नहीं है, उपयोग को विनियमित करने की शक्ति है। ऐसे उपयोग करने वालों पर युक्तियुक्त फीस अधिरोपित करना न तो अवैध है और न भारत सरकार के संविधान के अनुच्छेद २६५ का उल्लंघन। ऐसी फीस तो की गई सेवाओं के प्रभार के रूप में है।

धारा २६—(१) जो कोई व्यक्ति—

(क) धारा ५ के अधीन प्रतिषिद्ध नई कटाई-सफाई करेगा; या

(ख) आरक्षित वन में आग लगाएगा या इस निमित्त राज्य सरकार द्वारा बनाए गए किन्हीं नियमों का उल्लंघन करते हुए ऐसी रीति से आग जलाएगा या आग को जलते छोड़ देगा जिससे ऐसा वन संकटापन्न हो जाए; या

जो आरक्षित वन में—

(ग) ऐसी ऋतुओं में के सिवाय जिन्हें वन अधिकारी इस निमित्त अधिसूचित करे, कोई आग जलाएगा, रखेगा या ले जाएगा;

(घ) अतिचार करेगा या पशु चराएगा या पशुओं को अतिचार करने देगा;

(ङ) किसी वृक्ष को गिराने या किसी इमारती लकड़ी को काटने या घसीटने में उपेक्षा द्वारा कोई नुकसान पहुँचाएगा;

(च) किसी वृक्ष को गिराएगा, परितक्षण करेगा, छाँटेगा, छेवेगा या उसे जलाएगा या उसकी छाल उतार डालेगा या पत्तियाँ तोड़ डालेगा, या उसे अन्यथा नुकसान पहुँचाएगा;

(छ) पत्थर की खुदाई करेगा, चूना या लकड़ी का कोयला फूंकेगा, या किसी वन-उपज का संग्रह करेगा, उससे कोई विनिर्माण प्रक्रिया करेगा, या उसे हटाएगा;

(ज) खेती या किसी अन्य प्रयोजन के लिए किसी भूमि को साफ करेगा, या तोड़ेगा;

(झ) राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त बनाए गए किन्हीं नियमों के उल्लंघन में शिकार खेलेगा, गोली चलाएगा, मछली पकड़ेगा, जल विषैला करेगा या पाश या जाल बिछाएगा; या

(ञ) किसी क्षेत्र में, जिसमें हाथी परिरक्षण अधिनियम १८७६ प्रवृत्त नहीं है, इस प्रकार बनाए गए किन्हीं नियमों के उल्लंघन में हाथियों का वध करेगा या उन्हें पकड़ेगा;

वह वन को नुकसान पहुँचाने के कारण ऐसे प्रतिकर के अतिरिक्त, जिसका संदाय किया जाना सिद्धदोष करने वाला न्यायालय निर्दिष्ट करे, ऐसी अवधि के कारावास से, जो छह मास तक का हो सकेगा या जुर्माने से, जो पाँच सौ रुपए तक का हो सकेगा, या दोनों से, दण्डित किया जाएगा।

(२) इस धारा की किसी बात की बाबत यह न समझा जाएगा कि वह—

(क) वन अधिकारी की लिखित अनुज्ञा या राज्य सरकार द्वारा बनाए गए किसी नियम के अधीन किए गए किसी कार्य को, या

(ख) धारा १५ की उपधारा (२) के खण्ड (ग) के अधीन चालू रखे गए या सरकार द्वारा या उसकी ओर से धारा २३ के अधीन दिए गए लिखित अनुदान या की गई लिखित संविदा द्वारा सृष्ट किसी अधिकार के प्रयोग को,

प्रतिषिद्ध करती है।

(३) जब कभी आरक्षित वन में जानबूझ कर या घोर उपेक्षा के द्वारा आग लगाई जाती है तब (इस बात के होते हुए भी कि इस धारा के अधीन कोई शास्ति लगाई गई है) राज्य सरकार निदेश दे सकेगी कि ऐसे वन या उसके किसी प्रभाग में चरागाह या वन-उपज के सब अधिकारों का प्रयोग उतनी कालावधि के लिए, जितनी वह ठीक समझती है, निलम्बित रहेगा।

संशोधन

उत्तर प्रदेश संशोधन—उत्तर प्रदेश सरकार ने मूल अधिनियम की धारा २६ की उपधारा (१) के खण्ड (क) के स्थान पर इण्डियन फ़ॉरेस्ट (उत्तर प्रदेश)

संशोधन) अधिनियम १९६५ की धारा ११ के द्वारा निम्नलिखित नया खण्ड प्रति-स्थापित किया है :

(क) धारा ५ द्वारा प्रतिषिद्ध नया वनोन्मूलन अथवा कोई अन्य कार्य करता है, या

बिहार संशोधन—बिहार सरकार ने १९३५ के बिहार तथा उड़ीसा अधि-नियम संख्या ६ की धारा २ के द्वारा भारतीय वन अधिनियम, १९२७ की धारा २६ की उपधारा (३) के स्थान पर निम्नलिखित नई उपधारा प्रतिस्थापित की है :

(३) जब कभी आरक्षित वन में—

(क) जानबूझ कर या घोर उपेक्षा द्वारा आग लगाई जाती है, या

(ख) वन-उपज की चोरी होती है और ऐसी चोरी, राज्य सरकार की राय में, ऐसे पैमाने पर है कि उससे ऐसे वन की भविष्य प्राप्ति को खतरा हो सकता है, तो राज्य सरकार, खण्ड (क) या खण्ड (ख) मे निर्दिष्ट किसी कार्य के लिए इस धारा या अन्य किसी विधि के अधीन शास्ति दे दिए जाने पर भी, निदेश दे सकेगी कि ऐसे वन या उसके किसी प्रभाग में चरागाह के या वन-उपज के समस्त अधिकारों का प्रयोग—

(i) खण्ड (क) में उल्लिखित परिस्थितियों में, उतनी कालावधि के लिए जितनी वह ठीक समझती है,

(ii) खण्ड (ख) में उल्लिखित परिस्थितियों में, उस कालावधि के लिए जो चार वर्ष से अनधिक हो,

निलम्बित रहेगा।

मध्य प्रदेश संशोधन—मध्यप्रदेश सरकार ने १९६५ के मध्य प्रदेश अधिनियम संख्या ६ की धारा ४ के द्वारा भारतीय वन अधिनियम, १९२७ की धारा २६ की उपधारा (१) में निम्नलिखित संशोधन किए हैं :

(i) खण्ड (ख) के स्थान पर निम्नलिखित खण्ड प्रतिस्थापित किया जाए, अर्थात्—

(ख) आरक्षित वन या किसी वन-भूमि, जिसके बारे में धारा ४ के अधीन राज्य सरकार के इस विनिश्चय की कि उसे आरक्षित वन बनाया जाए घोषणा करने वाली अधिसूचना निकाल दी गई है, में आग लगाएगा या इस निमित्त राज्य सरकार द्वारा बनाए गए किन्हीं नियमों का उल्लंघन करते हुए ऐसी रीति से ऐसे वन में कोई आग जलाएगा या आग को जलते छोड़ देगा जिससे ऐसा वन संकटापन्न हो जाए; या

(ii) खण्ड (ङ) में 'घसीटने' शब्द के स्थान पर 'हटाना' शब्द प्रतिस्थापित किया जाए;

(iii) खण्ड (च) में 'किसी वृक्ष' शब्द के स्थान पर 'किसी वृक्ष या किसी वन-उपज को' शब्द प्रतिस्थापित किए जाएँ;

(iv) खण्ड (ज) के स्थान पर निम्नलिखित खण्ड प्रतिस्थापित किया जाए, अर्थात्-

(ज) खेती या किसी अन्य प्रयोजन के लिए किसी भूमि को साफ करेगा या तोड़ेगा या किसी भूमि को जोतेगा या किसी अन्य रीति से जोतने का प्रयत्न करेगा;

(v) 'जो छह मास तक का हो सकेगा या जुर्माने से, जो पाँच सौ रुपए तक का हो सकेगा' शब्दों के स्थान पर 'जो एक वर्ष तक का हो सकेगा या जुर्माने से जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा' शब्द प्रतिस्थापित किए जाएँ।

टिप्पणी—भारतीय वन अधिनियम की धारा २६ में आरक्षित वन में अनुज्ञात तथा प्रतिषिद्ध कार्यों का वर्णन है और प्रतिषिद्ध कार्यों के करने पर दण्ड की व्यवस्था है। इस धारा की उपधारा (२) में लिखा है कि (i) वन अधिकारी की लिखित अनुज्ञा या राज्य सरकार द्वारा बनाए गए किसी नियम के अधीन किए गए कार्य, या (ii) धारा १५ की उपधारा (२) के खण्ड (ग) के अधीन चालू रखे गए या सरकार द्वारा धारा २३ के अधीन दिए गए लिखित अनुदान या की गई संविदा द्वारा सृष्ट किसी अधिकार का प्रयोग प्रतिषिद्ध नहीं है अर्थात् ये कार्य अनुज्ञात हैं। ऐसे कार्यों को छोड़ आरक्षित वन गठन की प्रक्रिया प्रारम्भ होने के बाद प्रस्थापित आरक्षित वन में या आरक्षित वन में किए गए अन्य कार्य जिनका वर्णन धारा २६ (१) में है, प्रतिषिद्ध हैं।

धारा २६ (१) (क)—इस धारा में प्रस्थापित आरक्षित वन में प्रतिषिद्ध कार्यों का वर्णन है। इस धारा में स्पष्ट लिखा है कि धारा ५ के अधीन प्रतिषिद्ध कटाई सफाई दण्डनीय है। धारा २६ (१) (क) के अधीन दण्डनीय होने के लिए धारा ४ के अधीन अधिसूचना का प्रकाशन ही पर्याप्त है। **मनोरंजनदास बनाम राज्य वाद** (**१९७२** क्रि० एल० जे० ३५४ त्रिपुरा) में अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि अपराध धारा ६ के अधीन की जाने वाली उद्घोषणा से भी पूर्व किया गया है तो वह दण्डनीय है। इस धारा के अधीन अभियोग साबित करने के लिए धारा ४ के अधीन अधिसूचना का प्रकाशन और अपराध स्थल का उस अधिसूचना में वर्णित सीमाओं के अन्तर्गत किया जाना आवश्यक है। **भारतीय संघ बनाम अब्दुल जलील वाद (ए० आई० आर० १९६५ सु० को० १४७)** में अभिनिर्धारित किया गया है कि धारा ४ अधीन निकाली जाने वाली अधिसूचना के अभाव में अभियुक्त को धारा २६ (१) (क) के उल्लंघन का दोषी नहीं कहा जा सकता। इस धारा में 'नई' शब्द महत्वपूर्ण है। इसका अर्थ यह है कि कटाई-सफाई धारा ४ के अधीन अधिसूचना के प्रकाशन के बाद हुई है। यदि वह धारा ४ की अधिसूचना के पहले की है तो वह दण्डनीय नहीं है। अतः यह अभियोक्ता का दायित्व है कि वह प्रत्यक्ष साक्ष्य साबित करे कि धारा ४ के अधीन अधिसूचना निकाले जाने के बाद कटाई-सफाई की गई। कटाई-सफाई चाहे जिस प्रयोजन से की गई हो वह दण्डनीय है। कटाई-सफाई से वृक्षों या झाड़ियों को हटाने जैसा कार्य अभिप्रेत है। [**सम्राट बनाम**

वेनकेन्ना प्रभु वाद आई० एल० आर० २६ मद्रास ४७० तथा मटरू खाँ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य वाद (इलाहाबाद लॉ जरनल, १९६० पृष्ठ ५९०)] सारांश यह है कि धारा २६ (१) (क) के अधीन किसी अभियुक्त को दोषसिद्ध कराने के लिए निम्नलिखित तथ्य निश्चायक साक्ष्य द्वारा निर्विवाद रूप से साबित किए जाने चाहिए :

(i) धारा ४ के अधीन अधिसूचना निकाली जा चुकी है;

(ii) अपराध स्थल अधिसूचना में वर्णित सीमाओं के अन्दर स्थित है; और

(iii) कटाई-सफाई अधिसूचना निकाले जाने के बाद की गई।

अभियुक्त को दोषसिद्ध कराने के लिए यह भी आवश्यक है कि कटाई-सफाई करते हुए अभियुक्त को धारा ६४ के अधीन गिरफ्तार किया जाए और उसके द्वारा प्रयोग में लाए जा रहे उपकरण धारा ५२ के अधीन अभिगृहीत किए जाएँ ताकि अपराध किए जाने के बारे में कोई सन्देह न रहे। ऐसा न करने पर यदि न्यायालय सन्देह का लाभ अभियुक्त को देते हुए उसे दोषमुक्त कर दे तो दोषमुक्ति का आदेश उचित ही होता है। **[त्रिपुरा राज्य बनाम राय मोहन घोष वाद (१९७२ कि० एल० जे० ७०६ त्रिपुरा)]**

धारा २६ (१) (ख)—यह धारा आरक्षित वन से सम्बन्धित है। इस धारा के अधीन दो प्रकार के कार्य दण्डनीय हैं—(i) आरक्षित वन को आग लगाना और (ii) आरक्षित वन के बाहर, इस निमित्त राज्य सरकार द्वारा बनाये गए नियमों का उल्लंघन करते हुए इस रीति से आग जलाएगा या उसे जलते छोड़ देगा कि ऐसा वन संकटापन्न हो जाए। पहले वर्ग में आरक्षित वन को प्रत्यक्ष रूप से आग लगाना दण्डनीय है। आरक्षित वन को आग लगाने के लिए किसी अभियुक्त को सिद्धदोष कराने के लिए धारा २० की अधिसूचना, धारा २१ के अधीन निकटवर्ती ग्रामों में उसका अनुवाद प्रकाशन तथा घटनास्थल को आरक्षित वन सीमा में सिद्ध करने के बाद आग लगाने की घटना के सबूत प्रस्तुत करने चाहिए। दूसरे वर्ग के अभियोग के लिए (i) आरक्षित वन सीमा के बाहर आग जलाने के नियम सरकार ने बनाए हैं; (ii) उन नियमों की सूचना ग्रामनिवासियों को दी गई थी, और उन नियमों का स्पष्ट उल्लंघन किया गया आदि साबित करना पड़ेगा। साथ ही इस उल्लंघन के फलस्वरूप जिस वन को खतरा हुआ, उस वन को आरक्षित वन भी सिद्ध करना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति अपने स्वामी के बगीचे में आग जला दे और वहाँ से अवर्गीकृत वन में फैल कर वह आरक्षित वन में फैल जाए तो वह व्यक्ति इस धारा के अधीन दण्डित नहीं किया जा सकता। **[राव बनाम सम्राट वाद ए० आई० आर० १९१६ लाहौर ७० (२)]**

धारा २६ (१) (ग) से (ञ) में उन कार्यों का उल्लेख है जिनका आरक्षित वन सीमा के अन्दर किया जाना प्रतिषिद्ध है और इस कारण दण्डनीय हैं। इन कार्यों के करने वाले को सिद्धदोष तभी कराया जा सकता है जब सबसे पहले वह वन या बंजर-भूमि, जहाँ अपराध का किया जाना अभिकथित है, आरक्षित वन साबित

किया जाए। इसके लिए धारा २० के अधीन अधिसूचना का प्रकाशन, तथा अपराध-स्थल का अधिसूचना में वर्णित वन सीमा के अन्दर होना साबित किया जाना चाहिए। इसके लिए अधिसूचना के साथ-साथ आरक्षित वन का नक्शा भी प्रस्तुत करना चाहिए और उसमें वह स्थान दिखाना चाहिए जहाँ अपराध किया गया है। मूल प्रतियाँ न्यायालय में दिखाकर प्रमाणित प्रतियाँ न्यायालय के अभिलेख के लिए प्रस्तुत करनी चाहिए। **सनातन महाल्लिक बनाम राज्य सरकार वाद (१९६६ कटक एल० टी० २२९)** में अभिनिर्धारित किया गया है कि केवल इस आशय के मौखिक साक्ष्य पर कि अपराधस्थल आरक्षित वन है, अभियुक्त दण्डित नहीं किया जा सकता। इसके लिए धारा २० के अधीन अधिसूचना का निकाला जाना साबित करना आवश्यक है। **उदयनाथ स्वेन तथा अन्य बनाम राज्य सरकार वाद (१९६९ कटक एल० टी० ३४३)** में अभिनिर्धारित किया गया कि धारा २६ के अधीन दण्ड दिलाने के लिए धारा २० के अधीन अधिसूचना का प्रकाशन और धारा २१ के अधीन जन-भाषा में उसके अनुवाद का प्रकाशन साबित किया जाना चाहिए। इसी प्रकार का निर्णय **साधूपात्र तथा अन्य बनाम उड़ीसा राज्य वाद (१९७० कटक एल०टी० ३९५)** में दिया गया है। इसके अतिरिक्त इन धाराओं के अधीन जिस प्रतिषिद्ध कार्य को करने का अभियोग हो उसके विषय में केवल यही साबित नहीं करना चाहिए वरन् यह भी कि वह उस कार्य को करने का हकदार नहीं था। सारांश यह है कि धारा २६ (१) खण्ड (ग) से खण्ड (ञ) में वर्णित प्रतिषिद्ध कार्यों को दण्डित कराने के लिए सम्बन्धित कार्य को किया जाना साबित करने से पहले नीचे लिखी बातें निश्चित रूप से साबित करनी चाहिएँ :

(i) धारा २० के अधीन अधिसूचना का निकाला जाना;
(ii) धारा २१ के अधीन अधिसूचना का जनभाषा में अनुवाद प्रकाशन;
(iii) अपराध स्थल का आरक्षित वन में होना; और
(iv) अभियुक्त उस कार्य को करने का हकदार नहीं था।

धारा २६ (१)(ग)—इस धारा के अनुसार ऐसी ऋतुओं के सिवाय जिन्हें वन-अधिकारी इस निमित्त अधिसूचित करे, आरक्षित वन में आग जलाना, रखना या ले जाना दण्डनीय अपराध है। इस अभियोग को सिद्ध करने के लिए वन अधिकारी द्वारा की गई अधिसूचना प्रस्तुत करनी चाहिए कि अमुक कालावधि में आरक्षित वन में आग जलाना, रखना या ले जाना प्रतिषिद्ध है। इस अधिसूचना का जनभाषा में अनुवाद तथा उसका ध्यानाकर्षी स्थानों आरक्षित वन के पास विज्ञापन किया जाना भी साबित करना चाहिए। इसके अतिरिक्त उस ऋतु में प्रतिषिद्ध कार्यों का किया जाना साबित करना चाहिए। आग रखने या ले जाने से तात्पर्य वास्तविक और प्रत्यक्ष आग रखने या ले जाने से है, न कि केवल दियासलाई की डिब्बी या आग पैदा करने वाला कोई उपकरण रखने से। अपराध तभी होता है जब ऐसी ऋतु में आरक्षित वन में जलती हुई आग हाथ में हो। **सम्राट बनाम रनछोड़ कौशल वाद**

(४ मुम्बई एल० आर० ६३५) में अभिनिर्धारित किया गया है कि आरक्षित वन के अन्दर फिलन्ट तथा स्टील का कब्जे में होना धारा २६ (१) (ग) के अधीन अपराध नहीं बनाता।

धारा २६ (१) (घ)—इस धारा में दो प्रकार के कार्य दण्डनीय बताये गए हैं—पहला, किसी व्यक्ति द्वारा स्वयं किया गया अतिचार और दूसरा, पशुओं का आरक्षित वन में अवैध रूप से चराना या उनको अतिचार करने देना। इस धारा की भाषा से स्पष्ट है कि वह उस व्यक्ति पर लागू होती है जो उसमें उल्लिखित कोई कार्य स्वयं करता है। [**सैयद रहीम बनाम सम्राट वाद** (ए० आई० आर० १६१५ नागपुर २)]

अतिचार करने का अर्थ है किसी अन्य व्यक्ति की सम्पत्ति पर अधिक्रमण करना चाहे वह कितना ही सूक्ष्म क्यों न हो। भारतीय दण्ड संहिता की धारा ४४७ के अनुसार आपराधिक अतिचार अर्थात् वह अतिचार जो किसी को अपमानित, अभित्रस्त या क्षुब्ध करने के लिए किया गया हो, दण्डनीय है परन्तु भारतीय वन अधिनियम के अनुसार आरक्षित वन में प्रवेश मात्र, यदि वह विधिपूर्ण नहीं है, धारा २६ (१) (घ) के अधीन दण्डनीय है।

पशु चराना या पशुओं को अतिचार करने देना—धारा के इस भाग के अनुसार वह व्यक्ति दण्डनीय है जो आरक्षित वन में अवैध रूप से पशु चराता है या उनको अतिचार करने देता है। **फकीरा सम्भाजी कुम्बी बनाम सम्राट** (ए० आई० आर० १६२६ नागपुर ७३) तथा **सम्राट बनाम मौहम्मद खाँ** (ए० आई० आर० १६३८ नागपुर ३६५) वादों में अभिनिर्धारित किया गया है कि अपने चरवाहे के कार्यों के लिए पशुओं का स्वामी आपराधिक रूप में दायित्वाधीन नहीं हो सकता जब तक कि उसने किसी खुल्लमखुल्ला कार्य या उपेक्षापूर्ण लोप के द्वारा पशुओं को इस प्रकार चरने के लिए अनुज्ञात न किया हो।

जहाँ कुछ पशु बिना अनुज्ञापत्र (परमिट) के नौकर द्वारा आरक्षित वन में चराए जा रहे हों वहाँ भी पशुओं का स्वामी इस अपराध के लिए दण्डविधि की दृष्टि से दायित्वाधीन नहीं हो सकता जब तक कि यह साबित न किया जाए कि पशुओं के स्वामी का भी ऐसी चराई कराने का आशय था। यह आशय इस तथ्य से साबित किया जा सकता है कि बिना परमिट के पशुओं के साथ परमिट वाले पशु भी थे। [**सम्राट बनाम वामन राव वाद** (ए० आई० आर० १६३७ नागपुर १६६)]। यदि पशुओं के साथ कोई व्यक्ति न हो तब यह देखना पड़ेगा कि पशुओं का स्वामी अपने पशुओं को अनधिकृत चराई या अतिचार करने से रोकने के लिए उचित पूर्वावधानियाँ काम में लाया या नहीं। यदि उसने पूर्वावधानी नहीं बरती तो वह, चाहे उस स्थान पर उपस्थित हो या नहीं, दण्डनीय है। जहाँ किसी स्वामी के पशु उसके गृह के पड़ौस में आरक्षित वन में अतिचार करते पाए जाएँ तो प्रथम दृष्ट्या उसे अतिचार करने देने के लिए दोषी माना जाना चाहिए। [क्राउन बनाम

समन्दर (११ क्रि० एल० जे० ६७)]।

मौहम्मद खाँ बनाम सम्राट वाद (ए० आई० आर० १९३८ नागपुर ३६५) में अभिनिर्धारित किया गया कि इस धारा के अधीन अपराध वैसा ही है जैसा इमारती लकड़ी का अवैध रूप से ले जाना और इसलिए अवैध चराई करते हुए पशु उसी प्रकार अधिहरणीय हैं जैसे वे पशु जो अवैध रूप से गिराए गए वृक्षों की इमारती लकड़ी से लदी गाड़ी खींच रहे हों। **सम्राट बनाम गाजी वाद (१९ पी० आर० १८८५ पृष्ठ ४२)** में अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि अपराध करने वाले पशुओं को काँजीहौस में परिबद्ध करा दिया जाए और उन्हें छुड़ाने के लिए उनके स्वामी को पशु अतिचार अधिनियम १८७१ के अधीन काँजीहौस का कोई प्रभार संदाय करना पड़े तो यह प्रभार दण्ड नहीं है और इस कारण उसका संदाय करना भारतीय वन अधिनियम की धारा २६ (१) (घ) के अधीन उस व्यक्ति के विरुद्ध वाद चलाने को वर्जित नहीं करता।

धारा २६ (१) (ङ)—इस धारा में वृक्षों के वैध गिरान या इमारती लकड़ी के वैध रूप से काटने या घसीटने में उपेक्षा द्वारा होने वाले नुकसान को दण्डनीय बताया गया है। विधिपूर्वक वृक्ष गिरान या इमारती लकड़ी का वन में काटना या घसीटना या तो ठेकेदार करते हैं या अधिकारों का प्रयोग करते हुए ग्रामवासी। ठेकेदारों को तो उनके करार विलेखों के अनुसार दण्ड दिया जा सकता है; अतः अधिकारों का प्रयोग करने वालों या अनुज्ञापत्र पर एक या दो वृक्ष क्रय करने वालों की उपेक्षा से होने वाले नुकसान को इस धारा के अधीन दण्डनीय बनाया गया है।

धारा २६ (१) (च)—इस धारा के अनुसार आरक्षित वन में अवैध रूप से वृक्षों का गिराना, परितक्षण करना (to girdle), छाँटना (to lop), छेवना (to tap) या उन्हें जलाना, या उनकी छाल उतारना, पत्तियाँ तोड़ डालना, या उन्हें अन्यथा नुकसान पहुँचाना दण्डनीय अपराध है। प्रत्येक वृक्ष का गिराना एक अपराध होता है। **सम्राट बनाम रघुनाथ वाद (ए० आई० आर० १९१८ इलाहाबाद ३५१)** में अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि किसी व्यक्ति ने अनेक वृक्ष गिराए हैं तो उसने उतने ही अपराध किए हैं जितने कि उसने वृक्ष गिराए हैं। अत: अधिक वृक्षों के अवैध पातन के दोषी व्यक्ति को युक्तियुक्त दण्ड दिलवाने के लिए उनका अलग-अलग वाद चलाया जा सकता है।

अभिगृहीत लट्ठों में से कुछ लट्ठों के एक सिरे को आरक्षित वन में अवैध गिराए गए वृक्षों के ठूँठों के समान साबित करने से यह साबित हो जाता है कि अभिगृहीत लट्ठे उन्हीं वृक्षों के हैं जिनके ठूँठ वन में हैं। इसके लिए ठूँठ का प्रमाणित अनुरेखण (ट्रेसिंग) और सबसे नीचे वाले लट्ठे के मोटे सिरे का प्रमाणित अनुरेखण न्यायालय में प्रस्तुत करना चाहिए जिससे उनकी समानता अभियोग साबित करने में सहायक हो। वन अधिनियम के अधीन वादों में यह अभियोजन का कर्त्तव्य

है कि वह सिद्ध करे कि आरक्षित वन में कुछ वृक्ष अवैध रूप से गिराए गए, उनकी इमारती लकड़ी ले जाई गयी, और अभियुक्त के कब्जे में पाई गयी इमारती लकड़ी आरक्षित वन से अवैध रूप से हटाए गये लट्ठों की इमारती लकड़ी से मिलती है। **सिद्धेश्वर पण्डा बनाम राज्य वाद (ए० आई० आर० १९५४ उड़ीसा १६)** में अभिनिर्धारित किया गया है कि अभियुक्त का अपने कब्जे में पाई गयी इमारती लकड़ी के विषय में सन्तोषजनक रूप से न समझा पाना अभियोजन पक्ष को यह सिद्ध करने के भार से मुक्त नहीं करता कि अभियुक्त के कब्जे में अभिगृहीत लट्ठे सरकारी सम्पत्ति हैं और वे आरक्षित वन से अवैध रूप से वृक्ष गिराकर ले जाए गए।

धारा २६ (१) (छ)—इस धारा में आरक्षित वन पत्थर की खुदाई करना, चूना या लकड़ी का कोयला फूंकना, किसी वन-उपज का संग्रह करना, उससे कोई विनिर्माण प्रक्रिया करना या उसे हटाना दण्डनीय बताया गया है। यह धारा पिछली धारा से अधिक व्यापक है। इसमें किसी वन-उपज का हटाना दण्डनीय है। अतः जब वृक्षों को काटकर उसके लट्ठे ले जाने का अभियोग हो तो वाद धारा २६ (१) (च) तथा (छ) दोनों में चलाना चाहिए। इसके विपरीत जब किसी अन्य वन-उपज के संग्रह और हटाने का अभियोग हो तो केवल धारा २६ (१) (छ) के अधीन अभियोग चलाना चाहिए।

धारा २६ (१) (ज)—इस धारा के अनुसार आरक्षित वन में भूमि साफ करना या तोड़ना दण्डनीय है। इस प्रकार इस धारा के अधीन अधिक्रमण की घटनाओं के वाद चलाए जा सकते हैं। **देवराम बनाम राज्य वाद (ए० आई० आर० १९५२ इलाहाबाद ३३)** में अभिनिर्धारित किया गया कि पद 'साफ करना या तोड़ना' में उस भूमि का साफ करना या तोड़ना विवक्षित है जो पहले ही साफ न की जा चुकी हो या तोड़ी न जा चुकी हो। उससे पहले ही साफ की जा चुकी या तोड़ी जा चुकी भूमि का साफ करना या तोड़ना अभिप्रेत नहीं है। इस निर्णय से यह भी स्पष्ट है कि अधिक्रमण की घटनाओं पर तत्काल कार्यवाही की जानी चाहिए; अन्यथा अभियुक्त को दोषसिद्ध कराने में कठिनाई हो सकती है।

धारा २६ (१) (झ)—इस धारा के अनुसार, राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त बनाए गए किन्हीं नियमों का उल्लंघन करते हुए आरक्षित वन में शिकार खेलना, गोली चलाना, मछली पकड़ना, जल विषैला करना या पाश या जाल बिछाना आदि कार्य दण्डनीय है। अतः सर्वप्रथम अभियोग सिद्ध करने के लिए राज्य सरकार द्वारा बनाए गए शिकार सम्बन्धी या वन्यजीव संरक्षण सम्बन्धी नियमों का अस्तित्व और उसका उल्लंघन साबित करना आवश्यक है। किसी वन्य पशु ने किसी व्यक्ति का कितना ही नुकसान क्यों न किया हो, परन्तु यदि वह उसे आरक्षित वन में जाकर सक्षम प्राधिकारी से अनुज्ञा प्राप्त किए बिना मारता है तो वह इस धारा के अधीन दण्डनीय है। **अमीर साहब बाला मियाँ पाटिल बनाम सम्राट वाद** (ए० आई० आर०

१९१८ मुम्बई १५०) में अभिनिर्धारित किया गया है कि अपने पशुओं के मारने वाले शेर का भी आरक्षित वन में शिकार करना तथा उसे गोली से मारना इस धारा के अधीन दण्डनीय है।

आखेट के सम्बन्ध में 'शिकार खेलना' और 'गोली चलाना' पद महत्वपूर्ण हैं। **जगन्नाथ राव दानी बनाम सम्राट वाद** (ए० आई० आर० १९३५ नागपुर २३) में अभिनिर्धारित किया गया है कि 'शिकार खेलना' पद में गति, पीछा करना और खोज विवक्षित है। इसलिए कोई व्यक्ति, जो आरक्षित वन में शिकार का हाँका करने वाले दल में से एक है, शिकार करने वाला सदस्य है और चाहे वह प्रतिषिद्ध क्षेत्र के अन्दर न हो, वह शिकार करने वाले अन्य व्यक्तियों के साथ उस अपराध का दोषी है। ऐसा ही निर्णय **बरकत अली बनाम सम्राट वाद (ए० आई० आर० १९१८ इलाहाबाद ३३८)** में भी दिया गया है। इसी प्रकार जो व्यक्ति शिकार का परमिट प्राप्त किए बिना आरक्षित वन में भरी हुई बन्दूक लेकर मचान बना कर उस पर बैठता है तो वह इस धारा के अधीन शिकार खेलने का दोषी है। **सम्राट बनाम मालू होरू बागड़ा वाद (१२ मुम्बई एल० जे० आर० ५२०; ११ क्रि० एल० जे० ४८९)** में अभिनिर्धारित किया गया है कि अभियुक्त शिकार के लिए बनायी जाने वाली एक विशेष प्रकार की मचान पर शिकार करने के आशय से बैठा था और उसके बगल में भरी हुई बन्दूक थी; अतः अभियुक्त शिकार खेल रहा था। **'शिकार खेलना'** पद से वन्य पशुओं की खोज में जाना या उनका पीछा करना अभिप्रेत है। इसके विपरीत 'गोली चलाना' पद से किसी आयुध से गोली चलाना अभिप्रेत है। शिकार खेलने में शिकार करने के आशय से वन में जाना, मचान पर भरी बन्दूक लेकर बैठना या वन्य पशुओं का हाँका करना आदि सब सम्मिलित हैं परन्तु 'गोली चलाना' पद में गोली चलाने के आशय से वन में जाना दण्डनीय नहीं है। **बलवीरसिंह बनाम सम्राट वाद (ए० आई० आर० १९३३ इलाहाबाद ९३०)** में अभिनिर्धारित किया गया है कि वन अधिनियम में जो दण्डनीय है वह गोली चलाने का आशय नहीं है वरन् वास्तविक गोली चलाना है। इसी प्रकार का निर्णय **गुहराम बनाम सम्राट वाद** (ए० आई० आर० १९३१ सिन्ध १५९) में दिया गया था। इन दोनों पदों में इतना महत्वपूर्ण अन्तर होने के कारण यह आवश्यक है कि जब इस धारा के अधीन वाद चलाया जाए तो अभियोग पत्र में शब्दों का प्रयोग बड़ी सावधानी से किया जाए। यह स्पष्ट रूप से लिखा जाए कि अभियोग शिकार खेलने का है या गोली चलाने का या दोनों का।

धारा २६ (१) (ञ)—इस धारा के अधीन उन स्थानों में जहाँ हाथी परि-रक्षण अधिनियम १८७९ प्रवृत्त नहीं है, इस प्रकार बनाए गए नियमों के उल्लंघन में हाथियों का वध करना या उन्हें पकड़ना दण्डनीय है। अतः इस धारा के अधीन अभियोग साबित करने के लिए नियमों का अस्तित्व, उनका उल्लंघन करके हाथी मारना या पकड़ना आदि कार्य साबित करना पडेगा।

दण्ड—धारा २६ (१) के विभिन्न खण्डों में वर्णित कार्यों के लिए अभियुक्त के सिद्धदोष होने पर वन को नुकसान पहुँचाने के कारण प्रतिकर के अतिरिक्त, जिसका संदाय किया जाना सिद्धदोष करने वाला न्यायालय निर्दिष्ट करे, अभियुक्त ऐसी अवधि के कारावास से जो छह मास तक का हो सकता है या जुर्माने से, जो पाँच सौ रुपए तक का हो सकता है या दोनों से दण्डित किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, अभियुक्त को सिद्धदोष करने वाला न्यायालय वन को होने वाले नुकसान के लिए प्रतिकर और अवैध कार्यों के लिए कारावास या जुर्माना या दोनों दण्ड दे सकता है। सब राज्यों में दण्ड की सीमा वही है जो मूल अधिनियम में है परन्तु मध्य प्रदेश में राज्य सरकार ने १९६५ के मध्य प्रदेश अधिनियम सख्या ९ के द्वारा कारावास की अधिकतम अवधि एक वर्ष और जुर्माने की अधिकतम राशि एक हजार रुपए कर दी है।

प्रतिकर के सम्बन्ध में यह जानना आवश्यक है कि वह सिद्धदोष करने वाला न्यायालय ही निर्दिष्ट कर सकता है। अन्य किसी न्यायालय द्वारा प्रतिकर का आदेश देना विधि विरुद्ध है। **मटरू खाँ बनाम राज्य सरकार वाद** (इलाहाबाद लॉ जरनल १९६० पृष्ठ ५९०) के निर्णय में कहा गया है कि वन अधिनियम की धारा २६ अपील न्यायालय को प्रतिकर अधिनिर्णीत करने की कोई शक्ति प्रदान नहीं करती। प्रयुक्त शब्द 'सिद्धदोष करने वाला न्यायालय' है और इसलिए केवल विचारण करने वाला न्यायालय ही सिद्धदोष करने वाला न्यायालय हो सकता है। परन्तु यदि यह भी मान लिया जाए कि वे सब न्यायालय जो अभियुक्त की दोषसिद्धि का समर्थन करते हैं वे सिद्धदोष करने वाले न्यायालय पद में समाविष्ट हैं तब भी विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपित जुर्माने के अतिरिक्त अपील न्यायालय द्वारा प्रतिकर लगाने वाला आदेश दण्डादेश की वृद्धि की कोटि में आएगा और दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा ४२३ के अधीन अपील न्यायालय की अधिकारिता के स्पष्ट रूप से बाहर होगा।

धारा २६ (३)—इस धारा के अनुसार जब कभी आरक्षित वन में जानबूझकर या घोर उपेक्षा द्वारा आग लगाई गई हो तब राज्य सरकार निदेश दे सकती है कि ऐसे वन में या उसके किसी प्रभाग में चरागाह या वन-उपज के सब अधिकारों का प्रयोग उतनी कालावधि के लिए जितनी वह ठीक समझती है, निलम्बित रहेगा। यह धारा २६ (१) के अधीन दिए गए दण्ड के अतिरिक्त हो सकता है। बिहार सरकार ने एक संशोधन द्वारा राज्य सरकार की अधिकारों के प्रयोग को निलम्बित करने की शक्ति आग के अतिरिक्त वन-उपज की विस्तृत चोरी की घटनाओं के सम्बन्ध में भी लगाने के लिए कर दी है परन्तु चोरी की घटनाओं के फलस्वरूप निलम्बित होने वाला अधिकारों का प्रयोग केवल चार वर्ष से अनधिक कालावधि का हो सकता है।

धारा २७—(१) राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा निदेश दे सकेगी कि इस अधिनियम के अधीन आरक्षित कोई वन या उसका कोई प्रभाग, ऐसी

अधिसूचना द्वारा नियत तारीख से, आरक्षित वन नहीं रह जाएगा।

(२) इस प्रकार नियत तारीख से ऐसा वन या उसका प्रभाग आरक्षित वन नहीं रह जाएगा, किन्तु उसमें वे अधिकार (यदि कोई हों) जो निर्वापित हो गए हैं, ऐसे न रहने के परिणामस्वरूप पुनरुज्जीवित नहीं हो जाएँगे।

संशोधन

उत्तर प्रदेश सरकार ने मूल अधिनियम की धारा २७ के पश्चात् इण्डियन फॉरेस्ट (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम, १९६५ की धारा १२ के द्वारा निम्नलिखित नई धारा जोड़ दी है :

२७-क इसमें इसके पूर्व उपबन्धित के सिवाय, इस अध्याय द्वारा या इसके अधीन प्रदत्त किसी शक्ति के उपयोग में किया गया कोई कार्य, दिया गया कोई आदेश, या जारी किया गया कोई प्रमाण-पत्र किसी न्यायालय में प्रश्नगत नहीं किया जाएगा।

अध्याय ३

ग्राम वन

वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून द्वारा प्रकाशित 'इण्डियन फॉरेस्ट एण्ड फॉरेस्ट प्रोडक्ट्स टर्मीनॉलीजी' के अनुसार **ग्राम वन राज्य सरकार वह वन है जो भारतीय वन अधिनियम के उपबन्धों के अधीन किसी ग्राम समुदाय को समनुदेशित (assign) कर दिया गया है।** भारतीय वन अधिनियम १९२७ के अध्याय ३ में ग्राम वन गठित करने की प्रक्रिया का वर्णन है। उसकी धारा २८ के अधीन अधिसूचना निकालने के बाद कोई वन ग्राम वन बनता है। अत: दूसरे शब्दों में, **ग्राम वन राज्य सरकार का वह वन है जिस पर अपने अधिकार राज्य सरकार ने भारतीय वन अधिनियम, १९२७ की धारा २८ के अधीन किसी ग्राम समुदाय को समनुदेशित कर दिए हैं।**

ग्राम वन बनाने का उद्देश्य—१९५२ की राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार ग्राम-वनों का गठन तथा संरक्षण मुख्य रूप से गाँवों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किया जाता है। वे ग्रामवासियों की घर तथा कृषि उपकरणों के लिए छोटे आकार का प्रकाष्ठ, ईंधन, चराई तथा अन्य वन-उपज(जैसे बाड़ के लिए काँटे, खाने के लिए कन्द तथा फल, औषधि के लिए जड़ी-बूटी आदि) सम्बन्धी आवश्यकता पूरी करते हैं।

ग्राम वन बनाए जाने के लिए अपेक्षित गुण—भारतीय वन अधिनियम १९२७ की धारा २८ के अनुसार राज्य सरकार आरक्षित वन से ग्राम वन बना सकती है। इसलिए ग्राम वन बनाए जाने के लिए सबसे महत्वपूर्ण अपेक्षित गुण उस वन का आरक्षित वन होना है परन्तु उत्तर प्रदेश में इण्डियन फॉरेस्ट (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम १९६० की धारा २ के द्वारा मूल अधिनियम में संशोधन करके आरक्षित वन के अतिरिक्त संरक्षित वन या सरकार के अन्य वन (जो अभी तक अवर्गीकृत हों) से भीग्राम वन बनाया जाना अनुज्ञात कर दिया गया है। ग्राम वन बनाए जाने के लिए दूसरा अपेक्षित गुण यह है कि उसमें केवल उसी ग्राम के अधिकार होने चाहिए जिसे उस वन का अधिकार समनुदेशित किया जा रहा है। यदि उसमें किसी अन्य ग्रामवासियों के अधिकार होंगे तो विधिक कठिनाई हो जाएगी।

ग्राम वन सम्बन्धी उपबन्ध

धारा २८—(१) राज्य सरकार किसी ऐसी भूमि के प्रति या उस पर, जो आरक्षित वन कर दी गई है, अधिकार किसी ग्राम समुदाय को समनुदिष्ट कर

सकेगी और ऐसा समनुदेशन रद्द कर सकेगी। इस प्रकार समनुदेशित सब वन ग्राम-वन कहलाएँगे।

(२) जिस ग्राम समुदाय को ऐसा समनुदेशन किया गया है उस ग्राम समुदाय के लिए इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज या चरागाह का उपबन्ध जिन शर्तों के के अधीन किया जा सकेगा, उन्हें ऐसे वन के संरक्षण और सुधार के लिए, उनके कर्त्तव्यों को विहित करने वाले नियम राज्य सरकार ग्राम वनों के प्रबन्ध को विनियमित करने के लिए बना सकेगी।

(३) इस अधिनियम के वे सब उपबन्ध, जो आरक्षित वनों से सम्बद्ध हैं, वहाँ तक (जहाँ तक कि वे इस प्रकार बनाए गए सब नियमों से असंगत नहीं हैं), ग्राम वनों को लागू होंगे।

उत्तर प्रदेश संशोधन—उत्तर प्रदेश सरकार ने इण्डियन फॉरेस्ट (उत्तर प्रदेश सशोधन) अधिनियम १९६० के द्वारा मूल अधिनियम की धारा २८ (१) में 'आरक्षित वन कर दी गई है' के बाद 'संरक्षित वन घोषित कर दी गई है या जो सरकार के वन हैं' और अन्त में 'और उपधारा (२) के अधीन बने नियमों के अध्यधीन रहते हुए, आरक्षित वनों, संरक्षित वनों या सरकार के वनों से सम्बन्धित इस अधिनियम के सब उपबन्ध, यथास्थिति, उनको लागू होंगे' शब्द जोड़ दिए हैं और उपधारा (३) निकाल दी है।

ग्राम वन बनाने की प्रक्रिया—ग्राम वन बनाने की प्रक्रिया बहुत सरल है। राज्य सरकार ग्राम वन बनाने का विनिश्चय कर केवल एक अधिसूचना निकाल कर उस वन पर राज्य सरकार के अधिकार किसी ग्राम समुदाय को समनुदिष्ट कर देती है और तब वह वन ग्राम वन कहलाने लगता है।

ग्राम वनों का संरक्षण और सुधार—ग्राम वनों से केवल वर्तमान ग्राम-समुदाय की ही नहीं वरन् उनकी भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं की पूर्ति की अपेक्षा की जाती है। अतः यह आवश्यक है कि उनका प्रबन्ध वैज्ञानिक ढंग से हो और सरकार उनकी दशा के प्रति सजग रहे। ऐसे वनों के लिए सरकार को नियम बनाने का अधिकार भारतीय वन अधिनियम १९२७ की धारा २८ की उपधारा (२) में मिला है। राज्य सरकार उन वनों के संरक्षण और सुधार की दृष्टि से सम्बन्धित ग्राम समुदायों के कर्त्तव्यों को और उन शर्तों को जिनके अधीन, वह ग्राम समुदाय जिसे वह वन समनुदेशित किया गया है, इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज अभि-प्राप्त कर सकता है, विहित करते हुए उन वनों के प्रबन्ध को विनियमित करने के लिए नियम बना सकती है। इसके साथ-साथ भारतीय वन अधिनियम के उस वन से, जिसमें से ग्राम वन बनाया गया है, सम्बन्धित उपबन्धों को भी, जहाँ तक वे विशेष रूप से बनाए गए नियमों से असंगत न हों, उन पर लागू करने का प्रावधान धारा २८ (३) में किया गया है।

ग्राम वनों का वित्तीय प्रबन्ध—ग्राम वनों का प्रबन्ध लाभ के लिए नहीं किया

जाता। उनका मुख्य और एक मात्र उद्देश्य तो ग्रामवासियों की आवश्यकताओं को अनन्त काल तक पूरा करना है। फिर भी उन्हें अन्य कर-दाताओं पर बोझ नहीं बनाया जा सकता। अतः उनके प्रबन्ध तथा संरक्षण में होने वाला व्यय उनसे मिलने वाली उपज से निकाला जाता है। राजस्व के सामान्य स्रोत ग्राम वन में हुए अपराधों के जुर्माने तथा अतिरिक्त वन-उपज या ऐसी वन-उपज जो ग्रामवासी काम में नहीं लाते हैं, की बिक्री हैं। ग्राम समुदाय प्रति वर्ष प्रत्येक खेत या खेत समूह को दी जाने वाली वन-उपज निर्धारित कर लेते हैं। वन के वैज्ञानिक प्रबन्ध से जितनी वन-उपज मिलती है, वह उनमें निर्धारित रीति से बाँट दी जाती है और शेष बेच दीजाती है। समस्त आय में से प्रबन्ध तथा अन्य व्यय देने के बाद जो बचता है वह राजस्व के रूप में जमा कर दिया जाता है और वनों की उत्पादन क्षमता बढ़ाने में उपयोग में लाने के बाद ग्राम समुदाय के सामूहिक लाभ के कार्यों पर, जैसे पाठशाला या स्कूल का निर्माण, सड़कों या पुलों का निर्माण, पंचायतघर या औषधालय का निर्माण, व्यय किया जाता है।

समनुदेशन के रद्द करने की शक्ति—यदि राज्य सरकार यह देखती है कि सब प्रकार के नियमों के होते हुए भी ग्राम समुदाय वन का प्रबन्ध ठीक नहीं कर रहा तो वह अधिनियम की धारा २८ (१) में प्रदत्त शक्ति का प्रयोग कर समनुदेशन रद्दकर वन का प्रबन्ध ग्राम समुदाय से वापिस ले सकती है।

आरक्षित वन और ग्राम वन में अन्तर

(i) आरक्षित वन उस वन-भूमि या बंजर-भूमि को बनाया जा सकता है जो सरकार की सम्पत्ति हो या जिस पर सरकार का साम्पत्तिक अधिकार हो या जिसकी पूरी वन-उपज या उसके किसी भाग की सरकार हकदार हो। इसके विपरीत मूल अधिनियम के अनुसार ग्राम वन उस वन से बनाया जाता है जो आरक्षित वन हो।

(ii) आरक्षित वन गठन की प्रक्रिया लम्बी है, उसमें अधिकारों की अवधारणा और जांच के साथ-साथ उनकी पूर्णतः या भागतः मंजूरी के बारे में भी विनिश्चय किया जाता है और तब परिनिर्मित सीमा स्तम्भों से सीमा बना दी जाती है। इसके विपरीत ग्राम वन गठन की प्रक्रिया सरल तथा संक्षिप्त है। राज्य सरकार अपने अधिकार ग्राम समुदाय के समनुदेशित करने वाली अधिसूचना निकालती है और वह वन ग्राम वन बन जाता है।

(iii) आरक्षित वन का प्रबन्ध सरकार करती है। इसके विपरीत ग्राम वन का प्रबन्ध राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार ग्राम समुदाय द्वारा किया जाता है।

(iv) आरक्षित वन में स्वामित्व और कब्जा राज्य सरकार का होता है। ग्राम वन में स्वामित्व सरकार का और कब्जा ग्राम समुदाय का होता है।

(v) आरक्षित वन में विभिन्न ग्रामों के निवासियों के अधिकार हो सकते हैं।

इसके विपरीत ग्राम वन में केवल उसी ग्राम के अधिकार होते हैं जिसे वह समनुदेशित किया गया है।

(vi) आरक्षित वन में राजस्व सरकार का होता है परन्तु ग्राम वन में वह ग्राम समुदाय का होता है।

(vii) आरक्षित वन की विधिक स्थिति आपेक्षाकृत अधिक स्थायी ह परन्तु ग्राम वन की स्थिति उतनी स्थायी नहीं; उसका अस्तित्व तो राज्य सरकार के प्रसादानुसार होता है।

अध्याय ४

संरक्षित वन

(Protected forest)

इण्डियन फॉरेस्ट एण्ड फॉरेस्ट प्रोडक्ट्स टर्मीनॉलीजी के अनुसार, संरक्षित वन वह विधिक पद है जो भारतीय वन अधिनियम के अध्याय ४ के उपबन्धों के अधीन सीमित मात्रा के संरक्षण के अध्यधीन रहने वाले क्षेत्र के लिए प्रयुक्त होता है। दूसरे शब्दों में, संरक्षित वन वह वन है जो भारतीय अधिनियम १९२७ की धारा २९ के अधीन संरक्षित वन घोषित किया गया है और जिसमें सीमित मात्रा का संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से उस अधिनियम के अध्याय ४ के उपबन्ध लागू होते हैं।

संरक्षित वन सम्बन्धी वन अधिनियम की विभिन्न धाराएँ

धारा २९—(१) राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा घोषित कर सकेगी कि इस अध्याय के उपबन्ध किसी वन-भूमि या बंजर-भूमि को, जो आरक्षित वन में सम्मिलित नहीं है किन्तु जो सरकार की सम्पत्ति है या जिस पर सरकार का साम्पत्तिक अधिकार है या जिसकी सम्पूर्ण वन-उपज या उसके किसी भाग की सरकार हकदार है, लागू हैं।

(२) ऐसी किसी अधिसूचना में समाविष्ट वन भूमि और बंजर भूमि 'संरक्षित वन' कहलाएगी।

(३) जब तक कि अधिसूचना में समाविष्ट वन-भूमि या बंजर-भूमि में या उन पर सरकार या प्राइवेट व्यक्तियों के अधिकारों के स्वरूप और विस्तार की जाँच नहीं कर ली जाती और सर्वेक्षण या बन्दोबस्त अभिलेख में या अन्य किसी रीति से, जैसी राज्य सरकार पर्याप्त समझती है, उन्हें अभिलिखित नहीं कर लिया जाता, तब तक ऐसी अधिसूचना नहीं निकाली जाएगी। जब तक कि प्रतिकूल साबित न कर दिया जाए, ऐसे हर अभिलेख के बारे में यह उपधारणा की जाएगी कि वह शुद्ध है :

परन्तु यदि किसी वन-भूमि या बंजर-भूमि की बाबत राज्य सरकार यह समझती है कि ऐसी जाँच और अभिलेख आवश्यक है, किन्तु उनमें इतना समय लगेगा कि इस बीच राज्य सरकार के अधिकार खतरे में पड़ जाएँगे, तो राज्य सरकार ऐसी जाँच और अभिलेख के लम्बित रहने तक ऐसी भूमि को संरक्षित वन घोषित कर सकेगी, किन्तु इससे किन्हीं व्यक्तियों या समुदायों के विद्यमान अधिकार कम या प्रभावित नहीं होंगे।

टिप्पणी—इस धारा में उन भूमियों का जो संरक्षित वन बनायी जा सकती हैं तथा संरक्षित वन बनाने की प्रक्रिया का वर्णन है। धारा २९ (१) में उन भूमियों का वर्णन है जो संरक्षित वन बनायी जा सकती हैं। उस वर्णन से स्पष्ट है कि जो भूमियाँ आरक्षित वन बनायी जा सकती हैं वही संरक्षित वन भी बनायी जा सकती हैं। तब यह प्रश्न स्वाभाविक है कि फिर वे संरक्षित क्यों बनायी गयीं? इसका एक कारण तो यह था कि जिन वनों पर ग्रामवासियों के अधिकारों का भार बहुत अधिक था, उनको आरक्षित वन बनाना लाभप्रद नहीं था। फिर उनको उनके भाग्य पर छोड़ना भी ठीक नहीं था क्योंकि उनकी दशा खराब होती जाती। अतः उन्हें संरक्षित वन बना दिया गया। इसके अतिरिक्त दूसरा कारण यह था कि आरक्षित वन बनाने की प्रक्रिया जटिल तथा बहुत समय तथा धन लगाने वाली है। वनों के संरक्षण के प्रारम्भिक काल में जब सरकार यह निश्चित न कर पाई कि कितने वन को आरक्षित किया जाए तो उसने महत्वपूर्ण तथा कम भार वाले वनों को आरक्षित वन बनाया और शेष को संरक्षित वन। यह वास्तव में, जैसा कि १८९४ की वन नीति में कहा गया है, एक अनन्तिम (provisional) व्यवस्था थी। इस प्रकार संरक्षित वन बनाने का एक उद्देश्य तो यह था कि आरक्षित वन के बाहर सरकार के वन और बंजर-भूमियों के ह्रास तथा विनाश को रोकना और दूसरा, आरक्षित वन बनाने में लगने वाले धन और समय को बचाना।

धारा २९(३) में संरक्षित वन गठित करने की प्रक्रिया सम्बन्धी निर्देश है। इसके अध्ययन से स्पष्ट है कि संरक्षित वन बनाने की प्रक्रिया का वर्णन बहुत संक्षिप्त है। इसका कारण यह है कि संरक्षित वन का गठन ही एक अनन्तिम तथा अन्तःकालीन (interim) व्यवस्था है। अतः ग्रामवासियों के अधिकारों के सम्बन्ध में कोई स्थायी विनिश्चय तो करना नहीं होता; उनमें परिवर्तन सम्भव है। इसीलिए भारतीय वन अधिनियम में संरक्षित वन गठित करने की प्रक्रिया का निश्चित तथा स्पष्ट वर्णन भी नहीं है। धारा २९(३) में केवल यही लिखा है कि संरक्षित वन बनाने की अधिसूचना तब तक नहीं निकाली जाएगी जब तक अधिसूचना में समाविष्ट वन-भूमि या बंजर-भूमि में या उन पर सरकार या प्राइवेट व्यक्तियों के अधिकारों के स्वरूप और विस्तार की जाँच नहीं कर ली जाती और सर्वेक्षण या बन्दोबस्त अभिलेख में या अन्य किसी रीति से, जैसी राज्य सरकार पर्याप्त समझती है, उन्हें अभिलिखित नहीं कर लिया जाता। परन्तु यदि किसी वन-भूमि या बंजर-भूमि की बाबत राज्य सरकार यह समझती है कि जाँच करने और अभिलेख बनाने में इतना समय लग जायगा कि इस बीच राज्य सरकार के अधिकार खतरे में पड़ जाएँगे तो राज्य सरकार ऐसी जाँच और अभिलेख के लम्बित रहने तक ऐसी भूमि को संरक्षित वन घोषित कर सकती है। ऐसा करते समय यह सुनिश्चित करना पड़ता है कि किन्हीं व्यक्तियों या समुदायों के विद्यमान अधिकार कम या प्रभावित न हों। सारांश यह है कि राज्य-सरकार कम व्यय में एक साधारण-सा सर्वे और अधिकारों की जाँच करवा कर

राजपत्र में अधिसूचना द्वारा संरक्षित वन घोषित कर देती है।

धारा ३०—राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा—

(क) संरक्षित वन में के किन्हीं वृक्षों या वृक्षों के वर्ग को अधिसूचना द्वारा नियत तारीख से आरक्षित घोषित कर सकेगी;

(ख) यह घोषित कर सकेगी कि अधिसूचना में विनिर्दिष्ट ऐसे वन का प्रभाग तीस वर्ष से अनधिक ऐसी कालावधि के लिए, जैसी राज्य सरकार उचित समझे, बन्द रहेगा और ऐसे प्रभाग पर प्राइवेट व्यक्तियों के अधिकार, यदि कोई हों, ऐसी अवधि के दौरान निलम्बित रहेंगे, परन्तु यह तभी होगा जब कि ऐसे वन का शेष भाग इस प्रकार बन्द किए गए प्रभाग में निलम्बित अधिकारों के सम्यक् प्रयोग के लिए पर्याप्त और युक्तियुक्त रूप से सुविधाजनक स्थान में हो; या

(ग) ऐसे किसी वन में पत्थर की खुदाई करने या चूने या लकड़ी के कोयले को फूँकने या ऐसे किसी वन में वन-उपज का संग्रहण करने या उस पर कोई विनिर्माण प्रक्रिया करने या उसे हटाने और खेती, भवन निर्माण, पशुओं के गोल रखने या किसी अन्य प्रयोजन के लिए किसी ऐसे वन में कोई भूमि तोड़ना या साफ करना यथापूर्वोक्त नियत तारीख से प्रतिषिद्ध कर सकेगी।

धारा ३१—कलक्टर धारा ३० के अधीन निकाली गई हर अधिसूचना का स्थानीय जनभाषा में अनुवाद अधिसूचना में समाविष्ट वन के आसपास वाले हर नगर और ग्राम में सहजदृश्य स्थान पर लगवाएगा।

टिप्पणी—वन को केवल संरक्षित घोषित करने से हा उसका संरक्षण नहीं हो सकता क्योंकि चुनी हुई महत्वपूर्ण वृक्षों की सीमित संख्या में से लगातार वृक्ष कटने से वह प्रजाति नष्ट और अनियंत्रित तथा लगातार भारी चराई से वन का अवह्रास हो सकता है। इसके अतिरिक्त कृषि के लिए लगातार भूमि साफ किए जाने से वन ही नष्ट हो सकता है। इसलिए यह आवश्यक है कि वृक्षों को आरक्षित बनाने, वन को बन्द करने तथा वन उपज लेने आदि को प्रतिषिद्ध करने की शक्ति सरकार को दी जाए।धारा ३० में यही शक्तियाँ राज्य सरकार को दी गई हैं। इस धारा के खण्ड (क) में 'अधिसूचना द्वारा नियत तारीख से' पद बहुत महत्वपूर्ण है। इससे स्पष्ट है कि वृक्षों का आरक्षण किसी नियत तारीख से होना चाहिए और वह तारीख अधिसूचना में उल्लिखित होनी चाहिए। **मोसलेम सरकार बनाम सम्राट वाद** (ए० आई० आर० १९२७ कलकत्ता ५१६) में अभिनिर्धारित किया गया कि जब धारा ३० (क) के अधीन निकाली गयी अधिसूचना उस तारीख को नियत नहीं करती जिससे वृक्षों का कोई वर्ग आरक्षित किया जाना है तो वह अधिसूचना विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण है और ऐसी अधिसूचना द्वारा आरक्षित वृक्षों के काटने के लिए धारा ३३ के अधीन दोषसिद्धि अवैध है।

राजपत्र में निकाली गई प्रत्येक अधिसूचना को पढ़ने की ग्रामवासियों से अपेक्षा नहीं की जा सकती। अतः धारा ३१ के अधीन कलक्टर को ऐसी हर अधि-

सूचना का स्थानीय जनभाषा में अनुवाद अधिसूचना में समाविष्ट वन के पास वाले हर नगर और ग्राम में सहज दृश्य स्थान पर लगवाना चाहिए।

धारा ३२—राज्य सरकार निम्नलिखित बातों के विनियमन के लिए नियम बना सकेगी, अर्थात्—

(क) वृक्षों और इमारती लकड़ी की कटाई, चिराई, संपरिवर्तित करना और हटाना तथा संरक्षित वनों की वन-उपज का संग्रहण करना, विनिर्माण करना तथा उसका हटाना,

(ख) संरक्षित वनों के सामीप्य के नगरों और ग्रामों के निवासियों को अपने प्रयोग के लिए वृक्ष, इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज लेने के हेतु अनुज्ञप्तियाँ अनुदत्त करना और ऐसे व्यक्तियों द्वारा ऐसी अनुज्ञप्तियों का पेश और वापस किया जाना,

(ग) व्यापार के प्रयोजनों के लिए ऐसे वनों में से वृक्षों या इमारती लकड़ी या वन-उपज को गिराने या हटाने वाले व्यक्तियों को अनुज्ञप्तियाँ प्रदान करना और ऐसे व्यक्तियों द्वारा ऐसी अनुज्ञप्तियाँ पेश और वापस किया जाना,

(घ) खण्ड (ख) और (ग) में वर्णित व्यक्तियों द्वारा ऐसे वृक्षों को काटने या इमारती लकड़ी या वन-उपज को संगृहीत करने और हटाने की अनुज्ञा के लिए किए जाने वाले संदाय, यदि कोई हों,

(ङ) ऐसे वृक्षों, इमारती लकड़ी और उपज के बारे में उनके द्वारा किए जाने वाले अन्य संदाय, यदि कोई हों, और वे स्थान जहाँ ऐसा संदाय किया जाएगा,

(च) ऐसे वनों में से होकर जाने वाली वन-उपज की परीक्षा,

(छ) ऐसे वनों में खेती या अन्य प्रयोजनों के लिए भूमि की कटाई-सफाई और भूमि तोड़ना,

(ज) ऐसे वनों में पड़ी इमारती लकड़ी और धारा ३० के अधीन आरक्षित वृक्षों का आग से संरक्षण,

(झ) ऐसे वनों में घास काटना और ढोर चराना,

(ञ) ऐसे वनों में शिकार खेलना, गोली चलाना, मछली पकड़ना, जल विषैला करना और पाश या जाल बिछाना और ऐसे वनों के उन क्षेत्रों में जिनमें हाथी परिरक्षण अधिनियम, १८७९ प्रवृत्त नहीं है, हाथियों का वध करना या पकड़ना,

(ट) धारा ३० के अधीन वन के किसी बन्द प्रभाग का संरक्षण और प्रबन्ध, और

(ठ) धारा २९ में, निर्देशित अधिकारों का प्रयोग।

टिप्पणी—इस धारा में राज्य सरकार को संरक्षित वनों के बारे में कतिपय निर्दिष्ट विषयों पर नियम बनाने की शक्ति दी गई है। अतः सरकार केवल उन्हीं विषयों के बारे में नियम बना सकती है। यदि सरकार किसी ऐसे विषय के बारे में

नियम बनाती है जिसका उल्लेख धारा में नहीं है या जो धारा में उल्लिखित कार्यों के अन्तर्गत नहीं आता तो वह नियम अधिकारातीत होता है। **राज्य सरकार बनाम हीरालाल वाद (१९५३ इलाहाबाद लॉ जरनल पृष्ठ २३०)** के निर्णय में कहा गया कि धारा ३२(छ) के अनुसार सरकार संरक्षित वनों में खेती या अन्य प्रयोजनों के लिए भूमि की कटाई-सफाई और भूमि तोड़ने को विनियमित करने के लिए नियम बना सकती है। परन्तु मकान का निर्माण भूमि की कटाई-सफाई और भूमि तोड़ने के अन्तर्गत नहीं आता। अतः यदि राज्य सरकार ने बिना अनुज्ञा संरक्षित वन में मकान बनाना नियम बनाकर प्रतिषिद्ध किया है तो वह नियम अधिकारातीत है।

नियम बनाते समय सरकार को यह ध्यान रखना चाहिए कि उनसे नागरिकों में भेदभाव न हो। धारा ३२(ग) के अनुसार राज्य सरकार को व्यापार के प्रयोजनों के लिए वन-उपज हटाने या निकालने के लिए अनुज्ञप्तियाँ प्रदान करने के सम्बन्ध में नियम बनाने की शक्ति है परन्तु इसके अधीन एकाधिकार देने की शक्ति सरकार को नहीं है क्योंकि एकाधिकार देने से अन्य व्यक्तियों को जो व्यापार के लिए वन-उपज निकालना चाहें, एकाधिकार प्राप्त व्यक्ति से वन-उपज लेनी पड़ेगी और वह रायल्टी से अधिक संदाय माँगेगा। इस प्रकार एकाधिकार से नागरिकों में भेदभाव होता है और यह संविधान के अनुच्छेद १९(६) के प्रतिकूल है। अतः **सुरेन्द्रचन्द्र दास बनाम संघ राज्य क्षेत्र त्रिपुरा वाद** (ए० आई० आर० १९६३ त्रिपुरा १४) में अभिनिर्धारित किया गया कि धारा ३२(ग) के अधीन एकाधिकार देने का नियम सरकार नहीं बना सकती।

एक नीलाम के समय मध्य प्रदेश सरकार ने धारा ३२ के अधीन बनाए नियमों के अनुसार यह सूचित किया कि सरकारी वनों से ईंधन तथा महुआ संग्रहण करने के विशेषाधिकार के लिए सरकार ठेकेदारों पर बोली का ७.५% अधिभार प्रभारित करेगी। स्पष्ट ही है कि अधिभार सरकार तभी ले सकती है जब कोई ठेकेदार विशेषाधिकार का उपयोग करे। यदि ठेकेदार विशेषाधिकार का उपयोग नहीं करना चाहता तो उसे अधिभार देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। **सुराजदीन लक्ष्मण लाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य वाद** (ए० आई० आर० १९६० म० प्र० १२९) में अभिनिर्धारित किया गया कि धारा ३२ जिसके अधीन नियम बनाए जाते हैं सरकार को सब व्यक्तियों से इस प्रकार एक सामान्य उद्ग्रहण की शक्ति नहीं देती।

धारा ३३—जो कोई व्यक्ति निम्नलिखित अपराधों में से कोई अपराध करेगा, अर्थात्—

(क) धारा ३० के अधीन आरक्षित किसी वृक्ष को गिराएगा, परितक्षण करेगा, छाँटेगा, छेवेगा या जलाएगा या ऐसे किसी वृक्ष की छाल उतार डालेगा या पत्तियाँ तोड़ डालेगा या उसे अन्यथा नुकसान पहुँचाएगा,

(ख) धारा ३० के अधीन वाले किसी प्रतिषेध के प्रतिकूल पत्थर की खुदाई

करेगा या चूने या लकड़ी का कोयला फूँकेगा या किसी वन-उपज का संग्रहण करेगा, उससे कोई विनिर्माण प्रक्रिया चलाएगा, या उसे हटाएगा,

(ग) किसी संरक्षित वन में, धारा ३० के अधीन वाले किसी प्रतिषेध के प्रतिकूल, किसी भूमि को खेती या किसी अन्य प्रयोजन के लिए तोड़ेगा या साफ करेगा,

(घ) ऐसे वन को आग लगाएगा, या धारा ३० के अधीन आरक्षित किसी वृक्ष तक, चाहे वह खड़ा हो, गिर गया हो या गिराया गया हो, या ऐसे वन के बन्द किए गए किसी प्रभाग तक फैल जाने से रोकने के लिए युक्तियुक्त-पूर्ण पूर्वावधानी बरते बिना आग जलाएगा,

(ङ) ऐसे किसी वृक्ष या बन्द प्रभाग के सामीप्य में अपने द्वारा जलाई गई किसी आग को जलता छोड़ देगा,

(च) किसी वृक्ष को इस प्रकार गिराएगा या किसी इमारती लकड़ी को इस प्रकार खींचेगा कि यथापूर्वोक्त रूप में आरक्षित किसी वृक्ष को नुकसान पहुँचता है,

(छ) पशुओं को ऐसे किसी वृक्ष को नुकसान पहुंचाने देगा,

(ज) धारा ३२ के अधीन बनाए गए किन्हीं नियमों का अतिलंघन करेगा, वह उस अवधि के लिए कारावास से, जो छह मास तक की हो सकेगी, या जुर्माने से जो पाँच सौ रुपये तक का हो सकेगा, या दोनों से, दण्डनीय होगा।

(२) जब कभी संरक्षित वन में जानबूझ कर या घोर उपेक्षा द्वारा आग लगाई जाती है, तब राज्य सरकार, इस बात के होते हुए भी कि इस धारा के अधीन कोई शास्ति लगाई गई है, निदेश दे सकेगी कि ऐसे वन में या उसके किसी प्रभाग में चरागाह या वन-उपज के किसी अधिकार का प्रयोग उतनी अवधि के लिए, जितनी वह ठीक समझती है, निलम्बित रहेगा।

संशोधन

बिहार संशोधन—१९३५ के बिहार और उड़ीसा अधिनियम सं० ९ की धारा ३ के द्वारा उपधारा (२) के स्थान पर नीचे लिखी नई धारा प्रतिस्थापित की गई है :

(२) जब कभी किसी संरक्षित वन में—

(क) जानबूझ कर या घोर उपेक्षा द्वारा आग लगाई जाती है, या

(ख) वन-उपज की चोरी होती है और ऐसी चोरी, राज्य सरकार की राय में, इतने बड़े पैमाने पर है कि उससे ऐसे वन की भविष्य प्राप्ति को खतरा होना सम्भाव्य है,

तब राज्य सरकार, इस बात के होते हुए भी कि खण्ड (क) या खण्ड (ख) में निर्दिष्ट किसी कार्य के लिए इस धारा के अधीन या किसी अन्य विधि के अधीन कोई शास्ति लगाई गयी है, निदेश दे सकेगी कि ऐसे वन या उसके किसी प्रभाग में चरागाह या वन-उपज के किसी अधिकार का प्रयोग—

(i) खण्ड (क) में वर्णित परिस्थितियों में, उतनी कालावधि के लिए जितनी वह ठीक समझती है,

(ii) खण्ड (ख) में वर्णित परिस्थितियों में, उस कालावधि के लिए जो चार वर्ष से अनधिक हो,

निलम्बित रहेगा।

मध्य प्रदेश संशोधन—१९६५ के मध्य प्रदेश अधिनियम सं० ९ की धारा ५ के द्वारा मध्यप्रदेश सरकार ने मूल अधिनियम की धारा ३३ में नीचे लिखे संशोधन किए हैं :

धारा ३३ की उपधारा (१) में—

(i) खण्ड (क) में 'ऐसे किसी वृक्ष' शब्दों के स्थान पर 'ऐसे किसी वृक्ष या वन-उपज' शब्द प्रतिस्थापित किए जाएँगे;

(ii) खण्ड (ग) के स्थान पर निम्नलिखित खण्ड प्रतिस्थापित किया जाएगा, अर्थात्—

(ग) किसी संरक्षित वन में, धारा ३० के अधीन वाले किसी प्रतिषेध के प्रतिकूल, किसी भूमि को खेती या अन्य किसी प्रयोजन के लिए साफ करेगा या तोड़ेगा या किसी भूमि में खेती करता है या अन्य किसी रीति से खेती करने का प्रयत्न करता है;

(iii) खण्ड (च) में 'खींचेगा' शब्द के स्थान पर 'हटाएगा' शब्द प्रतिस्थापित किया जाएगा; और

(iv) 'जो छह मास तक की हो सकेगी या जुर्माने से जो पाँच सौ रुपए तक का हो सकेगा' शब्दों के स्थान पर 'जो एक साल तक की हो सकेगी और जुर्माने से जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा' शब्दों को प्रतिस्थापित किया जाएगा।

टिप्पणी—धारा ३३ में उन कार्यों का उल्लेख है जो संरक्षित वन में दण्डनीय हैं। उसमें कार्यों के साथ-साथ धारा ३० के अधीन निकाली गई अधिसूचना या धारा ३२ के अधीन बनाए गए नियमों के उल्लंघन का भी उल्लेख है। ये दोनों धाराएँ भी संरक्षित वन से सम्बन्धित हैं। अतः किसी कार्य को दण्डनीय साबित करने के लिए सबसे पहले यह साबित करना चाहिए कि अपराध-स्थल संरक्षित वन में है। किसी वन को संरक्षित वन साबित करने के लिए उसके सम्बन्ध में धारा २९ के अधीन निकाली गयी अधिसूचना प्रस्तुत करनी पड़ती है। यद्यपि धारा २९ के अधीन अधिसूचना निकल जाने से वन तो संरक्षित वन घोषित हो जाता है तथापि उसमें किया गया कोई कार्य अपराध तभी होता है जब वह धारा ३० के अधीन निकाली गई अधिसूचना में घोषित बातों का या धारा ३२ के अधीन बनाए गए नियमों का उल्लंघन करता हो। धारा ३० की अधिसूचना के बारे में धारा ३१ के अधीन उसका अनुवाद संरक्षित वन के पड़ोस के प्रत्येक नगर और ग्राम में सहज दृश्य स्थानों में लगवाया जाना अत्यन्त आवश्यक है। यदि ऐसा न किया जाए तो अधिसूचना लगभग निष्फल

हो जाती है और उस अधिसूचना के उल्लंघन में किसी कार्य के लिए अभियुक्त को धारा ३३ के अधीन दण्ड नहीं दिया जा सकता। **चन्दरमा प्रसाद मिश्रा बनाम बिहार राज्य वाद [१९६३ (१) क्रि० एल० जे० पटना १३४]** में अभिनिर्धारित किया गया कि जहाँ अभियुक्त संरक्षित वन में धारा ३० के अधीन निकाली गयी अधिसूचना द्वारा प्रतिषिद्ध भूमि की तुड़ाई या सफाई के लिए आरोपित है तो अभियोजक को साबित करना चाहिए कि धारा २९ तथा ३० के अधीन अधिसूचनाएँ निकाली गईं और धारा ३० के अधीन निकाली गयी अधिसूचना का स्थानीय जनभाषा में अनुवाद धारा ३१ में उपबन्धित रीति से कलक्टर द्वारा संरक्षित वन के पड़ोस के हर नगर और ग्राम में सहजदृश्य स्थानों में चिपकवाया गया। इसलिए जहाँ न तो ऐसा साक्ष्य हो और न निचले न्यायालय के निर्णय में ऐसा कोई निष्कर्ष है कि अभियुक्त को धारा २९ तथा ३० के अधीन निकाली गयी अधिसूचनाओं का ज्ञान था, वहाँ अभियुक्त की धारा ३३ (१) (ग) के अधीन दोषसिद्धि दूषित हो जाएगी और अपास्तनीय होगी। ऐसा ही निर्णय **जानू खाँ बनाम राज्य सरकार वाद (ए० आई० आर० १९६० पटना २१३)**, **बिहार राज्य बनाम मुन्शी कहार वाद (ए० आई० आर० १९६३ पटना १९५)** तथा **साधूपात्र तथा अन्य बनाम उड़ीसा राज्य (१९७० कटक एल० टी० ३९५)** में दिया गया है। इस सम्बन्ध में यह भी ध्यान रखने योग्य बात है कि अधिसूचनाएँ लोक दस्तावेज हैं और साक्ष्य अधिनियम की धारा ७८ (सपठित धारा ६५) के अनुसार उनकी प्रति राज्य सरकार के उस विभाग के मुख्य पदाधिकारी द्वारा प्रमाणित होना चाहिए जिसने उन्हें निकाला है। **जानू खाँ बनाम राज्य सरकार वाद (ए० आई० आर० १९६० पटना २१३)** में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अधिसूचना की प्रमाणित प्रति साक्ष्य के रूप में ली जा सकती है। ऐसी प्रति उस विभाग, जिसने अधिसूचना निकाली थी, के अध्यक्ष द्वारा प्रमाणित की जानी चाहिए। यह भी साक्ष्य में लिया जा सकता है यदि राजपत्र जिसमें अधिसूचना का सरकार के आदेश के अधीन छापा जाना तात्पर्यित है, न्यायालय के निरीक्षण के लिए पेश किया जाए। अतः धारा २९ तथा धारा ३० की अधिसूचनाओं को राज्य सरकार के वन विभाग के अध्यक्ष द्वारा और धारा ३१ के अधीन अनुवाद को कलक्टर द्वारा प्रमाणित करवाना चाहिए; अन्यथा जैसा ऊपर लिखा है कि, अधिसूचना/अनुवाद की मूल प्रति न्यायालय को दिखाकर प्रमाणित प्रति अभिलेख में देनी चाहिए। सारांश यह है कि धारा ३३ के अधीन किसी अभियुक्त को दण्डित कराने के लिए अभियोग सम्बन्धी अपेक्षित साक्ष्य के अतिरिक्त निम्नलिखित साक्ष्य भी अवश्य प्रस्तुत किया जाना चाहिए.

(क) धारा ३० के प्रतिषेध के उल्लंघन में—(i) धारा २९ के अधीन निकाली गयी अधिसूचना की मूल तथा प्रमाणित प्रति; (ii) अपराध-स्थल का उस अधिसूचना में समाविष्ट भूमि के अन्तर्गत होने का प्रमाण; (iii) धारा ३० के अधीन निकाली गई अधिसूचना की मूल तथा प्रमाणित प्रति; और (iv) धारा ३० की अधि-

सूचना के अनुवाद की प्रमाणित प्रति और उसके धारा ३१ में उपबन्धित रीति से चिपकवाए जाने का प्रमाण।

(ख) धारा ३२ के नियमों के उल्लंघन में—(i) धारा २९ के अधीन निकाली गयी अधिसूचना की मूल तथा प्रमाणित प्रति; (ii) अपराध-स्थल के उस अधिसूचना में समाविष्ट भूमि के अन्तर्गत होने का प्रमाण; और (iii) धारा ३२ के अधीन निकाली गई अधिसूचना की मूल तथा प्रमाणित प्रति।

धारा ३३ (१) (क)—इस धारा के अनुसार धारा ३० के अधीन आरक्षित किसी वृक्ष का गिराना, परितक्षण करना, छाँटना, छेवना, जलाना, उसकी छाल उतारना, पत्तियाँ तोड़ना या अन्य किसी प्रकार का नुकसान दण्डनीय अपराध है। स्पष्ट ही है कि ये कार्य अपराध तभी हो सकते हैं जब वे धारा २९ के अधीन गठित संरक्षित वन में स्थित आरक्षित वृक्ष पर किए गए हों। **सम्राट बनाम शेषागिरी राव विट्ठल राव वाद** (७ मुम्बई एल० आर० ४६२) में अभिनिर्धारित किया गया कि अपनी जोत भूमि, जिसका वह लगान देता है, पर स्थित आरक्षित वृक्ष के लिए अभियुक्त धारा ३३ (१) (क) के अधीन दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता क्योंकि वह भूमि, भूमि के उन वर्गों के अन्दर नहीं आती जिनको राज्य सरकार को धारा २९ के अधीन प्रदत्त शक्तियाँ लागू होती हैं। **रूपदेव बनाम सम्राट वाद** (११ ए० एल० जे० ३४०) में अभिनिर्धारित किया गया है कि जब कोई व्यक्ति संरक्षित वन में प्रवेश करके आरक्षित वृक्ष गिराता है तो वह वृक्ष गिराने के लिए वन अधिनियम की धारा ३३ (१) (क) और आपराधिक अतिचार के लिए दण्ड संहिता की धारा ४४७—दोनों के अधीन दण्डित नहीं किया जा सकता क्योंकि पहले अपराध में दूसरा अपराध आवश्यक रूप से समाविष्ट है। **जयलाल बनाम सरकार वाद** [१९५५ एन० यू० सी० (पंजाब) १३८१] के निर्णय में कहा गया है कि धारा ३३ उन्हीं व्यक्तियों पर लागू होती है जो अपराध करते हैं या अपराध किए जाने का दुष्प्रेरण (abet) करते हैं। वह उन व्यक्तियों पर लागू नहीं होती जो फर्म के सदस्य हों और यह न जानते हों कि किसी व्यक्तिविशेष ने उस वन में, जो फर्म ने सरकार से काम करने के लिए लिया था, क्या किया। यदि उसने प्रतिकर देने के लिए लिखित कथन भी दिया हो तो भी वह अपराध स्वयं करने या अपराध किए जाने का दुष्प्रेरण करने की संस्वीकृति नहीं है। धारा ३३ (१) (क) के अधीन गिरफ्तार किया गया व्यक्ति, मजिस्ट्रेट के समक्ष उपसंजात (appear) होने का बन्धपत्र निष्पादित कर देने पर, निर्मुक्त किया जा सकता है। यह अपराध जमानतीय है। **अब्दुल अजीज बनाम त्रिपुरा संघ राज्य क्षेत्र वाद** [१९६३ (१) क्रि० एल० जे० ५५८] में अभिनिर्धारित किया गया है कि इस धारा के अधीन अपराध करते हुए व्यक्ति को प्लान्टेशन चौकीदार किसी वारण्ट के बिना गिरफ्तार कर सकता है और गिरफ्तार किए व्यक्ति को प्रतिरक्षा का कोई अधिकार नहीं है।

धारा ३३ (१) (ख)—इस धारा के अनुसार धारा ३० के अधीन निकाली

गई अधिसूचना में घोषित किए गए किसी प्रतिषेध के उल्लंघन में संरक्षित वन में पत्थर खोदना, उसमें चूना या लकड़ी का कोयला फूंकना या किसी वन-उपज का संग्रहण करना, उससे कोई विनिर्माण प्रक्रिया चलाना या उसे हटाना दण्डनीय है।

धारा ३३ (१) (ग)—इस धारा के अनुसार धारा ३० के अधीन निकाली गई अधिसूचना में घोषित किए गए किसी प्रतिषेध के उल्लंघन में किसी संरक्षित वन में किसी भूमि को खेती या अन्य प्रयोजन के लिए तोड़ना या साफ करना दण्डनीय अपराध है। इस धारा का पद, 'धारा ३० के अधीन वाले प्रतिषेध के प्रतिकूल', बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसका अर्थ यह है कि धारा ३० के अधीन अधिसूचना निकलने के बाद यदि पहली बार भूमि तोड़ी जाए तो वह दण्डनीय है। **बिहार सरकार बनाम मुन्शी कहार वाद** (ए० आई० आर० १९६३ पटना १९५) में अभिनिर्धारित किया गया है कि धारा ३३ (१) (ग) में पद 'किसी भूमि को खेती या अन्य प्रयोजन के लिए तोड़ेगा या साफ करेगा' से धारा ३० की अधिसूचना द्वारा प्रतिषिद्ध कार्य अभिप्रेत है और इसका विस्तार उस भूमि पर खेती करने के प्रतिषेध पर नहीं है जो धारा ३० की अधिसूचना निकाले जाने से पूर्व ही तोड़ ली गई थी और खेती में लाई जा चुकी थी। **थेर्पासिंह बनाम सम्राट वाद** (ए० आई० आर० १९२७ इलाहाबाद ७६७) में अभिनिर्धारित किया गया है कि वन अधिनियम की धारा ३० में भूमि तोड़ना या साफ करना दोनों शब्द लिखे हैं। यदि अधिसूचना में भूल से केवल 'भूमि तोड़ना' लिखा है और 'साफ करना' शब्द छूट गया है तो अभियुक्त को भूमि साफ करने के लिए दण्डित नहीं किया जा सकता।

धारा ३० (१) (घ)—इस धारा के अनुसार (i) संरक्षित वन को आग लगाना, और (ii) धारा ३० के अधीन आरक्षित किसी वृक्ष तक, चाहे वह खड़ा हो, गिर गया हो या गिराया गया हो या संरक्षित वन के बन्द किए गए किसी प्रभाग तक फैल जाने से रोकने के लिए युक्तियुक्त-पूर्ण पूर्वावधानी बरते बिना आग जलाना, दण्डनीय है। इनमें से प्रथम तो प्रत्यक्ष कार्य है और उसे साबित करना पड़ता है। दूसरे के सम्बन्ध में संरक्षित वनों के बाहर आग जलाने सम्बन्धी सरकार द्वारा बनाए गए नियमों का अस्तित्व, उनका विज्ञापन तथा उनका उल्लंघन करते हुए आग जलाना साबित करना पड़ता है।

धारा ३३ (१) (ङ)—इस धारा के अनुसार संरक्षित वन में आरक्षित वृक्ष या उनके किसी बन्द प्रभाग के समीप जलाई गई किसी आग को जलता छोड़ देना भी दण्डनीय अपराध है।

धारा ३३ (१) (च)—इस धारा के अनुसार अपने अधिकारों के प्रयोग में गिराये जा रहे वृक्ष से या उसकी इमारती लकड़ी को खींचने से संरक्षित वन के किसी आरक्षित वृक्ष को नुकसान पहुँचाना दण्डनीय अपराध है।

धारा ३३ (१) (छ)—इस धारा के अनुसार अपने पशुओं को संरक्षित वन में किसी आरक्षित वृक्ष को नुकसान पहुँचाने देना दण्डनीय अपराध है।

धारा ३३ (१) (ज)—इस धारा के अनुसार धारा ३२ के अधीन बनाए गए नियमों का अतिलंघन दण्डनीय है। अतः सर्वप्रथम धारा ३२ के अधीन बनाए गए नियमों का अस्तित्व तथा सम्बन्धित व्यक्तियों को उनकी जानकारी साबित करने के बाद उनका अतिलंघन साबित करना चाहिए।

दण्ड—धारा ३३ (१) के अनुसार ऊपर वर्णित अपराधों के लिए दोषसिद्ध होने पर अभियुक्त को उस अवधि के लिए कारावास से, जो छह मास तक की हो सकती है, या जुमाने से जो पाँच सौ रुपए तक हो सकता है या दोनों से दण्डित किया जा सकता है। सब राज्यों में दण्ड की सीमा वही है जो मूल अधिनियम में है परन्तु मध्य प्रदेश सरकार ने १९६५ के मध्य प्रदेश अधिनियम संख्या ९ के द्वारा कारावास की अधिकतम अवधि एक वर्ष और जुर्माने की अधिकतम सीमा एक हजार रुपए कर दी है। इस धारा में आरक्षित वन से सम्बन्धित धारा २६(१) के समान प्रतिकर दिलाने का उल्लेख नहीं है। **सम्राट बनाम करियाना हुलियन्ना वाद (८ मुम्बई लॉ जरनल ९८७)** में अभिनिर्धारित किया गया कि संरक्षित वनों के बारे में नुकसानों के लिए प्रतिकर अधिनिर्णीत करने का न तो अधिनियम में और न उसके अधीन बने नियमों में कोई उपबन्ध है। अतः संरक्षित वनों से सम्बन्धित अपराधों के लिए प्रतिकर न्यायालय नहीं दिला सकता।

धारा ३३ (२)—इस धारा के अनुसार जब कभी संरक्षित वन में जानबूझकर या घोर उपेक्षा द्वारा आग लगाई जाती है तब राज्य सरकार, इस बात के होते हुए भी कि धारा ३३ (१) के अधीन कोई शास्ति लगाई गई है, निदेश दे सकती है कि ऐसे वन या उसके किसी प्रभाग में चरागाह या वन-उपज के किसी अधिकार का प्रयोग उतनी अवधि के लिए, जितनी वह ठीक समझे, निलम्बित रहेगा। बिहार सरकार ने इस शक्ति को आग के अतिरिक्त वन-उपज की विस्तृत चोरी के लिए भी लगा दिया है पर चोरी की घटनाओं के कारण अधिकारों के प्रयोग का निलम्बन चार वर्ष से अनधिक कालावधि के लिए हो सकता है।

धारा ३४—**इस अध्याय की किसी बात के बाबत यह नहीं समझा जाएगा कि वह ऐसे किसी कार्य का प्रतिषेध करती है जो वन अधिकारी की लिखित अनुज्ञा से या धारा ३२ के अधीन बनाए गए नियमों के अनुसार किया गया है या जो धारा २९ के अधीन अभिलिखित किसी अधिकार के प्रयोग में धारा ३० के अधीन बन्द किए गए किसी वन के प्रभाग के विषय में, या किन्हीं उन अधिकारों के विषय में जिनका प्रयोग धारा ३३ के अधीन निलम्बित किया गया है, किए जाने के अलावा किया गया है।**

संशोधन

मध्य प्रदेश संशोधन—मध्य प्रदेश सरकार ने १९६५ के मध्य प्रदेश अधिनियम संख्या ९ की धारा ६ के द्वारा भारतीय वन अधिनियम १९२७ की धारा ३४ के बाद नीचे लिखी नई धारा जोड़ दी है :

३४-क—(१) राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा निदेश दे सकेगी कि इस अधिनियम के अधीन संरक्षित वन या उसका कोई प्रभाग, उस निमित्त ऐसी अधिसूचना द्वारा नियत तारीख से संरक्षित वन नहीं रह जाएगा।

(२) इस प्रकार नियत तारीख से, ऐसा वन या उसका प्रभाग संरक्षित वन नहीं रह जाएगा किन्तु उसमें वे अधिकार, यदि कोई हों, जो निर्वापित हो गए हैं, ऐसे न रहने के परिणामस्वरूप पुनरुज्जीवित नहीं हो जाएँगे।

टिप्पणी—मूल अधिनियम की धारा ३४ में उन परिस्थितियों का वर्णन है जिसमें संरक्षित वन में किए गए कार्य दण्डनीय नहीं होते—(i) वन अधिकारी की लिखित अनुज्ञा से किए गए कार्य; (ii) धारा ३२ के अधीन बनाए गए नियमों के अनुसार किए गए कार्य; और (iii) धारा २९ के अधीन अभिलिखित किसी अधिकार का प्रयोग यदि वह धारा ३० के अधीन बन्द किए गए किसी प्रभाग से सम्बन्धित न हो; या जिनका प्रयोग धारा ३३ के अधीन निलम्बित न किया हो।

मूल अधिनियम में यह घोषित करने की, कि अमुक वन संरक्षित वन नहीं रहा, शक्ति नहीं है परन्तु मध्य प्रदेश सरकार ने एक संशोधन करके यह शक्ति ले ली है।

आरक्षित वन तथा संरक्षित वन में अन्तर

(i) आरक्षित वन उस वन-भूमि या बंजर-भूमि को बनाया जा सकता है जो सरकार की सम्पत्ति है या जिस पर सरकार का साम्पत्तिक अधिकार है या जिसकी पूरी वन-उपज या उस उपज के किसी भाग की सरकार हकदार है। संरक्षित वन भी ऐसी ही भूमियों से बनाया जाता है यदि वे किसी आरक्षित वन में समाविष्ट न हों। इस प्रकार संरक्षित वन आरक्षित वन के रूप में गठित किया जा सकता है परन्तु आरक्षित वन संरक्षित वन नहीं बनाया जा सकता।

(ii) आरक्षित वन लगभग दो माह बाद की उस नियत तारीख से बनता है जो धारा २० के अधीन निकाली गई अधिसूचना में लिखी हो। इसके विपरीत संरक्षित वन अधिसूचना की तारीख से ही बन जाता है। इसके लिए कोई तारीख नियत नहीं की जाती।

(iii) आरक्षित वन बनाने की अधिसूचना का स्थानीय जनभाषा में अनुवाद प्रस्थापित आरक्षित वन के पड़ौस में हर नगर और ग्राम में कराना अधिनियम द्वारा अपेक्षित है परन्तु संरक्षित वन के लिए यह आवश्यक नहीं है।

(iv) आरक्षित वन बनाने की अधिसूचना धारा २० के अधीन तब निकाली जाती है जब अधिकारों के सब दावों का निपटारा हो चुका हो, उन आदेशों के विरुद्ध की गई अपीलों का निपटारा हो चुका हो और प्रस्थापित आरक्षित वन में सम्मिलित की जाने वाली प्राइवेट भूमि, यदि कोई हो, का अर्जन हो चुका हो। इसके विपरीत संरक्षित वन बनाने की अधिसूचना धारा २९ के अधीन अधिकारों के दावों की जाँच लम्बित रहते हुए भी निकाली जा सकती है, यदि राज्य सरकार को देर के कारण

अपने अधिकारों के खतरे में पड़ने का भय हो। इस प्रकार जहाँ आरक्षित वन प्राइवेट व्यक्तियों के अधिकारों के दावों का पूर्णरूप से निपटारा किए बिना नहीं बनाया जा सकता, संरक्षित वन कुछ दशाओं में अधिकारों के दावों की जाँच लम्बित रहने पर भी बनाया जा सकता है।

(v) आरक्षित वन में केवल अन्य व्यक्तियों के अधिकारों की जाँच होती है परन्तु संरक्षित वन में सरकार या प्राइवेट व्यक्तियों के अधिकारों की जाँच होती है। आरक्षित वन के सम्बन्ध में यह जाँच बहुत विस्तार से होती है और उन पर किए गए आदेशों को सिविल न्यायालय के आदेशों का बल होता है। इसके विपरीत संरक्षित वन में यह जाँच विस्तृत नहीं होती और न उसे सिविल न्यायालय के निर्णय का बल मिलता है।

(vi) आरक्षित वन बनाने की प्रक्रिया में अधिकारों के दावों पर वन व्यवस्थापन अधिकारी का आदेश या उसके विरुद्ध अपील पर पारित आदेश केवल राज्य सरकार के पुनरीक्षण के अधीन रहते हुए अन्तिम होता है परन्तु संरक्षित वन के सम्बन्ध में अधिकारों के अभिलेख के बारे में केवल यह उपधारणा की जाती है कि वह शुद्ध है जब तक कि प्रतिकूल साबित न कर दिया जाए अर्थात् उसमें परिवर्तन किया जा सकता है।

(vii) आरक्षित वन बनाने की प्रक्रिया में धारा ४ के अधीन अधिसूचना निकाले जाते ही नये अधिकारों के प्रोद्भूत होने पर रोक लग जाती है परन्तु संरक्षित वन में ऐसी व्यवस्था नहीं है।

(viii) आरक्षित वन में अधिकारों के दावे पूर्णतः या भागतः मंजूर या खारिज किए जाते हैं परन्तु संरक्षित वन में वे उसी प्रकार अभिलिखित कर लिए जाते हैं।

(ix) आरक्षित वन में अधिकारों के प्रयोग से अभिप्राप्त इमारती लकड़ी, उस मात्रा के सिवाय जो धारा १४ के अधीन अभिलिखित आदेश में मंजूर की गई हो, बेची या वस्तु विनिमय नहीं की जा सकती परन्तु संरक्षित वन में ऐसा कोई निर्बन्धन नहीं है।

(x) आरक्षित वन में वन सम्पदा का संरक्षण अपनी चरम सीमा पर रहता है। उसमें प्रत्येक कार्य जो विशेष रूप से अनुज्ञात नहीं है, अपराध है। इसके विपरीत, संरक्षित वन में कोई कार्य अपराध नहीं होता जब तक कि वह प्रतिषिद्ध न हो।

(xi) आरक्षित वन में धारा २० के अधीन अधिसूचना निकालने से पहले उसकी सीमाएँ परिनिर्मित सीमा-चिन्हों द्वारा निश्चित कर दी जाती हैं। इसके विपरीत संरक्षित वन में सीमांकन सस्ते ढंग से कर दिया जाता है। उसमें सीमा-चिह्न परिनिर्मित नहीं किए जाते।

(xii) आरक्षित वन में किए गए अपराध संज्ञेय होते हैं अर्थात् उनमें अभियुक्त वारण्ट के बिना गिरफ्तार किया जा सकता है। संरक्षित वन में धारा ३०(ग)

के अधीन प्रतिषिद्ध कार्यों से सम्बन्धित अपराधों से भिन्न अन्य सब अपराध असंज्ञेय होते हैं ।

(xiii) आरक्षित वन में किसी व्यक्ति द्वारा किया अतिचार अपराध है परन्तु संरक्षित वन में यह अपराध नहीं है ।

(xiv) आरक्षित वन में किए गए अपराधों के सम्बन्ध में विचारण न्यायालय कारावास, या जुर्माना या दोनों दण्डों के अतिरिक्त वन को हुए नुकसान के लिए प्रतिकर देने का निदेश दे सकता है । परन्तु संरक्षित वन के अपराधों के सम्बन्ध में प्रतिकर नहीं दिलाया जा सकता ।

अध्याय ५

सरकार की सम्पत्ति से भिन्न वन और भूमियों पर नियंत्रण

वनों के प्रत्यक्ष लाभ और अप्रत्यक्ष महत्त्व के कारण सरकार को उन वनों और बंजर-भूमियों के संरक्षण का भी ध्यान रखना पड़ता है जो सरकार की सम्पत्ति न हों। यदि उनके संरक्षण का ध्यान न रखा जाए तो उनके नष्ट होने के परिणाम-स्वरूप होने वाले मृदाक्षरण तथा बाढ़ों से अनेकों देशवासियों का जीवन सकट में पड़ जाता है। वर्षा ऋतु की अनिष्टकारी बाढ़ें अधिकांशतः सरकारी वनों के बाहर प्राइवेट वनों तथा बंजर-भूमियों के कुप्रबन्ध या दुरुपयोग का परिणाम होती हैं। उनके द्वारा बहाई गयी मिट्टी तथा पत्थर, जलविद्युत् परियोजनाओं में विशाल धनराशि व्यय कर के बनाए गए जलाशयों को भर देते हैं, नहरों की सिंचाई क्षमता कम कर देते हैं और नदियों के तटबन्धों को तोड़ कर कृषि भूमि को नष्ट कर देते हैं। सारांश यह है कि आरक्षित तथा संरक्षित वनों के बाहर प्राइवेट वन और बंजर-भूमियों का दुरुपयोग राष्ट्रीय जीवन को अस्त-व्यस्त कर देता है। अतः विधि बना कर उसका नियंत्रण आवश्यक है।

सरकार की सम्पत्ति से भिन्न वन और भूमियों पर नियंत्रण के सम्बन्ध में उपबन्ध

धारा ३५—(१) राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा किसी वन या बंजर-भूमि में (क) खेती के लिए भूमि तोड़ना या साफ करना, (ख) ढोर चराना, या (ग) वनस्पति को जलाना या उसे साफ करना, उस सूरत में विनियमित या प्रतिषिद्ध कर सकेगी जिसमें कि ऐसा विनियमन या प्रतिषेध निम्नलिखित प्रयोजनों में से किसी के लिए आवश्यक प्रतीत होता है, अर्थात्—

(i) आँधी, तेज वायु, लुढ़कते पत्थरों, बाढ़ और हिमानी से संरक्षण;

(ii) पहाड़ी भू-भागों की शिखरों और ढलानों और घाटियों पर मृदा का परिरक्षण, भूमि-स्खलन या खादर और वेगधारा के बनने को रोकना, या कटाव या उस पर बालू, पत्थर या बजरी के जमाव से भूमि का संरक्षण;

(iii) झरनों, नदियों और तालावों में जलपूर्ति बनाए रखना;

(iv) पथों, पुलों, रेलों और संचार के अन्य मार्गों का संरक्षण;

(v) लोक स्वास्थ्य का परिरक्षण;

(२) राज्य सरकार ऐसे किसी प्रयोजन के लिए संकर्म, जैसे वह ठीक समझती है, किसी वन या बंजर-भूमि में अपने व्यय पर बनवा सकेगी।

(३) जब तक कि ऐसे वन या भूमि के स्वामी को इस बात के लिए समाहूत करने वाली सूचना न दे दी गई हो कि तुम ऐसी सूचना में विनिर्दिष्ट युक्तियुक्त कालावधि के अन्दर यह हेतुक दर्शित करो कि, यथास्थिति, ऐसी अधिसूचना क्यों न निकाली जाए या संकर्म क्यों न बनाया जाए, और जब तक कि उसके आक्षेपों की, यदि कोई हों, और किसी साक्ष्य की जो वह उनके समर्थन में पेश करे, सुनवाई उस अधिकारी द्वारा न की जा चुकी हो जो उस निमित्त सम्यक् रूप से नियुक्त किया गया है और राज्य सरकार उन पर विचार न कर चुकी हो, तब तक उपधारा (१) के अधीन कोई अधिसूचना नहीं निकाली जाएगी और न उपधारा (२) के अधीन कोई संकर्म आरम्भ किया जाएगा।

संशोधन

पंजाब तथा हरियाणा संशोधन—पंजाब सरकार ने १९६२ के पंजाब अधिनियम संख्या १३ की धारा ३ से भारतीय वन अधिनियम, १९२७ की धारा ३५ के बाद नीचे लिखी नयी धारा अन्तःस्थापित की है :

३५-ए—**प्राइवेट भूमि में वृक्षों के परिरक्षण आदि को विनियमित करने की शक्ति**—राज्य सरकार, धारा ७६ के अधीन नियम बनाकर, प्राइवेट व्यक्तियों के अधिभोग में की या उनकी भूमि पर खड़े वृक्षों के व्ययन और परिरक्षण को, जिनके बारे में भू-राजस्व से सम्बन्धित किसी विधि के अधीन तैयार किए गए अधिकारों के अभिलेखों के अधीन हटाने की अनुज्ञा अपेक्षित है, विनियमित कर सकेगी।

मध्य प्रदेश संशोधन—मध्य प्रदेश सरकार ने १९५० के मध्य प्रदेश अधिनियम संख्या ३० की धारा २ के द्वारा भारतीय वन अधिनियम, १९२७ की धारा ३५ में नीचे लिखा संशोधन किया है :

उपधारा (१) में—

(i) खण्ड (ग) के बाद नीचे लिखा नया खण्ड अन्तः स्थापित किया जाए :

(घ) वृक्षों और पौधों का काटना; और

(ii) खण्ड (IV) के बाद नीचे लिखा नया खण्ड अन्तः स्थापित किया जाए :

(IV-ए) वनों का विनाश निवारित करने के लिए और संरक्षण तथा विकास का संवर्धन करने के लिए।

टिप्पणी—इस धारा के अनुसार राज्य सरकार धारा में वर्णित प्रयोजनों के लिए प्राइवेट वन या बंजर-भूमि में खेती के लिए भूमि तोड़ना या साफ करना, ढोर चराना या वनस्पति जलाना या साफ करना विनियमित या प्रतिषिद्ध कर सकती है। इसके अतिरिक्त राज्य सरकार किसी ऐसे प्रयोजन के लिए किसी वन या बंजर-भूमि में या उस पर कोई निर्माण कार्य अपने व्यय पर करा सकती है। इस प्रकार का विनियमन या प्रतिषेध विज्ञापित करने या निर्माण कार्य कराने से पूर्व यह आवश्यक है कि सरकार भूमि के स्वामी को एक कारण बताओ नोटिस दे और भूमि के स्वामी की आपत्तियाँ सुनने तथा उन पर निर्णय देने के लिए कोई अधिकारी नियुक्त करे।

इस धारा में प्रक्रिया बहुत संक्षिप्त है। इसलिए कुछ राज्य सरकारों जैसे गुजरात और महाराष्ट्र ने तो इसमें व्यापक संशोधन किए परन्तु अन्य राज्यों जैसे पंजाब, हरियाणा तथा मध्य प्रदेश ने थोड़ा ही संशोधन किया है।

धारा ३६—(१) धारा ३५ के अधीन किसी विनियम या प्रतिषेध की उपेक्षा या जानबूझ कर अवज्ञा की दशा में या, यदि उस धारा के अधीन होने वाले किसी संकर्म के प्रयोजनार्थ ऐसा अपेक्षित है, तो राज्य सरकार ऐसे वन या भूमि के स्वामी को लिखित सूचना के पश्चात् और उसके आक्षेपों पर, यदि कोई हों, विचार करने के पश्चात्, उसे वन अधिकारी के नियंत्रण के अधीन कर सकेगी और घोषित कर सकेगी कि आरक्षित वनों से सम्बद्ध इस अधिनियम के सब उपबन्ध या उनमें से कोई उपबन्ध ऐसे वन या भूमि को लागू होंगे।

(२) ऐसे वन या भूमि के प्रबन्ध से उत्पन्न होने वाले शुद्ध लाभ, यदि कोई हों, उक्त स्वामी को दे दिए जाएँगे।

संशोधन

मध्य प्रदेश संशोधन—मध्य प्रदेश सरकार ने १९५० के मध्य प्रदेश अधिनियम संख्या ३० की धारा ३ के द्वारा भारतीय वन अधिनियम, १९२७ में निम्नलिखित संशोधन किया है :

धारा ३६ में उपधारा (२) के बाद नीचे लिखी उपधाराएँ जोड़ दी जाएँ :

(३) शुद्ध लाभ की गणना करने के प्रयोजन के लिए लेखा की तारीख तक वन के प्रबन्ध और कार्यों पर उपगत समस्त व्यय, प्रबन्ध और कार्यों से प्राप्त समस्त आय में से समायोजित किया जाएगा।

(४) उपधारा (३) के प्रयोजनों के लिए—

(क) समस्त आय के अन्तर्गत, वन या उसकी वन-उपज के बारे में किए गए वन अपराधों, जो वन स्वामी ने न किए हों, से सम्बद्ध अधिहरण या समपहरणों के आगम, जिनमें से ऐसे आगमों में से भेदियों और अधिकारियों को दिए गए पुरस्कारों, यदि कोई हों, की कटौती कर दी गई हो, आते हैं।

(ख) समस्त व्यय के अन्तर्गत—(i) सरकार को संदेय पर्यवेक्षण प्रभार के बदले में समस्त आय के २० प्रतिशत के बराबर रकम, (ii) ऐसे वन या भूमि को प्रबन्ध में लेने की तारीख के बाद वन स्वामी द्वारा हटायी गयी किसी वन-उपज या लिए गए किसी फायदे का मूल्य, (iii) वन विभाग के कर्मचारी वृन्द के वेतन और भत्तों पर उपगत प्रबन्ध का खर्च, और (iv) ऐसे आनुषंगिक व्यय जो अधिहृत या समपहृत वन-उपज या वस्तुओं के संग्रहण, परिवहन, और विक्रय पर उपगत किए गए हों, आएँगे।

टिप्पणी—इस धारा में राज्य सरकार को यह शक्ति दी गई है कि यदि कोई भूमि का स्वामी धारा ३५ के अधीन लगाए गए किसी विनियम या प्रतिषेध की उपेक्षा या जानबूझ कर अवज्ञा करे या यदि उस धारा के अधीन किए गए किसी

संकर्म के प्रयोजन के लिए अपेक्षित हो तो ऐसे वन या भूमि के स्वामी को लिखित सूचना देने और उसकी आपत्तियों पर विचार करने के बाद उसे अपने नियंत्रण में ले सकती है और आरक्षित वन के प्रतिबन्ध उस वन या भूमि पर लगा सकती है। जब ऐसा प्रबन्ध किया जाता है तो उस प्रबन्ध से होने वाला शुद्ध लाभ, यदि कोई हो, भूमि के स्वामी को दे दिया जाता है। मूल अधिनियम में शुद्ध लाभ के आकलन की रीति नहीं बतायी गयी है। अतः मध्य प्रदेश सरकार ने एक नई उपधारा जोड़ कर शुद्ध लाभ के आकलन की रीति का वर्णन किया है।

धारा ३७—(१) इस अध्याय के अधीन ऐसे किसी मामले में, जिसमें कि राज्य सरकार यह समझती है कि वन या भूमि को वन अधिकारी के नियंत्रण में रखने के बजाय उसे लोक प्रयोजन के लिए अर्जित कर लिया जाए, राज्य सरकार भूमि अर्जन अधिनियम, १८९४ द्वारा उपबन्धित रीति से उसे अर्जित करने के लिए कार्यवाही कर सकेगी।

(२) धारा ३५ के अधीन किसी अधिसूचना में समाविष्ट वन या भूमि का स्वामी, उस अधिसूचना की तारीख से अन्यून तीन वर्ष या अनधिक बारह वर्ष के अन्दर किसी भी समय यह अपेक्षा कर सकेगा कि ऐसा वन या भूमि लोक प्रयोजन के लिए अर्जित किया जाए और राज्य सरकार ऐसे वन या भूमि को तदनुसार अर्जित कर लेगी।

धारा ३८—(१) किसी भूमि का स्वामी, या यदि उसके एक से अधिक स्वामी हैं, तो उन अंशों में से कुल मिलाकर कम से कम दो-तिहाई अंशों के स्वामी इस दृष्टि से कि उस भूमि पर वनों का रोपण या संरक्षण किया जाए, कलक्टर को अपनी इस इच्छा का लिखित अभ्यावेदन कर सकेगा या कर सकेंगे—

(क) कि हमारी ओर से ऐसी भूमि का आरक्षित या संरक्षित वन के रूप में प्रबन्ध वन अधिकारी द्वारा ऐसे निबन्धनों पर किया जाए जो परस्पर करार पाए जाएँ, या

(ख) इस अधिनियम के सब उपबन्ध या उनमें से कोई उपबन्ध ऐसी भूमि को लागू कर दिए जाएँ।

(२) दोनों में से हर अवस्था में, राज्य सरकार, ऐसी भूमि को इस अधिनियम के ऐसे उपबन्ध राजपत्र में अधिसूचना द्वारा लागू कर सकेगी, जिन्हें वह ऐसी भूमि की परिस्थितियों में उचित समझती हो और जो आवेदकों द्वारा वांछित हों।

टिप्पणी—जब इस धारा के अधीन किसी भूमि का स्वामी कलक्टर को लिखित अभ्यावेदन करता है और उस पर कार्यवाही करते हुए राज्य सरकार आरक्षित वन के उपबन्ध लागू करने के आशय से अधिसूचना निकालती है तो उस भूमि पर वन अधिनियम के अध्याय २ की धारा २२ से पहले की समस्त धाराएँ तत्काल लागू हो जाती हैं। इसके लिए धारा २० के अधीन अधिसूचना निकाले जाने की भी आवश्यकता नहीं है। **गोला हो बनाम सम्राट वाद (ए० आई० आर० १९४६**

पटना ५१) में अभिनिर्धारित किया गया कि धारा ३८ के अधीन निकाली गयी अधिसूचना में यह मान लिया जाता है कि वन अधिनियम की धारा ३ से धारा २१ तक अनुपालित हो चुकी हैं और इसलिए उस अधिसूचना के निकलने के बाद उस भूमि पर किए गए अपराधों के बारे में धारा २६ के अधीन कार्यवाही की जा सकती है। यह धारा इण्डिया एक्ट १९३५ के भी अधिकारातीत नहीं है क्योंकि यह धारा किसी स्वामी को किसी सम्पत्ति के अधिकार से वंचित नहीं करती। स्वामी के सम्पत्ति के अधिकार बने रहते हैं और वह उस भूमि का केवल प्रबन्ध वन अधिकारी द्वारा किए जाने का अनुरोध करता है।

संशोधन

पंजाब तथा हरियाणा संशोधन—१९६२ के पंजाब अधिनियम संख्या १३ की धारा ४ के अनुसार मूल अधिनियम की धारा ३८ की उपधारा (१) में 'उन अंशों में से कुल मिलाकर कम से कम दो-तिहाई अंशों के स्वामी' शब्दों के स्थान पर 'उन अंशों में से बहुसंख्यक अंशों के स्वामी' शब्द प्रतिस्थापित किए गए हैं।

हिमाचल प्रदेश संशोधन—हिमाचल प्रदेश सरकार ने १९६८ के हिमाचल प्रदेश अधिनियम संख्या २५ की धारा ३ के अनुसार मूल अधिनियम की धारा ३८ में नीचे लिखा संशोधन किया है :

धारा ३८ की उपधारा (१) में 'उन अंशों में से कुल मिलाकर कम से कम दो-तिहाई अंशों के स्वामी' शब्दों के स्थान पर 'उन अंशों में से बहुसंख्यक अंशों के स्वामी' शब्द प्रतिस्थापित किए जाएँ।

उत्तर प्रदेश संशोधन—उत्तर प्रदेश सरकार ने इण्डियन फॉरेस्ट (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम, १९५६ जैसा कि वह इण्डियन फॉरेस्ट (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम, १९६० तथा इण्डियन फॉरेस्ट (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम १९६४ से संशोधित हुआ है, के द्वारा भारतीय वन अधिनियम, १९२७ की धारा ३८ के बाद दावेदारों के वनों के नियंत्रण के सम्बन्ध में निम्नलिखित नया अध्याय ५-ए जोड़ा है।

३८-क—इस अध्याय में, जब तक कि कोई बात विषय या संदर्भ से विरुद्ध न हो—

(क) **दावेदार** से किसी भूमि के सम्बन्ध में उस भूमि का या उसमें किसी पट्टे या उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम १९५० के प्रारम्भ से पूर्व निष्पादित किसी अनुज्ञप्ति के अधीन या जरिए या द्वारा या किसी अधिनियमिति, जिसमें उक्त अधिनियम सम्मिलित है, के अधीन या अनुसार अर्जित, स्वामित्व में लाया गया, व्यवस्थापित या कब्जे में लिया गया किसी हित का हकदार होने का दावा करने वाला व्यक्ति अभिप्रेत है।

(ख) **वन** से वह भू-भाग जो वृक्षों, झाड़ियों, क्षुपाओं या काष्ठीय वनस्पति चाहे वह प्राकृतिक उपज की हो या मानव अभिकरण द्वारा रोपित हो और जो

मानव प्रयत्नों से या उनके बिना अस्तित्व में हो या बनायी रखी जा रही हो, से आच्छादित हो या ऐसा भू-भाग जिस पर ऐसी उपज का इमारती लकड़ी, ईंधन, वन-उपज के प्रदाय पर या चरागाह सुविधाओं पर या जलवायु, सरित बहाव, कटाव से भूमि का संरक्षण या अन्य ऐसे विषयों पर प्रभाव डालना संभाव्य है, अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत—

(i) किसी वन के वृक्षों के ठूंठों से आच्छादित भूमि;

(ii) भूमि जो किसी वन का भाग हो या उसके अन्दर स्थित हो या जुलाई १९५२ के प्रथम दिन पर किसी वन का भाग थी या किसी वन के अन्दर स्थित थी;

(iii) किसी वन के पार्श्वस्थ या अन्दर स्थित ऐसी चरागाह भूमि, जल-भरी, खेती योग्य या खेती के अयोग्य भूमि, जो राज्य सरकार द्वारा वन घोषित की जाए; आएँगे।

(ग) **वन-भूमि** से वन से आच्छादित या वन के रूप में उपयोग में लायी जाने के लिए आशयित भूमि अभिप्रेत है; और

(घ) **विहित** से इस अधिनियम के अधीन बने नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है।

तोड़ना या साफ करना, आदि विनियमित या प्रतिषिद्ध करने की शक्ति

३८-ख—(१) राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा (किसी दावेदार की भूमि पर या उसमें स्थित) किसी वन में (क) खेती या किसी अन्य प्रयोजन के लिए भूमि का तोड़ना या साफ करना; (ख) वनस्पति का जलाना या साफ करना; (ग) किसी वृक्ष का परितक्षण करना, छेदना या जलाना या किसी वृक्ष की छाल उतार डालना; (घ) वृक्षों का छाँटना या पोलार्ड करना; (ङ) वृक्षों की कटाई, चिराई, संपरिवर्तित करना या हटाना उस सूरत में विनियमित या प्रतिषिद्ध कर सकेगी जिसमें कि ऐसा विनियमन या प्रतिषेध (i) वनों और वृक्षों के संरक्षण के लिए; या (ii) चरागाह के सुधार के लिए; या (iii) चारे, इमारती लकड़ी या ईंधन के प्रदाय को बनाए रखने, उसमें वृद्धि करने और उसके वितरण के लिए; या (iv) कटाव से भूमि के संरक्षण के लिए; या (v) जनसाधारण के हितसाधन करने के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।

(२) जब तक कि भूमि के दावेदार को इस बात के लिए समाहूत करने वाली सूचना न दे दी गई हो कि तुम ऐसी सूचना में विनिर्दिष्ट युक्तियुक्त, चौदह दिन से अन्यून और तीस से अनधिक कालावधि के अन्दर यह हेतुक दर्शित करो कि ऐसी अधिसूचना क्यों न निकाली जाए और जब तक कि उसके आक्षेपों की, यदि कोई हों, और किसी साक्ष्य की जो वह उसके समर्थन में पेश करे, सुनवाई प्रथम वर्ग के सहायक कलक्टर से अनिम्न पंक्ति के उस अधिकारी द्वारा न की जा चुकी हो जो उस निमित्त नियुक्त किया गया है और राज्य सरकार उन पर विचार न कर चुकी हो, तब तक उपधारा (१) के अधीन कोई अधिसूचना नहीं निकाली जाएगी।

(३) राज्य सरकार द्वारा उपधारा (१) के अधीन या तो किसी विशिष्ट वन के बारे में या किसी क्षेत्र में स्थित सब वनों के बारे में सामान्यत: अधिसूचना निकालना विधिपूर्ण होगा।

आपात मामलों में प्रतिषेध या विनियमन

३८-ग—जहाँ कि किसी वन या किसी क्षेत्र के सामान्यत: सब वनों के बारे में धारा ३८-ख के अधीन अधिसूचना निकालने का प्रस्ताव है और राज्य सरकार का समाधान हो गया है कि उक्त धारा की उपधारा (१) के खण्ड (क) से खण्ड (ङ) में उल्लिखित सब कार्यों या उनमें से किसी कार्य के करने को निवारित करने के लिए तुरन्त कार्यवाही आवश्यक है तो वह, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, ऐसे कार्य का, सिवाय जैसे और जिस रीति से विनिर्दिष्ट किया जाए, उस वन के या, यथास्थिति, उस क्षेत्र में स्थित सामान्यत: सब वनों के बारे में, जैसा कि विनिर्दिष्ट किया जाए, करना प्रतिषिद्ध कर सकेगी और तदुपरि, कोई व्यक्ति, किसी दावे, अधिकार, करार, रूढ़ि, प्रथा या प्रतिकूल विधि के होते हुए भी, उक्त कार्यों में से कोई कार्य ऐसे वन या वनों में अधिसूचना की तारीख से छह मास के अवसान तक और जब तक कि धारा ३८-ख की उपधारा (२) के अधीन अधिसूचना के अनुसरण में फाइल किए गए आक्षेपों, यदि कोई हों, की सुनवाई न हो गई हो और उन पर राज्य सरकार ने विचार न कर लिया हो, नहीं करेगा।

सूचना की तामील

३८-घ—धारा ३८-ख की उपधारा (२) के अधीन सूचना—

(क) एक व्यक्ति (निगम, फर्म या व्यक्ति-निकाय नहीं) पर प्रभाव डालने वाली अधिसूचना की दशा में, उस व्यक्ति पर (i) उसे सूचना वैयक्तिक रूप से परिदान या निविदान करके; या (ii) रजिस्ट्रीकृत डाक से; या (iii) जहाँ कि वह व्यक्ति पाया नहीं जा सकता, सूचना की एक अधिप्रमाणित प्रति उसके कुटुम्ब के किसी वयस्क पुरुष सदस्य के पास छोड़कर या उस परिसर के जिसमें वह अन्तिम बार रहा हुआ या कारोबार करता हुआ या लाभ के लिए व्यक्तिगत रूप से काम करता हुआ जाना जाता है, किसी सहजदृश्य भाग में चिपकवाकर,

(क-क) किसी निगम, फर्म या व्यक्ति-निकाय पर प्रभाव डालने वाली अधिसूचना की दशा में, मैनेजर, प्रमुख अधिकारी, या उसके अभिकर्त्ता को खण्ड (क) में उपबन्धित रीति से तामील की जाएगी; और

(ख) किसी क्षेत्र के सब वनों से सम्बन्धित साधारण प्रकृति की अधिसूचना के बारे में, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा तामील की जाएगी और जब तक कि राज्य सरकार ऐसा निदेश न दे, दावेदारों पर व्यक्तिगत रूप से सूचना तामील करना आवश्यक न होगा।

वन अधिनियम १९२७ की धारा ३६ का लागू होना

३८-ङ—धारा ३८-ख या धारा ३८-ग के अधीन अधिसूचित किसी विनियमन

या प्रतिषेध को धारा ३६ के उपबन्ध, यथाआवश्यक परिवर्तन सहित, लागू होंगे ।

शास्ति

३८-च—जो कोई व्यक्ति किसी वन में जिसके बारे में धारा ३८-ख या धारा ३८-ज के अधीन अधिसूचना निकाली जा चुकी है,

(i) खेती या किसी अन्य प्रयोजन के लिए भूमि तोड़ेगा या साफ करेगा, वनस्पति जलाएगा या साफ करेगा, किसी वृक्ष को परितक्षण करेगा, छेवेगा, जलाएगा, छाँटेगा, पोलार्ड करेगा, गिराएगा, काटेगा, चीरेगा, संपरिवर्तित करेगा या हटाएगा, या किसी वृक्ष की छाल उतार डालेगा या धारा ३८-ज की उपधारा (४) में अन्तर्विष्ट उपबन्धों के उल्लंघन में पूर्वोक्त कार्यों में से कोई कार्य करेगा, या

(ii) ऐसे वन को आग लगाएगा या उसके फैल जाने को रोकने के लिए युक्तियुक्त-पूर्ण पूर्वविधानी बरते बिना आग जलाएगा, या

(iii) पशुओं को ऐसे किसी वृक्ष को नुकसान पहुँचाने देगा,

वह उस अवधि के कारावास से, जो छह मास तक की हो सकेगी या जुर्माने से या दोनों से दण्डित किया जाएगा ।

व्यावृत्ति

३८-छ—धारा ३८-ख, धारा ३८-ग या धारा ३८-घ और धारा ३८-ज द्वारा प्रदत्त शक्तियाँ इस अधिनियम के किसी अन्य उपबन्ध के अधीन या उसके द्वारा किसी प्राधिकारी को प्रदत्त किन्हीं अन्य शक्तियों के अतिरिक्त होंगी, न कि उनका अल्पीकरण करने वाली होंगी ।

प्रबन्ध ग्रहण करने की शक्ति

३८-ज—(१) जब कभी राज्य सरकार को किसी विशिष्ट वन या वन-भूमि का प्रबन्ध ग्रहण करना लोकहित में या उसके उचित प्रबन्ध को सुरक्षित करने के लिए, विशेषकर वन के रूप में उसके योजनाबद्ध विकास को सुनिश्चित करने की दृष्टि से आवश्यक या समीचीन प्रतीत होता है तो वह, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, उक्त सब प्रयोजनों के या उनमें से कुछ के लिए पन्द्रह वर्ष से अनधिक ऐसी कालावधि के लिए जैसी कि अधिसूचना में विनिर्दिष्ट की जाए, ऐसा कर सकेगी ।

(२) उपधारा (i) के अधीन कोई अधिसूचना उस समय तक नहीं निकाली जाएगी जब तक—

(क) वन अधिकारी द्वारा वन या वन-भूमि के, यथास्थिति, दावेदार या स्वामी या भू-धृति-धारक (tenure holder) को उचित अवसर देते हुए यह सूचना न दे दी गई हो कि वह सूचना में विनिर्दिष्ट कालावधि, जो सूचना की उस पर तामील की तारीख से चौदह दिन से कम न हो, के अन्दर यह हेतुक दर्शित करे कि उसमें विनिर्दिष्ट वन या वन-भूमि का प्रबन्ध क्यों न ग्रहण किया जाए; और

(ख) आक्षेपों, यदि कोई हो, की सुनवाई हो चुकी हो और वन अधिकारी

ने उन्हें विहित रीति से निबटा दिया हो।

(३) उपधारा (२) में निर्दिष्ट सूचना संपृक्त व्यक्ति पर धारा ३८-घ के उपबन्धों के अनुसार तामील की जाएगी।

(४) उपधारा (२) में निर्दिष्ट सूचना की तामील के बाद कोई व्यक्ति ऐसे वन या वन-भूमि पर या उसके बारे में निम्नलिखित कार्यों में से कोई कार्य, अर्थात्—(क) खेती या किसी अन्य प्रयोजन के लिए भूमि का तोड़ना या साफ करना; (ख) वनस्पति को जलाना या उसे साफ करना; (ग) किसी वृक्ष का परितक्षण करना, छेवना या जलाना या उसकी छाल उतार डालना; (घ) वृक्षों का छाँटना या पोलार्ड करना; (ङ) वृक्षों का गिराना, काटना, चिराई करना, संपरिवर्तित करना या हटाना, उस समय तक वन अधिकारी की अनुज्ञा से होने के सिवाय न तो करेगा या न करने देगा या किया जाना कारित करेगा, जब तक—

(i) उपधारा (२) के खण्ड (क) के अधीन आक्षेपों के फाइल किए जाने की दशा में, उस उपधारा के खण्ड (ख) के अधीन उनको निबटा न दिया गया हो और तत्पश्चात्, जब तक कि आक्षेपों को अनुज्ञात न किया गया हो, छह मास की अतिरिक्त कालावधि का अवसान या उपधारा (१) के अधीन अधिसूचना का प्रकाशन जो भी पहले हो, न हो गया हो।

(ii) उपधारा (२) के खण्ड (क) के अधीन आक्षेपों के फाइल न किए जाने की दशा में, उपधारा (१) के अधीन अधिसूचना का प्रकाशन या सूचना की तामील की तारीख से छह मास का अवसान, जो भी पहले हो, न हो गया हो।

धारा ३८-ज के अधीन अधिसूचना के परिणाम

३८-झ—उस वन या वन-भूमि के बारे में जिसके लिए धारा ३८-ज के अधीन अधिसूचना निकाली जा चुकी है, राज्य सरकार—

(i) अधिसूचना की तारीख से उसमें उल्लिखित प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए यथास्थिति, उस वन या वन-भूमि को एक वन अधिकारी के भार साधन में रख देगी और तदुपरि धारा ५ के उपबन्ध, यथास्थिति, ऐसे वन या वन-भूमि को, यथावश्यक परिवर्तन सहित, लागू होंगे, और

(ii) यथास्थिति, वन या वन-भूमि के दावेदार या स्वामी या भूधृतिधारक को अधिसूचना की तारीख से प्रारम्भ होकर धारा ३८-ठ के अधीन उसकी निर्मुक्ति की तारीख तक की कालावधि के लिए उसकी प्रोद्भावी आय में से प्रबन्ध के खर्च के लिए उसका बीस से अनधिक ऐसा प्रतिशत, जो विहित किया जा सकेगा, और राज्य सरकार द्वारा उसके विकास पर व्यय की गई रकम, यदि कोई हो, को घटाने के बाद अतिशेष, यदि कोई हो, देने की दायी होगी और संदाय करेगी।

राज्य सरकार के कब्जे में पहले से ही होने वाले वन के बारे में संदाय

३८-ञ— ऐसे वन के मामले में जिसका कब्जा राज्य सरकार ने इण्डियन-

फॉरेस्ट (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम, १९६० के प्रारम्भ होने से पूर्व ग्रहण कर लिया था और जिसका प्रबन्ध धारा ३८-ज के उपबन्धों के अनुसार ग्रहण किया गया है, राज्य सरकार, अपने और सम्बद्ध व्यक्ति के बीच इसके प्रतिकूल संविदा के अभाव में, कब्जे की तारीख के प्रारम्भ से लेकर उक्त धारा के अधीन अधिसूचना निकाले जाने तक की कालावधि के लिए, धारा ३८-झ (ii) के अनुसार उससे प्रोद्भावी आय के अतिशेष देने का, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि, रूढ़ि, प्रथा में अन्तर्विष्ट किसी बात या संविदा के प्रतिकूल होते हुए भी, इस तरह जिम्मेदार होगी मानों कि पूर्वोक्त अधिनियम के उपबन्ध सब तात्विक तारीखों पर प्रवृत्त थे और ऐसे वन का प्रबन्ध उसका कब्जा ग्रहण करने की तारीख को हाथ में ले लिया गया था।

इस अधिनियम के अधीन हाथ में लिए गए वन या वन-भूमि के अन्दर स्थित क्षेत्रों में खेती करने की अनुज्ञा

३८-ट—(१) उस व्यक्ति के, जिसका यथास्थिति, वन या वन भूमि धारा ३८-ज के अधीन ग्रहण कर लिया गया है, आवेदन देने पर यदि राज्य सरकार का समाधान हो जाता है कि ऐसा करना लोकहित में है तो वह उसे, यथास्थिति, ऐसे वन या वन-भूमि के पूरे क्षेत्रफल के पाँचवे भाग से अनधिक ऐसे भाग पर और उसके प्रबन्ध की कालावधि से परे न होने वाली ऐसी कालावधि, जिसे अनुज्ञा प्रदान करने वाले आदेश में विनिर्दिष्ट किया जाए, के लिए खेती करना अनुज्ञात कर सकेगी।

(२) उपधारा (१) के अधीन आवेदन, यथास्थिति वन या वन-भूमि के भार साधक वन अधिकारी को निवेदित की जाएगी, जो उसे अपनी सिफारिशों के साथ, राज्य सरकार को भेज देगा।

(३) उपधारा (२) के अधीन दिए गए आवेदन पर राज्य सरकार का विनिश्चय अन्तिम होगा और किसी न्यायालय में प्रश्नगत नहीं किया जाएगा।

किसी वन या वन-भूमि को प्रबंध से निर्मुक्ति

३८–ठ राज्य सरकार, किसी भी समय, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, यथास्थिति, किसी वन या वन-भूमि को, जिसका प्रबन्ध उसने धारा ३८-ज के अधीन ग्रहण किया था, अपने प्रबन्ध से निर्मुक्त कर सकेगी और तदुपरि, यथास्थिति, वह वन या वन-भूमि राज्य सरकार के प्रबन्ध के अधीन नहीं रहेगी और अधिसूचना में विनिर्दिष्ट निर्मुक्ति की तारीख से, यथास्थिति, उस वन या वन-भूमि के बारे में राज्य सरकार का दायित्व समाप्त हो जाएगा।

नियम बनाने की शक्तियाँ

३८-ड—(१) राज्य सरकार इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए राजपत्र में पूर्व प्रकाशन के पश्चात् नियम बना सकेगी।

(२) विशेषतः और पूर्ववर्ती शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ऐसे नियम—(क) उन मदों को जिनके लिए और उन रीतियों को जिनमें प्रबन्ध का व्यय परिकलित किया जाएगा, विहित कर सकेंगे; (ख) इस अधिनियम के अधीन आक्षेपों की सुनवाई तथा निबटारे की प्रक्रिया विहित कर सकेंगे; (ग) इस अधिनियम के अधीन ग्रहण किए गए वन या वन भूमियों के प्रबन्ध या विकास का ढंग विहित कर सकेंगे; (घ) धारा ३८-ट के अधीन आवेदन के प्ररूप को और उन विशिष्टियों को, जो उसमें अवश्य दी जानी चाहिए, विहित कर सकेंगे; और (ङ) ऐसे किसी अन्य मामलों को विहित कर सकेंगे जो इस अधिनियम के अधीन विहित किए जाते हैं या विहित किए जा सकेंगे ।

(३) इस अधिनियम के अधीन बनाए गए सब नियम बनाए जाने के पश्चात् यथाशक्य शीघ्र, विधान मण्डल के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब उसका सत्र चल रहा हो, चौदह दिन की कुल कालवधि के लिए, चाहे यह एक सत्र में हो या एक से अधिक आनुक्रमिक सत्रों में हो, रखा जाएगा और जब तक कि कोई पश्चात्वर्ती तारीख नियत न की गई हो, राजपत्र में प्रकाशन की तारीख से, ऐसे उपान्तर या बातिलकरण (annulment) के अध्यधीन रहते हुए जो विधान मण्डल के दोनों सदन करने के लिए सहमत हों, प्रभावी होगा; किन्तु ऐसे कि ऐसा कोई उपान्तर या बातिलकरण उन नियमों के अधीन पूर्वतन की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना होगा ।

टिप्पणी—उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा जोड़ा गया अध्याय ५-ए दो बार में अधिनियमित हुआ है । इसकी ३८-क से लेकर ३८-छ तक धाराएँ १९५६ में और ३८-ज से लेकर ३८-ड तक धाराएँ १९६० में अधिनियमित हुई हैं । सन् १९६४ में भी इसमें कुछ संशोधन किए गए । **महेन्द्रलाल जैन बनाम उत्तर प्रदेश राज्यवाद (ए० आई० आर० १९६३ सु० को० १०१९)** में अभिनिर्धारित किया गया कि इस अध्याय की धारा ३८–क से लेकर धारा ३८-छ तक आरक्षित वन सम्बन्धी उपबन्धों की अनुषंगी या सहायक हैं और अध्याय २ की कार्यवाहियों के लम्बित रहने के दौरान अध्याय २ में अन्तर्विष्ट नियंत्रण की शक्तियों के अलावा अतिरिक्त शक्ति प्रदान करती हैं ।

धारा ३८-ख का यह उद्देश्य नहीं है कि राज्य सरकार या वन अधिकारी निरंकुश बन जावें और भूमि के दावेदारों के न्यायोचित कार्यों या वन की वनवर्धनीय आवश्यकताओं की अवहेलना कर किसी वन पर पूर्ण प्रतिषेध असीमित अवधि के लिए लगा दें । इस धारा का उद्देश्य तो केवल इतना ही है कि दावेदारों को वन को क्षति पहुँचाने या नष्ट करने से रोका जा सके और इसके लिए केवल वही प्रतिषेध लगाने चाहिए जो अत्यन्त आवश्यक हों । प्रतिषेध असीमित अवधि के लिए नहीं होने चाहिए क्योंकि कुछ समय के प्रतिषेध के बाद वन की दशा सुधर जाती है और वह अपने स्वामी को कुछ वन-उपज दे सकता है । **रामचन्द्र त्रिपाठी बनाम डी० एफ० ओ०**

दुद्धी, मिर्जापुर वाद (ए० आई० आर० १९६३ **इलाहाबाद** ४८०) में अभिनिर्धारित किया गया कि यदि सामान्य नियम की अवहेलना कर राज्य सरकार या उसके वन अधिकारी यह सोचे बिना कि विनियमन किया जाए या प्रतिषेध या उस धारा में लिखे प्रयोजनों के लिए कौन से प्रतिषेध आवश्यक हैं और वे कितने समय के लिए होने चाहिए, पूर्ण प्रतिषेध असीमित अवधि के लिए लगाते हैं तो ऐसी अधिसूचना धारा ३८-ख के उपबन्धों के अधिकारातीत है और अपखण्डित की जानी चाहिए क्योंकि वह संविधान के अनुच्छेद १९(१)(च) के अधीन मौलिक अधिकारों पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित करती है और यह ऐसी स्थिति है जो वन अधिनियम की धारा ३८-ख के उपबन्धों द्वारा अनुध्यात की गई प्रतीत नहीं होती।

अध्याय ६

इमारती लकड़ी और अन्य वन-उपज पर शुल्क

यद्यपि अधिकांश वन, उनकी इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज राज्य सरकारों की सम्पत्ति हैं तथापि भारतीय वन अधिनियम के अनुसार केन्द्रीय सरकार को कुछ परिस्थितियों में इमारती लकड़ी तथा अन्य वन-उपज पर शुल्क लगाने की शक्ति है।

शुल्क सम्बन्धी उपबन्ध

धारा ३९—(१) केन्द्रीय सरकार ऐसी रीति से, ऐसे स्थानों में और ऐसी दरों पर, जैसी वह राजपत्र में अधिसूचना द्वारा घोषित करे, उस सब इमारती लकड़ी या वन-उपज पर शुल्क उद्गृहीत कर सकेगी—

(क) जो उन राज्य क्षेत्रों में, जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है, पैदा की जाती है और जिसके विषय में सरकार को कोई अधिकार प्राप्त है, या

(ख) जो उन राज्यक्षेत्रों के, जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है, बाहर के किसी स्थान से लायी जाती है।

(२) ऐसे हर मामले में, जिनमें ऐसे शुल्क की बाबत यह निर्दिष्ट किया गया है कि वह मूल्यानुसार उद्गृहीत किया जाए, केन्द्रीय सरकार वैसी ही अधिसूचना द्वारा, वह मूल्य नियत कर सकेगी जिस पर ऐसा शुल्क निर्धारित होगा।

(३) इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज पर जो शुल्क उस समय, जब वह अधिनियम किसी राज्यक्षेत्र में प्रवृत्त होता है, राज्यसरकार के प्राधिकार के अधीन उसमें उद्गृहीत होते हैं, उन सब की बाबत यह समझा जाएगा कि वे इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन उद्गृहीत होते हैं और सम्यक् रूप से उद्गृहीत होते रहे हैं।

(४) जब तक कि संसद द्वारा प्रतिकूल उपबन्ध नहीं किया जाता, राज्य सरकार इस धारा में किसी बात के होते हुए भी किसी शुल्क को लगातार उद्गृहीत कर सकेगी, जिसे वह संविधान के प्रारम्भ के पूर्व इस धारा के उस समय प्रवृत्त रूप में विधिपूर्णतः उद्गृहीत करती थी :

परन्तु इस उपधारा की कोई बात ऐसे किसी शुल्क का उद्ग्रहण प्राधिकृत नहीं करती जो राज्य की इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज और राज्य के बाहर के

स्थान की समरूप इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज के बीच पूर्वकथित के पक्ष में विभेद करता है या जो राज्य के बाहर किसी स्थान की इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज के मामले में, किसी एक स्थान की इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज और अन्य स्थान की समरूप इमारती लकड़ी या वन-उपज के बीच विभेद करता है।

धारा ४०—इस अध्याय की किसी बात की बाबत यह न समझा जाएगा कि वह उस राशि को, यदि कोई हो, जो किसी इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज पर क्रय-धन या स्वामित्व के रूप में प्राभार्य है, सीमित करती है, भले ही वह ऐसी इमारती लकड़ी या उपज के अभिवहन के दौरान उस पर उस रीति से उद्गृहीत होता हो जिसमें शुल्क उद्गृहीत होता हो।

टिप्पणी—धारा ३६ के अधीन केन्द्रीय सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा घोषित रीति से, स्थानों पर और दरों से उस सब इमारती लकड़ी या वन-उपज पर शुल्क उद्गृहीत कर सकती है जो (i) उन राज्य क्षेत्रों में जिन पर अधिनियम का विस्तार है, पैदा की जाती है और जिसके विषय में सरकार को कोई अधिकार प्राप्त है, या (ii) उन राज्य क्षेत्रों के, जिन पर अधिनियम का विस्तार है, बाहर के स्थान से लायी जाती है। **लाल बादशाह बनाम सम्राट वाद (ए० आई० आर० १९२५ लाहौर २२५)** में अभिनिर्धारित किया गया है कि धारा ३६(१) में इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज के निम्नलिखित दो निश्चित वर्ग निर्दिष्ट हैं—(क) जो भारत में पैदा होती है और जिसके सम्बन्ध में सरकार को कोई अधिकार है, तथा (ख) जो भारत के सीमान्तों के बाहर किसी स्थान से भारत में लायी जाती है। इस धारा के खण्ड (ख) में पद 'लायी जाती है' महत्त्वपूर्ण है। **सम्राट बनाम कादरभाई यूसुफ अली बोहर वाद(ए० आई० आर० १९२७ मुम्बई ४८३)** में अभिनिर्धारित किया गया है कि खण्ड (ख) उस व्यक्ति से शुल्क उद्ग्रहण करना अनुध्यात करता है जो किसी विदेशी स्थान से इमारती लकड़ी को वास्तव में उस स्थान पर लाया जहाँ शुल्क उद्ग्रहणीय है और यदि कोई व्यक्ति तथ्यतः उस विदेशी स्थान से नहीं लाया या उसने उसे लाने के षडयंत्र में भाग नहीं लिया तो उसके पास की इमारती लकड़ी पर शुल्क उद्ग्रहणीय नहीं है।

धारा ३६(२) केन्द्रीय सरकार को यह शक्ति देती है कि जिन मामलों में वह मूल्यानुसार शुल्क उद्गृहीत करना निर्दिष्ट करे उनमें वह उस मूल्य को नियतकर सकती है जिस पर शुल्क निर्धारित किया जाए।

जहाँ केन्द्रीय सरकार ने शुल्क उद्गृहीत करने की शक्ति स्वयं में निहित की वहाँ उसने राज्य सरकारों का भी ध्यान रखा है। यह सम्भव है कि किसी राज्य में वन अधिनियम के प्रवर्तन से पूर्व वहाँ की सरकार कोई शुल्क उद्गृहीत करती रही हो। ऐसी दशा में धारा ३६ (३) के द्वारा उन्हें विधिमान्य बना दिया। यहीं नहीं, धारा ३६ (४) के द्वारा केन्द्रीय सरकार ने राज्य सरकारों को कोई शुल्क जिसे वे संविधान के प्रारम्भ से पूर्व इस धारा के उस समय प्रवृत्त रूप में विधिपूर्णतः उद्गृहीत

करती थीं, लगातार उद्गृहीत करते रहने के लिए भी उस समय तक के लिए प्राधिकृत कर दिया जब तक कि संसद कोई प्रतिकूल उपबन्ध न कर दे। यद्यपि केन्द्रीय सरकार ने राज्य सरकारों को शुल्क उद्ग्रहण करने की शक्ति प्रदान की तथापि उसने इस बात का ध्यान रखा कि राज्य सरकार शुल्क उद्ग्रहण करने में विभिन्न स्थानों की इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज में भेदभाव न बरत सके। इसके लिए उसने धारा ३९(४) बाद एक परन्तुक जोड़ दिया जिसके अनुसार राज्य सरकार को (i) अपने राज्य में पैदा होने वाली तथा राज्य में बाहर से आने वाली तथा (ii) विभिन्न स्थानों से राज्य में आने वाली इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज में भेद-भाव करने वाला शुल्क लगाने से वर्जित कर दिया। दूसरे शब्दों में, राज्य सरकार अपने राज्य में होने वाली इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज पर कम और बाहर से आने वाली समरूप इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज पर अधिक शुल्क नहीं लगा सकती। इसी प्रकार वह भिन्न-भिन्न स्थानों की इमारती लकड़ी या वन-उपज पर भिन्न-भिन्न शुल्क नहीं लगा सकती।

धारा ४० का तात्पर्य यह है कि किसी इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज पर क्रयधन या स्वामिस्व की वसूली को धारा ३९ प्रभावित नहीं करती चाहे क्रयधन या स्वामिस्व अभिवहन में उसी रीति से वसूल हो रहा हो जिससे शुल्क वसूल हो रहा हो। **थौडन इबोमचा सिंह बनाम मुख्य आयुक्त मनीपुर वाद (ए० आई० आर० १९६४ मनीपुर ४६)** में अभिनिर्धारित किया गया है कि स्वामिस्व का उल्लेख वन अधिनियम की धारा ४० में हैं और यह धारा कहती है कि वन अधिनियम के अध्याय ६ में कोई बात स्वामिस्व के रूप में प्राभार्य राशि को सीमित नहीं कर सकती चाहे वह इमारती लकड़ी के अभिवहन के दौरान उसी रीति से उद्गृहीत होता हो जिससे शुल्क होता हो। वास्तव में स्वामिस्व इमारती लकड़ी का मूल्य है और उसे क्रयधन, जो शुल्क से बिलकुल भिन्न है, समझना चाहिए। मुख्य आयुक्त मनीपुर को राज्य सरकार बनाते हुए भारतीय संघ की अधिसूचना के होते हुए, सरकारी वन से हटायी जा रही इमारती लकड़ी पर स्वामिस्व नियत करने का आदेश देने के लिए मुख्य आयुक्त अनुज्ञात है। मुख्य आयुक्त द्वारा स्वामिस्व नियत करने का आदेश धारा ३९ से प्रभावित नहीं होता क्योंकि वह केवल उद्ग्रहणीय शुल्क की चर्चा करती है। इस प्रकार स्वामिस्व की वसूली अवैध नहीं कही जा सकती क्योंकि मुख्य आयुक्त समय-समय पर स्वामिस्व नियत करने का वैध प्राधिकारी है और स्वामिस्व उसी के आदेश से वसूल किया जा रहा है।

अध्याय ७

अभिवहन के दौरान इमारती लकड़ी और वन-उपज पर नियंत्रण

वन-उपज वनों में पैदा होती है और बेचने के लिए उसे मण्डियों तक भूमि मार्गों या जल-मार्गों द्वारा परिवहन करना पड़ता है। इस प्रकार परिवहन की जा रही या ले जाई जा रही वन-उपज को अभिवहन (transit) के दौरान वन-उपज कहते हैं। अभिवहन के दौरान इमारती लकड़ी तथा अन्य वन-उपज पर नियंत्रण दो मुख्य उद्देश्यों—(i) वन के स्वामी के हितों की रक्षा तथा (ii) इमारती लकड़ी तथा वन-उपज के स्वामी के हितों की रक्षा, से किया जाता है।

वन के स्वामी के हितों की रक्षा—सामान्यतया वन विस्तृत क्षेत्रों में फैले रहते हैं और उनके स्वामी को, चाहे वह राज्य सरकार हो या कोई अन्य व्यक्ति, वहाँ से ले जाई जा रही इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज के बारे में ज्ञान होना हमेशा सम्भव नहीं होता। इस स्थित का लाभ उठाकर अविवेकी क्रेता तथा अन्य व्यक्ति चोरी से वृक्षों को काटकर उनकी इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज एकत्र कर मण्डियों में ले जाते हैं। ऐसी दशा में यदि अभिवहन के दौरान इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज पर नियंत्रण न हो तो चोरी को रोकना कठिन हो जाता है और वन के स्वामी के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त वन लौटों का मूल्य बहुत होता है। पर्वतीय क्षेत्रों में वहाँ से इमारती लकड़ी निकालने में भी बहुत धन लगता है। ऐसी दशा में क्रेता सम्पूर्ण मूल्य वन-उपज निकालने से पूर्व नहीं दे पाता। इसके लिए किस्तें बनाई जाती हैं। इन किस्तों की वसूली भी अभिवहन के दौरान इमारती लकड़ी पर नियंत्रण रखकर ही सम्भव है। पर्वतीय क्षेत्रों में से निकाले जाने वाली इमारती लकड़ी नदी नालों में बहाकर निकाली जाती है। निहित स्वार्थ वाले व्यक्तियों को जल मार्गों में बाधा उपस्थित करने से रोकने के लिए अभिवहन के दौरान इमारती लकड़ी के नियंत्रण तथा उनके सम्बन्ध में नियम बनाने की शक्ति की आवश्यकता है।

इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज के स्वामी के हितों की रक्षा—सरकार को इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज के स्वामियों के हितों की रक्षा की चिन्ता रहती है क्योंकि उनसे उसे क्रय मूल्य तथा अन्य शुल्क आदि वसूल करने हैं। वन से इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज की मण्डियाँ बहुत दूर होती हैं और अभिवहन के दौरान

उस पर क्रेता का नियंत्रण बहुत कम होता है। इससे चोरी की सम्भावना बढ़ जाती है। कभी-कभी इमारती लकड़ी बाढ़ में बह जाती है और नदी तटों से दूर विस्तृत क्षेत्र में फैल जाती है। ऐसी दशा में वन-उपज की रक्षा तभी हो सकती है जब अभिवहन के दौरान वन-उपज के नियंत्रण के लिए वन अधिनियम में उपबन्ध हो और सरकार को आवश्यक नियम बनाने की शक्ति हो। बाढ़ में बही इमारती लकड़ी के स्वामित्व सम्बन्धी विवादों को सुलझाने के लिए सम्पत्ति चिह्नों के पंजीकरण के उपबन्ध होना चाहिए ताकि एक क्रेता दूसरे क्रेता की इमारती लकड़ी न चुराले।

वन-उपज के अभिवहन को विनियमित करने सम्बन्धी उपबन्ध

धारा ४१.—(१) इमारती लकड़ी के बहाने के विषय में, सब नदियों और उनके तटों का नियंत्रण और थल या जल द्वारा अभिवहन में इमारती लकड़ी और अन्य वन-उपज का नियंत्रण, राज्य सरकार में निहित है और वह सब इमारती लकड़ी और अन्य वन-उपज के अभिवहन को विनियमित करने के लिये नियम बना सकेगी।

(२) विशेषत: और पूर्ववर्ती शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ऐसे नियम—

(क) उन मार्गों को विहित कर सकेंगे जिनके द्वारा ही इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज, राज्य में आयात या राज्य से निर्यात या राज्य के अन्दर स्थानान्तरित की जा सकेगी;

(ख) किसी ऐसे अधिकारी के पास के बिना, जो उसे देने के लिए सम्यक् रूप से प्राधिकृत है या ऐसे पास की शर्तों के अनुसार से अन्यथा ऐसी इमारती लकड़ी या अन्य उपज के आयात या निर्यात या स्थानान्तरण को प्रतिषिद्ध कर सकेंगे;

(ग) ऐसे पासों के दिए जाने, पेश करने और वापस करने के लिए और उनके लिए फीसों के दिए जाने के लिए उपबन्ध कर सकेंगे;

(घ) अभिवहन में की इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज को, जिसके विषय में यह विश्वास करने का कारण है कि उसकी कीमत के कारण या उस पर देय किसी शुल्क, फीस या स्वामिस्व या प्रभार के कारण कोई धन सरकार को देय है या जिस पर इस अधिनियम के प्रयोजन के लिए चिन्ह लगाना वांछनीय है, रोक लेने, उसके बारे में रिपोर्ट देने, उसे परीक्षित करने या चिन्हित करने के लिए उपबन्ध कर सकेंगे;

(ङ) उन डिपुओं की स्थापना और विनियमन के लिए, जिसमें ऐसी इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज उन व्यक्तियों द्वारा, जिनके भारसाधन में वह है, परीक्षा के लिए या ऐसे धन के दिए जाने के लिए, या इस हेतु कि ऐसे चिन्ह उन पर लगाए जाएँ, ले जाई जाएगी और उन शर्तों का जिनके अधीन ऐसी इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज ऐसे डिपुओं को लाई जाएगी, उनमें संगृहीत की जाएगी, और उनसे हटाई जाएगी, उपबन्ध कर सकेंगे;

(च) इमारती लकड़ी और अन्य वन-उपज के अभिवहन के लिए प्रयुक्त किसी नदी की धारा या तटों को बन्द करना या बाधित करना और ऐसी नदी में घास, झाड़-झाँखड़, शाखाएँ या पत्तियाँ फेंकना या कोई अन्य कार्य करना जिससे ऐसी नदी बन्द या बाधित हो जाए, प्रतिषिद्ध कर सकेंगे;

(छ) ऐसी नदी की धारा या किनारों की किसी बाधा के निवारण या हटाने के लिए और उस व्यक्ति से, जिसके कार्यों और उपेक्षा के कारण यह आवश्यक हुआ है, ऐसे निवारण या हटाने का खर्चा वसूल करने के लिए उपबन्ध कर सकेंगे;

(ज) विनिर्दिष्ट स्थानीय सीमाओं के अन्दर, लकड़ी की चिराई के लिए गड्ढे बनाना, इमारती लकड़ी को संपरिवर्तित करना, काट लेना, जलाना, छिपाना या उस पर चिन्ह लगाना, उस पर किन्हीं चिन्हों को बदलना या मिटाना या चिन्ह लगाने वाले हथौड़े या इमारती लकड़ी को चिन्हित करने के लिए प्रयुक्त अन्य उपकरणों को कब्जे में रखना या साथ ले जाना, पूर्ण रूप से या शर्तों के अधीन प्रतिषिद्ध कर सकेंगे;

(झ) इमारती लकड़ी के लिए सम्पत्ति सम्बन्धी चिन्हों के प्रयोग और ऐसे चिन्हों के रजिस्ट्रीकरण को विनियमित कर सकेंगे, उस समय को विहित कर सकेंगे, जिसके लिए ऐसा रजिस्ट्रीकरण प्रभावी रहेगा, ऐसे चिन्हों की उस संख्या को सीमित कर सकेंगे जो किसी व्यक्ति द्वारा रजिस्ट्रीकृत किए जा सकेंगे, और ऐसे रजिस्ट्रीकरण के लिए फीसों के उद्ग्रहण के लिए उपबन्ध कर सकेंगे।

(३) राज्य सरकार निदेश दे सकेगी कि इस धारा के अधीन बनाया गया कोई नियम इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज के किसी विनिर्दिष्ट वर्ग को या किसी विनिर्दिष्ट स्थानीय क्षेत्र को लागू नहीं होगा।

संशोधन

उत्तर प्रदेश संशोधन—उत्तर प्रदेश सरकार ने १९६५ के अधिनियम २३ की धारा १३ के द्वारा मूल अधिनियम की धारा ४१(२) के पश्चात् निम्नलिखित नयी उपधाराएँ बढ़ा दी हैं, अर्थात्—

(2-क) राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा या तो बिना शर्त के अथवा ऐसी शर्तों के अधीन जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट की जाएँ, किसी वन अधिकारी को जो वन संरक्षक (कंसरवेटर) से नीचे पद का न हो, उपधारा (२) के खण्ड (ग) के अधीन फीस विहित करने की शक्ति प्रत्यायोजित कर सकेगी।

(२-ख) किसी न्यायालय के निर्णय, डिक्री या आदेश के होते हुए भी, उपधारा (२) के खण्ड (ख) में विनिर्दिष्ट पासों के बारे में संदाय की जाने वाली फीसों को विहित करता हुआ कोई नियम जिसका इण्डियन फॉरेस्ट (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम १९६५ के प्रारम्भ होने से पूर्व वन संरक्षक (कंसरवेटर) द्वारा बनाया जाना तात्पर्यित है, उपधारा (२-क) के अधीन प्रत्यायोजित शक्ति के अधीन ऐसे बनाया हुआ समझा जाएगा, मानों उपधारा (२-क) के उपबन्ध सदैव प्रवृत्त रहे हों

और वन संरक्षक तद्धीन सम्यक् रूप से प्राधिकृत रहा हो और वह विधिमान्य समझा जाएगा तथा सदैव विधिमान्य रहा हुआ समझा जाएगा और तब तक प्रवृत्त बना रहेगा जब तक कि, यथास्थिति, राज्य सरकार या सम्यक् रूप से प्राधिकृत किसी वन संरक्षक द्वारा परिवर्तित, निरस्त या संशोधित न कर दिया जाए :

परन्तु इस धारा की किसी बात से यह न समझा जाएगा कि वह उक्त अधिनियम के प्रारम्भ होने से पूर्व किए गए किसी कार्य के लिए किसी व्यक्ति को धारा ४२ के अधीन अभियोजित करने या दण्ड देने का प्राधिकार देती है।

टिप्पणी—धारा ४१ में प्रयुक्त 'इमारती लकड़ी और अन्य वन-उपज' पद केवल सरकारी वनों की इमारती लकड़ी तथा अन्य वन-उपज के लिए ही प्रयोग में नहीं लाया गया है वरन् इसमें धारा २(४) की परिभाषा के अनुसार अन्य स्त्रोतों से लाई जाने वाली इमारती लकड़ी और अन्य वन-उपज सम्मिलित है। **लाल बादशाह बनाम सम्राट वाद** (ए० आई० आर० १९२८ लाहौर ८०) में अभिनिर्धारित किया गया है कि धारा ४१ में प्रयुक्त 'इमारती लकड़ी और अन्य वन-उपज' शब्द उसी व्यापक अर्थ में प्रयोग में लाए गए हैं जिस अर्थ में वे धारा २ में परिभाषित है, न कि उस संकीर्ण और सीमित अर्थ में जिसमें वे धारा ३९ में प्रयोग में लाए गए हैं। इसी प्रकार **काशीप्रसाद साहू बनाम उड़ीसा राज्य वाद** (ए० आई० आर० १९६३ उड़ीसा २४) के निर्णय में कहा गया है कि यद्यपि भारतीय वन अधिनियम की अधिकांश धाराएँ सरकारी वन, सरकारी भूमि और ऐसी सम्पत्ति पर उगी हुई वन-उपज के बारे में हैं, तब भी बहुत सी धाराएँ, विशेषकर जो अध्याय ७ में सरकार को विनियामक शक्तियाँ प्रदान करती हैं, वन-उपज के स्थानान्तरण को नियंत्रण करने के लिए हैं, चाहे वह उपज सरकार की सम्पत्ति न भी हो। धारा ४३ में डिपो में रखी वन-उपज को हुए नुकसान के लिए सरकार या वन अधिकारी के उत्तरदायी न होने की बात उपबन्धित है। यदि धारा ४१ में प्रयुक्त वन-उपज शब्द का अर्थ सरकार की सम्पत्ति तक सीमित होता तो इस उपबन्ध की आवश्यकता नहीं थी।

धारा ४१(२) के प्रारम्भ के शब्द 'विशेषत: और पूर्ववर्ती शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना' बहुत महत्वपूर्ण हैं। धारा ४१ (२) के अधीन लगभग सभी राज्यों ने विस्तृत नियम बनाए हैं। यदि इन नियमों में से कोई ऐसे विषय के बारे में हो जो धारा ४१(२) में उल्लिखित न हो तब भी वे नियम अधिकारातीत नहीं होते क्योंकि उस धारा में कुछ विनिर्दिष्ट विषय ही दिए गए हैं। **बृन्दावन साह रामनाथ बनाम बिहार राज्य वाद** (१२ बी० आर० ६१३) में अभिनिर्धारित किया गया है कि उपधारा (२) उपबन्ध करती है कि उन विनिर्दिष्ट मामलों जिनके बारे में नियम बनाए जाएँ, का विहित करना उपधारा (१) में दी गई, उसमें उल्लिखित प्रयोजनों के लिए नियम बनाने की शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना है। ऐसे नियम का बनाना जो उपधारा (१) में उल्लिखित प्रयोजनों के पालन के लिए आवश्यक है, भले ही उसके अन्तर्गत आने वाला विषय उपधारा (२) में वर्णित

किसी खण्ड की परिधि में न आता हो, वैध और उचित है।

उत्तर प्रदेश सरकार ने धारा ४१ के अधीन विस्तृत नियम बनाए हैं और वे राजपत्र में अधिसूचना संख्या २०१८/१४-३-९५-१९७४ तारीख २७ सितम्बर १९७८ के रूप में प्रकाशित हुए हैं।

धारा ४१-क—धारा ४१ में किसी बात के होते हुए भी केन्द्रीय सरकार उस मार्ग को विहित करने के लिए नियम बना सकेगी जिसके द्वारा ही इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज ऐसे किन्हीं सीमा-शुल्क सीमान्तों के पार, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा परिनिश्चित है, उन राज्य क्षेत्रों से जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है, या उनसे आयात या निर्यात या स्थानान्तरित की जा सकेगी और धारा ४१ के अधीन बनाए गए कोई नियम इस धारा के अधीन बनाए गए नियमों के अधीन रहकर ही प्रभावी होंगे।

धारा ४२—(१) राज्य सरकार ऐसे नियमों के उल्लंघन के लिए शास्ति के रूप में ऐसी अवधि के लिए कारावास, जो छह मास तक का हो सकेगा, या जुर्माना, जो पाँच सौ रुपए तक का हो सकेगा या दोनों, ऐसे नियमों द्वारा विहित कर सकेगी।

(२) ऐसे नियम उपबन्ध कर सकेंगे कि उन मामलों में, जिनमें अपराध सूर्यास्त के पश्चात् या सूर्योदय के पूर्व या विधिपूर्ण प्राधिकारी का प्रतिरोध करने के लिए तैयारी करने के पश्चात् किया गया है या जहाँ कि अपराधी उसी प्रकार के अपराध के लिए पहले भी सिद्धदोष हो चुका है, उपधारा (१) में वर्णित शास्तियों से दुगुनी शास्तियाँ लगाई जा सकेंगी।

संशोधन

मध्यप्रदेश संशोधन—मध्यप्रदेश राज्य ने १९६५ के मध्यप्रदेश अधिनियम संख्या ९ की धारा ७ के द्वारा भारतीय वन अधिनियम की धारा ४२ (१) में 'जो छह मास तक का हो सकेगा, या जुर्माना, जो पाँच सौ रुपये तक का हो सकेगा' शब्दों के स्थान पर 'जो एक वर्ष तक का हो सकेगा, या जुर्माना, जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा' शब्द प्रतिस्थापित किए हैं।

धारा ४३—किसी हानि या नुकसान के लिए, जो किसी इमारती लकड़ी या वन-उपज को उस समय हो जाए, जबकि वह धारा ४१ के अधीन बनाए गए किसी नियम के अधीन स्थापित किसी डिपो में है, या जब वह इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए अन्यत्र रोक रखी गई है, सरकार उत्तरदायी नहीं होगी, और जब तक कोई वन अधिकारी ऐसी हानि या नुकसान उपेक्षा, विद्वेष या कपट से नहीं करता है, तब तक वह ऐसी हानि या नुकसान के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

धारा ४४—ऐसे किसी डिपो में किसी सम्पत्ति को संकटापन्न करने वाली दुर्घटना या आपात की दशा में ऐसे डिपो में, चाहे सरकार द्वारा या चाहे किसी प्राइवेट व्यक्ति द्वारा, नियोजित हर व्यक्ति ऐसा संकट टालने या नुकसान या हानि से ऐसी सम्पत्ति को बचाने के लिए उसकी अपनी सहायता माँगने वाले किसी वन अधिकारी या पुलिस अधिकारी को सहायता देगा।

अध्याय ८

बहती हुई और अटकी हुई इमारती लकड़ी के संग्रहण पर नियन्त्रण

पर्वतीय क्षेत्र में इमारती लकड़ी के परिवहन की सबसे सस्ती रीति जल द्वारा बहान है। इस रीति में इमारती लकड़ी नदी में बहा दी जाती है। एक-एक कर के बहती हुई इमारती लकड़ी के टुकड़े पर्वतीय नदी में अटकते रहते हैं। लकड़ी बहान के लिए उसका स्वामी कुछ मजदूर लगाता है। मजदूरों का यह दल बहती हुई इमारती लकड़ी के पीछे चलता है और अटके हुए टुकड़ों को फिर से बहाता रहता है। जब नदी पर्वतों से निकल कर मैदान में आती है तो उसकी चौड़ाई बढ़ जाती है और गति कम हो जाती है। इस कारण इमारती लकड़ी के टुकड़े अलग-अलग नहीं बहाए जा सकते। इस परिस्थिति में उनको बहाने की एक मात्र रीति बेड़ा बहान हो सकती है। बेड़े के रूप में बाँधने के लिए इमारती लकड़ी के टुकड़ों का संग्रहण करना पड़ता है। इसीलिए नदी के मैदानों में पहुँचते ही उस पर बूम बनाया जाता है और उस बूम पर इमारती लकड़ी के टुकड़ों का संग्रहण करके उन्हें बेड़े के रूप में बाँधा जाता है। इन बेड़ों को बूम के नीचे से मण्डियों तक दो नाविक खेकर ले जाते हैं।

इस संक्षिप्त वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि जल द्वारा इमारती लकड़ी का बहाव निरापद है परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। नदी में पहली बार डाले जाने से लेकर बूम पहुंचने तक इमारती लकड़ी नदी में उसकी लम्बाई के अनुसार एक मास से लेकर चार और कभी-कभी पाँच मास तक रहती है। इस कालावधि में शीतकालीन वर्षा या वर्षा ऋतु की प्रारम्भिक वर्षा के कारण नदी में बाढ़ आ जाती है। फलस्वरूप या तो इमारती लकड़ी के कुछ टुकड़े किनारों पर चढ़ जाते हैं या बूम तोड़कर अधिकांश टुकड़े नदी के मैदानी भाग में और कभी समुद्र में, यदि वह पास हो, बह जाते हैं। नदी के मैदानी भाग में बाढ़ के साथ बहे हुए टुकड़े बाढ़ घटने पर मैदानों में दूर-दूर फैल जाते हैं और कभी-कभी चोरी होने या न मिलने के कारण खो जाते हैं। साधारण परिस्थितियों में भी नदीतटों के ग्रामों के निवासियों द्वारा चोरी करने के कारण बहान हानि ५%से १०%तक होती है। बाढ़ आने पर तो यह हानि कभी-कभी ५०% तक पहुंच जाती है। इस हानि से क्रेताओं और अन्य स्वामियों को बचाने के लिए यह आवश्यक है कि राज्य सरकार को विस्तृत

क्षेत्र में बिखरी हुई इमारती लकड़ी का संग्रहण करने, उस दशा में उसकी चोरी से रक्षा करने, संगृहीत इमारती लकड़ी स्वामित्व सम्बन्धी दावों को निपटाने तथा स्वामी के न होने की दशा में उसके व्ययन(disposal) के लिए नियम बनाने की शक्ति हो। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वन अधिनियम की धारा ४५ से धारा ५१ तक में उपबन्ध बनाए गए हैं। इन उपबन्धों के अनुसार वन सीमा ही नहीं वरन् उसके बाहर नदी तटों से बहुत दूरी तक इस प्रकार बिखरी हुई इमारती लकड़ी के संग्रहण तथा उसके व्ययन की शक्ति राज्य सरकार को मिल जाती है।

बहती हुई और अटकी हुई इमारती लकड़ी के संग्रहण सम्बन्धी उपबंध

धारा ४५—(१) **बहती हुई, किनारे से लगी हुई, अटकी हुई या डूबी हुई सब इमारती लकड़ी, ऐसे सब काष्ठ और इमारती लकड़ी, जिस पर ऐसे चिन्ह लगे हैं जो धारा ४१ के अधीन बनाए गए नियमों के अनुसार रजिस्ट्रीकृत नहीं हैं, या जिस पर चिन्ह अग्नि द्वारा या अन्यथा मिटाए, बदले या बिगाड़े गए हैं, और ऐसे क्षेत्रों में जैसे राज्य सरकार विनिर्दिष्ट करे, सभी अचिन्हित काष्ठ और इमारती लकड़ी, जब तक कि कोई व्यक्ति इस अध्याय में यथा उपबन्धित रूप में उन पर अपना अधिकार और हक सिद्ध नहीं कर दे, सरकार की सम्पत्ति समझी जाएगी।**

(२) **ऐसी इमारती लकड़ी किसी वन अधिकारी या अन्य व्यक्ति द्वारा, जो उसे धारा ५१ के अधीन बनाए गए किसी नियम के आधार पर संगृहीत करने का हकदार है, संगृहीत की जा सकेगी और ऐसे किसी डिपो में लाई जा सकेगी जिसे वन अधिकारी बहती हुई इमारती लकड़ी की प्राप्ति के लिए अधिसूचित करे।**

(३) **राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इमारती लकड़ी के किसी वर्ग को इस धारा के उपबन्धों से छूट दे सकेगी।**

टिप्पणी—यद्यपि इस धारा में नदी तल में दबी इमारती लकड़ी का उल्लेख नहीं है तथापि **रामरंजन मलिक बनाम सैक्रेटरी आफ स्टेट वाद** (ए० आई० आर० १९३१ कलकत्ता ४३०) में अभिनिर्धारित किया गया कि नदी तल में दबी या गड़ी हुई पाई गई इमारती लकड़ी का मामला वन अधिनियम की धारा ४५ के उपबन्धों के अन्तर्गत आता है।

धारा ४६—**धारा ४५ के अधीन संगृहीत इमारती लकड़ी की लोक सूचना वन अधिकारी द्वारा समय-समय पर दी जाएगी। ऐसी सूचना में इमारती लकड़ी का वर्णन अन्तर्विष्ट होगा, और उस इमारती लकड़ी पर दावा करने वाले किसी व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाएगी कि तुम ऐसी सूचना की तारीख से दो मास से अन्यून कालावधि के अन्दर ऐसे दावे का लिखित कथन उपस्थित करो।**

धारा ४७—(१) **जबकि यथा पूर्वोक्त जैसा कोई कथन उपस्थित किया जाए, तब वन अधिकारी ऐसी जाँच करने के पश्चात्, जिसे वह ठीक समझता है, ऐसा करने के लिए अपने कारणों को अभिलिखित करने के पश्चात् या तो दावे को खारिज कर सकेगा या इमारती लकड़ी का परिदान दावेदार को कर सकेगा।**

(२) यदि एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा ऐसी इमारती लकड़ी पर दावा किया जाता है, तो वन अधिकारी या तो ऐसे ऐसे व्यक्तियों में से किसी को, जिसे वह उसका हकदार समझता है, परिदत्त कर सकेगा या दावेदारों को सिविल न्यायालयों को निर्देशित कर सकेगा और ऐसे किसी न्यायालयों से उस इमारती लकड़ी के व्ययन सम्बन्धी आदेश की प्राप्ति के लम्बित रहने तक उसे अपने कब्जे में रख सकेगा।

(३) जिस किसी व्यक्ति का दावा इस धारा के अधीन खारिज किया जा चुका है वह अपने द्वारा दावाकृत इमारती लकड़ी का कब्जा वापिस लेने के लिए वाद ऐसी खारिजी की तारीख से तीन मास के अन्दर संस्थित कर सकेगा, किन्तु कोई व्यक्ति ऐसी खारिजी या किसी इमारती लकड़ी के रोक रखे जाने या हटाने या इस धारा के अधीन अन्य व्यक्ति को इसके परिदान के कारण प्रतिकर या खर्चा सरकार से या किसी वन अधिकारी से वसूल नहीं करेगा।

(४) जब तक कि कोई ऐसी कोई इमारती लकड़ी परिदत्त नहीं की गयी है या इस धारा में यथा उपबन्धित कोई वाद संस्थित नहीं किया गया है, तब तक कोई इमारती लकड़ी किसी सिविल, दण्ड या राजस्व न्यायालय की आदेशिका के अधीन नहीं होगी।

धारा ४८—यदि यथा पूर्वोक्त ऐसा कोई कथन उपस्थित नहीं किया जाता या यदि दावेदार धारा ४६ के अन्तर्गत निकाली गयी सूचना द्वारा नियत रीति से या कालावधि के अन्दर दावा करने का लोप करता है या अपने द्वारा इस प्रकार का दावा किए जाने और उस दावे के खारिज किए जाने पर ऐसी इमारती लकड़ी का कब्जा लेने के लिए धारा ४७ द्वारा नियत अपर कालावधि के अन्दर वाद संस्थित करने का लोप करता है, तो ऐसी इमारती लकड़ी का स्वामित्व सरकार में या उस दशा में, जिसमें कि ऐसी इमारती लकड़ी धारा ४७ के अधीन अन्य व्यक्ति को परिदत्त की गई है, ऐसे व्यक्ति में उन सब विल्लंगमों से मुक्त होकर निहित होगा, जिन्हें उसने सृष्ट नहीं किया है।

धारा ४९—किसी हानि या नुकसान के लिए जो धारा ४५ के अधीन संगृहीत किसी इमारती लकड़ी को हुई या हुआ है, सरकार उत्तरदायी नहीं होगी और जब तक कि कोई वन अधिकारी ऐसी हानि या नुकसान, उपेक्षा, विद्वेष, या कपट से नहीं करता, तब तक वह ऐसी हानि या नुकसान के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

धारा ५०—जब तक कि कोई व्यक्ति ऐसी राशि जो धारा ५१ के अधीन बने किसी नियम के अधीन देय है, वन अधिकारी या अन्य व्यक्ति को, जो उसे प्राप्त करने का हकदार है, उसके लिए नहीं चुका देता, तब तक वह उपरोक्त रूप में संगृहीत या परिदत्त इमारती लकड़ी का कब्जा लेने का हकदार नहीं होगा।

धारा ५१—(१) राज्य सरकार निम्नलिखित बातों का विनियमन करने के लिए नियम बना सकेगी, अर्थात्—

(क) धारा ४५ में वर्णित सब इमारती लकड़ी का उद्धारण, संग्रहण और व्ययन;

(ख) इमारती लकड़ी के उद्धारण और संग्रहण के लिए प्रयुक्त नावों का प्रयोग और रजिस्ट्रीकरण,

(ग) ऐसी इमारती लकड़ी के उद्धारण, संग्रहण, स्थानान्तरण, भण्डार में रखने या व्ययन के लिए दी जाने वाली राशियाँ, और

(घ) ऐसी इमारती लकड़ी को चिन्हित करने के लिए प्रयोग में आने वाले हथौड़े और अन्य उपकरणों का प्रयोग और रजिस्ट्रीकरण।

(२) राज्य सरकार इस धारा के अधीन बने किन्हीं नियमों के उल्लंघन के लिए, शास्तियों के रूप में, ऐसी अवधि का कारावास, जो छह मास तक का हो सकेगा, या जुर्माना, जो पाँच सौ रुपए तक का हो सकेगा या दोनों, विहित कर सकेगी।

संशोधन

मध्यप्रदेश संशोधन—मध्यप्रदेश सरकार ने १९६५ के मध्यप्रदेश अधिनियम संख्या ९ की धारा ८ के द्वारा भारतीय वन अधिनयम, १९२७ की धारा ५१ की उपधारा (२) में 'जो छह मास तक का हो सकेगा या जुर्माना, जो पाँच सौ रुपए तक का हो सकेगा' शब्दों के स्थान पर 'जो एक वर्ष तक का हो सकेगा या जुर्माना, जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा' शब्द प्रतिस्थापित किए हैं।

टिप्पणी–धारा ४६ से धारा ५० तक में धारा **४५ के** अधीन संगृहीत इमारती लकड़ी के व्ययन की प्रक्रिया का वर्णन है। धारा ५१ में इस सम्बन्ध में नियम बनाने और शास्तियाँ विहित करने की शक्ति राज्य सरकार को मिली है। इस अध्याय की धारा ४५ और उसके पश्चात्वर्ती धाराओं का उद्देश्य बहती हुई या अटकी हुई इमारती लकड़ी के स्वामियों के अधिकारों को विनियमित करना है, न कि उनको उन अधिकारों से वंचित करना। ये धाराएँ इमारती लकड़ी के किसी अधिकार को न तो उसके स्वामी से छीनती हैं और न उन्हें सरकार को अन्तरित करती हैं। अधिनियम की शर्तों का अनुपालन सरकार के लिए बाध्यकर है। [**राम रंजन मलिक बनाम सैक्रेटरी** ऑफ स्टेट(ए० आई० आर० १९३१ कलकत्ता ४३०)

इसी प्रकार **अमृतेश्वरी देवी बनाम सैक्रेटरी ऑफ स्टेट वाद (आई० एल० आर० २४ कलकत्ता ५०४)** में अभिनिर्धारित किया गया है कि वन अधिनियम का का यह प्रभाव नहीं है कि वह बहती हुई या अटकी हुई इमारती लकड़ी के किसी अधिकार को उसके स्वामी से लेकर सरकार में निहित करता है; अधिनियम का उद्देश्य अधिग्रहण नहीं है, वरन् विनियमन है और ये अधिकार उसी तरह बने रहते हैं जैसे वे थे। जब सरकारी अधिकारियों द्वारा इमारती लकड़ी संगृहीत की जाती है तो वह सरकार की सम्पत्ति नहीं बन जाती वरन् वह उनके द्वारा उस व्यक्ति, जो अपना सर्वोत्तम हक दिखा सके, की ओर से धारण की जाती है। तात्पर्य यह है

कि सरकार बहती हुई या अटकी हुई या ऐसी अन्य प्रकार की इमारती लकड़ी का संग्रहण करा सकती है परन्तु इससे उसको उस इमारती लकड़ी पर स्वामित्व या कोई अधिकार नहीं मिल जाता। उसे ऐसी सब इमारती लकड़ी के बारे में सबको सूचना देनी चाहिए और धारा ४७ से धारा ५० तक के उपबन्धों के अनुसार उसका व्ययन करना चाहिए। यदि सरकार इन नियमों का अनुपालन नहीं करती तो वह भी दोषी समझी जाएगी। सरकार को इमारती लकड़ी का संग्रहण का अधिकार अवश्य मिला है परन्तु उसके साथ यह कर्त्तव्य भी जुड़ा है कि वह वन अधिनियम के अध्याय ८ की धाराओं के अनुसार उसका व्ययन भी करे।

धारा ५१ के अधीन बने नियमों के उल्लंघन के लिए किसी व्यक्ति को वैध रूप से दोषसिद्ध करने से पूर्व यह साबित किया जाना चाहिए कि इमारती लकड़ी जो उसके कब्जे में पाई गयी बहती हुई या अटकी हुई इमारती लकड़ी थी। यह साबित करने के बाद यह भी साबित करना चाहिए कि अभियुक्त का कब्जा अनन्य रूप से था। **नारायण सिंह बनाम सम्राट वाद (१९०२ पी० एल० आर० ५३६)** में अभिनिर्धारित किया गया है कि सरकार की शहतीरों को अपने कब्जे में रखने के कारण धारा ५१ के अधीन अर्जीदार की दोषसिद्धि उस दशा में वैध नहीं है जहाँ शहतीर खुले खेत में छिपाए हुए पाए गए क्योंकि इस दशा में यह नहीं कहा जा सकता कि अर्जीदार का उन पर अनन्य रूप से कब्जा था।

उत्तर प्रदेश सरकार ने धारा ४५ के अधीन विनिर्दिष्ट क्षेत्र और धारा ५१ के अधीन विस्तृत नियम अधिसूचना संख्या २०१८/१४-३-९५-१९७४ तारीख २७ सितम्बर १९७८ के अध्याय ३ में प्रकाशित किए हैं।

अध्याय ९

शास्तियाँ और प्रक्रिया

(Penalties and Procedure)

भारतीय वन अधिनियम के अध्याय ९, जिसका शीर्षक 'शास्तियाँ और प्रक्रिया' है, में शास्तियाँ तो केवल दो विशिष्ट अपराधों के लिए दी गयी हैं। अन्य अपराधों के लिए शास्तियाँ अधिनियम के विभिन्न अध्यायों में वर्णित हैं। अतः इस विषय के व्यापक और पूर्ण ज्ञान के लिए विभिन्न अपराधों के लिए वन अधिनियम में विहित शास्तियों का वर्णन यहाँ किया जाएगा। वन अधिनियम में प्रक्रिया का वर्णन भी संक्षिप्त है। उसमें वन अपराधों के अन्वेषण के सम्बन्ध में वन अधिकारियों तथा पुलिस अधिकारियों की शक्तियाँ, वन अपराधों के संक्षिप्ततः विचारण की मजिस्ट्रेटों की शक्ति, वन अधिकारियों की वन अपराधों के शमन करने की शक्ति तथा वन अपराधों के सम्बन्ध में अपनायी जाने वाली संक्षिप्त प्रक्रिया का वर्णन है। प्रक्रिया के लिए भी दण्ड प्रक्रिया संहिता के महत्त्वपूर्ण अंशों के ज्ञान की अपेक्षा है। अतः इस अध्याय में सर्वप्रथम वन अपराधों का पूर्ण तथा विस्तृत वर्णन तथा उनकी शास्तियाँ, इस अध्याय में वन अधिनियम के उपबन्ध तथा उन पर टिप्पणी और अन्त में प्रक्रिया का वर्णन किया जाएगा।

वन अपराधों का वर्गीकरण

भारतीय वन अधिनियम १९२७ के अनुसार वन अपराध नीचे लिखे तीन वर्गों में विभाजित किए जा सकते हैं :

(१) वन सम्बन्धी अपराध;

(२) अभिवहन के दौरान इमारती लकड़ी और अन्य वन-उपज सम्बन्धी अपराध; और

(३) अन्य अपराध।

(१) **वन सम्बन्धी अपराध**—भारतीय वन अधिनियम में (i) आरक्षित वन, (ii) ग्राम वन, (iii) संरक्षित वन, और (iv) वन जो सरकार की सम्पत्ति नहीं हैं, का वर्णन है। इन वनों से सम्बंधित अध्यायों में आपराधिक कार्यों का वर्णन कर उनके लिए शास्तियाँ भी विहित कर दी गई हैं।

(i) **आरक्षित वन**—आरक्षित वन के सम्बन्ध में विभिन्न उपबन्ध वन अधिनियम के अध्याय २ में वर्णित हैं। इसी अध्याय के अन्त की ओर धारा २६ (१) में आरक्षित वन तथा प्रस्थापित आरक्षित वन में प्रतिषिद्ध कार्यों का वर्णन है और इसी धारा

में उन कार्यों को करने के लिए शास्ति भी विहित है। इस धारा को धारा २६ (२) के साथ पढ़ने से विदित होता है कि वन अधिकारी की लिखित अनुज्ञा या राज्य सरकार द्वारा बनाए गए किसी नियम के अधीन किए गए कार्य को या धारा १५ (२) (ग) के अधीन चालू रखे गए या धारा २३ के अधीन दिए गए अनुदान या की गई संविदा द्वारा सृष्ट किसी अधिकार के प्रयोग को छोड़ आरक्षित वन में अन्य सब कार्य प्रतिषिद्ध हैं और इन कार्यों को करने वालों को छह मास तक का कारावास या पाँच सौ रुपए तक का जुर्माना या दोनों दण्ड दिए जा सकते हैं। मध्य प्रदेश को छोड़ सब राज्यों में शास्ति वही है जो मूल अधिनियम है। मध्यप्रदेश सरकार ने एक संशोधन द्वारा कारावास की अधिकतम अवधि एक वर्ष और जुर्माने की अधिकतम सीमा एक हजार रुपए कर दी है। इन दण्डों के अतिरिक्त सिद्धदोष करने वाला न्यायालय वन को नुकसान पहुँचाने के कारण कुछ प्रतिकर के संदाय का भी निदेश दे सकता है। धारा २६ (३) के अनुसार राज्य सरकार को यह शक्ति भी है कि यदि आरक्षित वन में जानबूझकर या घोर उपेक्षा द्वारा आग लगाई जावे तो उसके लिए लगाई गई शास्ति के अतिरिक्त राज्य सरकार ऐसे वन या उसके किसी प्रभाग में चरागाह या वन-उपज के अधिकारों का प्रयोग उतनी कालावधि के लिए, जो वह ठीक समझती है, निलम्बित करने का आदेश दे सकती है। बिहार सरकार ने राज्य सरकार की अधिकारों के प्रयोग को निलम्बित करने की शक्ति जानबूझकर या घोर उपेक्षा से लगाई गई आग के अतिरिक्त वन उपज की विस्तृत चोरी की घटनाओं के मामले में भी लगा दी है परन्तु चोरी की घटनाओं के फलस्वरूप अधिकारों के प्रयोग का निलम्बन केवल चार वर्ष तक का हो सकता है।

(ii) **ग्राम वन**—ग्राम वन से सम्बन्धित अध्याय में स्पष्ट रूप से कोई शास्ति नहीं लिखी है परन्तु उसमें यह लिखा है कि ग्राम वन में आरक्षित वनों से सम्बद्ध नियम लागू होते हैं। उत्तर प्रदेश में राज्य सरकार ने एक संशोधन करके ग्राम वन संरक्षित वन से भी बनाने का प्रावधान कर दिया है और इसलिए उस राज्य में ग्राम वन में उसी प्रकार के वन के नियम या शास्तियाँ लागू होती हैं, जिनसे ग्राम वन बना हो।

(iii) **संरक्षित वन**—संरक्षित वन से सम्बन्धित उपबन्ध अधिनियम के अध्याय ४ में वर्णित हैं। इसी अध्याय के अन्त की ओर धारा ३३ (१) में धारा ३० के अधीन निकाली गयी अधिसूचना या धारा ३२ के अधीन बनाए गए नियमों के उल्लंघन में किए गए कार्यों के लिए शास्ति विहित है। यह शास्ति छह मास तक का कारावास या पाँच सौ रुपए तक का जुर्माना या दोनों प्रकार के दण्ड हो सकती है। मध्यप्रदेश सरकार ने एक संशोधन करके कारावास की अधिकतम अवधि एक वर्ष और जुर्माने की अधिकतम सीमा एक हजार रुपए कर दी है। संरक्षित वन के अपराधों के सम्बन्ध में आरक्षित वन की तरह वन को हुए नुकसान के लिए प्रतिकर दिलाने का उपबन्ध धारा ३३ में नहीं है परन्तु जानबूझकर या घोर उपेक्षा द्वारा

लगाई गयी आग की घटनाओं के क्षेत्र में चरागाह या वन-उपज के सब अधिकारों को उतनी कालावधि के लिए, जो राज्य सरकार ठीक समझे, निलम्बित करने का उपबन्ध है। बिहार सरकार ने एक संशोधन द्वारा अधिकारों को निलम्बित करने की शक्ति की परिधि में वन-उपज की विस्तृत चोरी की घटनाओं को भी ले लिया है परन्तु चोरी की घटनाओं के फलस्वरूप अधिकारों के प्रयोग का निलम्बन केवल चार वर्ष तक का हो सकता है।

(iv) **वन जो सरकार की सम्पत्ति नहीं हैं**—जो वन सरकार की सम्पत्ति नहीं हैं उनके लिए शास्ति विहित करने का वैसे तो कोई प्रश्न ही नहीं है क्योंकि वे प्राइवेट सम्पत्ति हैं परन्तु लोकहित को देखते हुए उनमें कतिपय कार्यों को विनियमित या प्रतिषिद्ध करने की शक्ति धारा ३५ के अधीन सरकार में निहित है। यदि ऐसे वनों का स्वामी किसी विनियम या प्रतिषेध की उपेक्षा या जानबूझकर अवज्ञा करता है तो धारा ३६ के अधीन उस वन का प्रबन्ध संभालने और आरक्षित वनों से सम्बद्ध उपबन्ध लागू करने की शक्ति राज्य सरकार में निहित है। जब राज्य सरकार धारा ३६ ऐसे वनों पर लगा देती है तो ऐसे वनों से सम्बन्धित अपराधों के लिए आरक्षित वन सम्बन्धी शास्तियाँ दी जा सकती हैं।

मूल अधिनियम के अध्याय ५ के उपबन्ध अपने उद्देश्य की प्राप्ति में बहुत सफल नहीं होते। अतः गुजरात तथा महाराष्ट्र राज्यों ने धारा ३५ में विस्तृत संशोधन किए हैं। उत्तर प्रदेश सरकार ने धारा ३८ के बाद 'दावेदारों के वन' शीर्षक वाला एक नया अध्याय ५-क जोड़कर उसकी धारा ३८ (च) में ऐसे वनों में प्रतिषिद्ध कार्यों का वर्णन किया है और उनके लिए छह मास तक का कारावास या जुर्माना या दोनों प्रकार के दण्ड विहित किए हैं।

(२) **अभिवहन के दौरान इमारती लकड़ी और अन्य वन-उपज सम्बन्धी अपराध**—भारतीय वन अधिनियम की धारा ४१ के अधीन इमारती लकड़ी को बहाने के विषय में सब नदियों और उनके तटों का नियंत्रण और थल या जल द्वारा अभिवहन में की इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज का नियंत्रण सरकार में निहित है और वह इमारती लकड़ी और अन्य वन-उपज के अभिवहन को विनियमित करने के लिए नियम बना सकती है। इन नियमों के उल्लंघन के लिए धारा ४२ में उन्हीं नियमों में शास्ति विहित करने की शक्ति राज्य सरकार को दी गई है।

धारा ४२ (१) के अनुसार नियमों के उल्लंघन के लिए छह मास तक का कारावास और पाँच सौ रुपए तक का जुर्माना या दोनों दण्ड नियमों में विहित किए जा सकते हैं। धारा ४२ (२) में राज्य सरकार को यह भी शक्ति दी गई है कि वह उन मामलों में जिनमें अपराध सूर्यास्त के पश्चात् या सूर्योदय से पूर्व या विधिपूर्ण प्राधिकारी का प्रतिरोध करने के लिए तैयारी करने के पश्चात् किया गया है या जहाँ अपराधी उसी अपराध के लिए पहले भी सिद्धदोष हो चुका है, धारा ४१ (१) में वर्णित शास्तियों से दुगनी शास्तियाँ नियमों में विहित कर सकती है। मध्यप्रदेश

सरकार ने एक संशोधन द्वारा धारा ४१ (१) में कारावास की अधिकतम अवधि एक वर्ष और जुर्माने के अधिकतम सीमा एक हजार रुपए कर दी है।

जल द्वारा अभिवहन के दौरान बहती हुई या अटकी हुई या डूबी हुई इमारती लकड़ी के उद्धारण, संग्रहण तथा व्ययन और इनसे सम्बन्धित अन्य विषयों को विनियमित करने के लिए नियम बनाने की शक्ति धारा ५१ के अनुसार राज्य सरकार में निहित है। राज्य सरकार को यह भी शक्ति है कि इन नियमों में उनके उल्लंघन के लिए शास्ति के रूप में छह मास तक का कारावास या पाँच सौ रुपए तक का जुर्माना या दोनों दण्ड विहित कर सकती है। मध्यप्रदेश सरकार ने एक संशोधन द्वारा कारावास की अधिकतम अवधि एक वर्ष और जुर्माने की अधिकतम सीमा एक हजार रुपए कर दी है।

(३) **अन्य अपराध**—ऊपर वर्णित अपराध और उनके लिए शास्तियाँ वन अधिनियम के उन अध्यायों से सम्बद्ध हैं जिसका वर्णन अभी तक हो चुका है। इसके अतिरिक्त वन अधिनियम में कुछ अन्य अपराध कार्यों का वर्णन आने वाले अध्यायों में भी है। अतः उनका संक्षिप्त वर्णन यहाँ कर दिया जाता है ताकि विभिन्न वन अपराधों और उनकी शास्तियों का पूर्ण ज्ञान पाठक को हो जाए :

(i) **दोषपूर्ण अभिग्रहण के लिए दण्ड** (धारा ६२)—भारतीय वन अधिनियम की धारा ५२ के अनुसार वन विषयक अपराध में प्रयुक्त सब औजार, नाव, छकड़े (या अब यान) या पशुओं का अभिग्रहण वन अधिकारी या पुलिस अधिकारी कर सकता है। यह शक्ति इन अधिकारियों को अपराध होने का विश्वास होने पर प्रयोग में लानी चाहिए। परन्तु यदि इस शक्ति का दुरुपयोग होने लगे तो जन-साधारण को बहुत कष्ट होगा। इस सम्भावना पर अंकुश रखने के लिए धारा ६२ में दोषपूर्ण अभिग्रहण के लिए छह मास तक का कारावास या पांच सौ रुपए तक का जुर्माना या दोनों दण्ड दिये जा सकते हैं। मध्यप्रदेश सरकार ने एक संशोधन द्वारा कारावास की अधिकतम अवधि एक वर्ष और जुर्माने की अधिकतम सीमा एक हजार रुपए कर दी है।

(ii) **वृक्षों और इमारती लकड़ी पर चिन्हों के कूटकरण करने और उन्हें विरूपित करने और सीमा चिन्हों को बदलने के लिए शास्ति** (धारा ६३)—इस धारा के अनुसार जो लोक या किसी व्यक्ति को नुकसान या क्षति पहुंचाने के लिए जानबूझकर किसी इमारती लकड़ी या खड़े वृक्ष पर के क्रमशः सम्पत्ति चिन्ह या सरकारी चिन्ह को बदलेगा, विरूपित करेगा या मिटाएगा या वन के सीमा चिन्ह को बदलेगा, सरकाएगा, नष्ट करेगा या विरूपित करेगा वह दो वर्ष तक के कारावास या जुर्माने या दोनों से दण्डनीय होगा।

(iii) **आबद्ध व्यक्ति द्वारा आग न बुझाने या सहायता न देने के लिए शास्ति** (धारा ७९)—धारा ७९ (१) के अनुसार कतिपय वर्गों के व्यक्ति आरक्षित या संरक्षित वन की किसी आग को बुझाने के लिए कार्यवाही करने और ऐसे वनों में

अपराध को रोकने और अपराधी का पता चलाने में सहायता करने के लिए बाध्य हैं। यदि उन वर्गों के व्यक्ति धारा में वर्णित कार्यों में से कोई कार्य नहीं करते तो उनको धारा ७९ (२) के अनुसार एक महीने तक का कारावास या दो सौ रुपए तक का जुर्माना या दोनों दण्ड दिए जा सकते हैं :

(iv) **नियमों, जिनके उल्लंघन के लिए शास्ति विहित नहीं है, के भंग के लिए शास्ति (धारा ७७)**—जो व्यक्ति वन अधिनियम के अधीन बने किसी नियम को, जिसके उल्लंघन के लिए कोई विशेष शास्ति उपबन्धित नहीं है, भंग करता है वह एक मास तक के कारावास या पाँच सौ रुपये तक के जुर्माने से या दोनों से दण्डनीय होता है। मध्यप्रदेश सरकार ने एक संशोधन द्वारा कारावास की अधिकतम अवधि छह मास और जुर्माने की अधिकतम सीमा एक हजार रुपए कर दी है।

ऊपर किए गए वर्णन से स्पष्ट है कि भारतीय वन अधिनियम १९२७ के अनुसार निम्नलिखित दण्ड अभियुक्त को दिए जाते हैं :

(i) **कारावास**—यद्यपि कारावास की अधिकतम अवधि प्रत्येक अपराध के लिए स्पष्ट रूप से वन अधिनियम में लिखी है तथापि यह नहीं लिखा है कि कारावास सादा या कठिन होगा। साधारण खण्ड अधिनियम, १८९७ के अनुसार १८९८ या उसके बाद बनाए गए अधिनियमों में यदि केवल कारावास लिखा है तो उसका अर्थ दोनों भाँति के कारावासों से है। इस प्रकार वन अपराधों के लिए सादा या कठिन दोनों में से किसी भाँति का कारावास दिया जा सकता है। भारतीय वन अधिनियम में सामान्यतया कारावास की अवधि छह मास से अधिक नहीं है परन्तु धारा ६३ में वर्णित अपराध के लिए कारावास की अधिकतम अवधि दो वर्ष हो सकती है। मध्यप्रदेश सरकार ने वन अधिनियम की विभिन्न धाराओं में संशोधन करके जहाँ मूल अधिनियम में कारावास की अधिकतम अवधि एक मास है वहां उसे बढ़ाकर छह मास और जहाँ वह मूल अधिनियम में छह मास है वहाँ उसे बढ़ाकर एक वर्ष कर दिया है। भारतीय दण्ड संहिता की धारा ४३४ में भूमि चिन्हों के नष्ट करने या हटाने के लिए दोनों में से किसी भाँति का एक वर्ष तक का कारावास विहित है। इस प्रकार वन सीमा चिन्हों को हटाने, नष्ट करने, बदलने या विरूपित करने के लिए भारतीय वन अधिनियम में भारतीय दण्ड संहिता से अधिक दण्ड विहित है।

(ii) **जुर्माना**—सामान्यतया प्रत्येक अपराध के लिए भारतीय वन अधिनियम में जुर्माने की अधिकतम सीमा विहित है परन्तु धारा ६३ में जुर्माने की सीमा नहीं लिखी है। ऐसी दशा में भारतीय दण्ड संहिता की धारा ६३ के अनुसार जुर्माना किए गए अपराध के लिए अत्यधिक नहीं होना चाहिए। वन अधिनियम में सामान्यतया जुर्माने की अधिकतम राशि पांच सौ रुपए है। केवल धारा ७९ में जुर्माने की अधिकतम सीमा दो सौ रुपए है। मध्यप्रदेश सरकार ने विभिन्न संशोधनों द्वारा जुर्माने की अधिकतम सीमा एक हजार रुपए कर दी है।

ऐसी दशाओं में जहाँ कारावास और जुर्माना दोनों दण्ड दिए जाते हैं वहाँ

जुर्माना देने में व्यतिक्रम होने की दशा में कारावास की अवधि बढ़ जाती है। सिद्ध-दोष करने वाला न्यायालय निर्णय देते समय निर्णय में जुर्माना देने में व्यतिक्रम होने की दशा में बढ़ायी जाने वाली कारावास की अवधि भी लिख देता है। भारतीय दण्ड संहिता की धारा ६५ के अनुसार कारावास की बढ़ायी जाने वाली अवधि कारावास की उस अवधि की एक चौथाई से अधिक नहीं होती, जो अपराध के लिए अधिकतम नियत है।

(iii) **अधिहरण**—ऊपर लिखे दण्डों के अतिरिक्त भारतीय वन अधिनियम में वन अपराध से सम्बन्धित सम्पत्ति, उपकरण आदि के अधिहरण का भी उपबन्ध है और इस प्रकार यह तीसरे प्रकार का दण्ड हुआ। वन अधिनियम की धारा ५५ के अनुसार ऐसी सब इमारती लकड़ी या वन-उपज जो सरकार की सम्पत्ति नहीं है और जिसके विषय में वन अपराध किया गया है और ऐसे अपराध में प्रयुक्त सब औजार, नावें, छकड़े (या कई राज्यों में अब यान) और पशु अधिहरणीय हैं और उनका अधिहरण उस अपराध के लिए विहित किसी अन्य दण्ड के अतिरिक्त हो सकता है।

(iv) **प्रतिकर**—न्यायालय द्वारा दिए जाने वाले उपर्युक्त दण्डों के अतिरिक्त आरक्षित वन से सम्बद्ध अपराधों में न्यायालय वन को हुए नुकसान का प्रतिकर देने का भी कभी-कभी निदेश दे देता है। यह वास्तव में दण्ड नहीं है; यह तो वन को हुए नुकसान की क्षति-पूर्ति है या अभियुक्त द्वारा उपयोग में लायी गयी वन-उपज का मूल्य। वन अधिनियम के अधीन प्राधिकृत वन अधिकारियों को वन अपराध के लिए प्रतिकर लेने की शक्ति है। वन अधिनियम की धारा ६८ के अनुसार प्राधिकृत वन अधिकारी उस वन अपराध के लिए जिसके बारे में यह सन्देह हो कि वह किया गया है, प्रतिकर के रूप में कोई धनराशि ले सकते हैं। यद्यपि यह भी पारिभाषिक रूप से दण्ड नहीं है तथापि इसका प्रभाव उसी के समान होता है।

शास्ति और प्रक्रिया सम्बन्धी वन अधिनियम के उपबन्ध

धारा ५२—(१) जब कि यह विश्वास करने का कारण है कि किसी वन-उपज के बारे में कोई वन विषयक अपराध किया गया है, तब ऐसी उपज, सब औजारों, नावों, छकड़ों या पशुओं सहित, जिनका प्रयोग ऐसे अपराध के करने में हुआ है, किसी वन अधिकारी या पुलिस अधिकारी द्वारा अभिगृहीत की जा सकेगी।

(२) इस धारा के अधीन किसी सम्पत्ति का अभिग्रहण करने वाला हर अधिकारी ऐसी सम्पत्ति पर यह उपदर्शित करने वाला चिह्न लगाएगा कि उसका इस प्रकार अभिग्रहण हो गया है और यथाशक्य शीघ्र ऐसे अभिग्रहण की रिपोर्ट उस अपराध का, जिसके कारण अभिग्रहण हुआ है, विचारण करने के लिए अधिकारिता रखने वाले मजिस्ट्रेट को भेजेगा :

परन्तु जबकि वह वन-उपज, जिससे बारे में यह विश्वास है कि ऐसा अपराध हुआ है, सरकार की सम्पत्ति है और अपराधी अज्ञात है, तब यदि यथाशक्य शीघ्र

अधिकारी परिस्थितियों के बारे में रिपोर्ट अपने पदीय वरिष्ठ को दे देता है, तो वह पर्याप्त होगा।

संशोधन

उत्तर प्रदेश संशोधन—उत्तर प्रदेश सरकार ने १६६० के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या २१ की धारा ७ के द्वारा भारतीय वन अधिनियम, १६२७ की धारा ५२ में 'छकड़ों' के स्थान पर 'यानों' शब्द प्रतिस्थापित किया है।

पंजाब, मध्यप्रदेश तथा हिमाचल प्रदेश ने भी इस धारा में 'छकड़ों' के स्थान पर 'यानों' शब्द प्रतिस्थापित किया है।

टिप्पणी—इस धारा के अनुसार वन अधिकारी या पुलिस अधिकारी को केवल अपराध से सम्बद्ध समस्त उपकरणों आदि का अभिग्रहण करने की शक्ति है परन्तु अभिग्रहण करने वाले प्रत्येक अधिकारी को ऐसी सम्पत्ति पर अभिग्रहण उपदर्शित करने के लिए कोई चिह्न लगाना अनिवार्य है। साथ ही उसके लिए यह भी जरूरी है कि वह ऐसे अभिग्रहण की रिपोर्ट उस अपराध का जिसके कारण अभिग्रहण हुआ है विचारण करने के लिए अधिकारिता रखने वाले मजिस्ट्रेट को यथाशक्य शीघ्र भेजे। परन्तु जब अपराध से सम्बन्धित वन-उपज सरकार की सम्पत्ति है और अपराधी अज्ञात है तब यही पर्याप्त होता है कि वह अधिकारी परिस्थितियों के बारे में रिपोर्ट अपने पदीय वरिष्ठ को यथाशक्य शीघ्र भेजे। यदि वन अधिकारी अभिग्रहण की रिपोर्ट अधिकारिता रखने वाले मजिस्ट्रेट को नहीं भेजता तो वह अभिगृहीत वस्तुओं को अवैध रूप से रोके रखने का दोषी माना जा सकता है। **वामन रामचन्द्र गौण्डे बनाम दीपचन्द बालकिशन वाद** (आई० एल० आर० १५ मुम्बई २२६) में अभिनिर्धारित किया गया कि वन अधिकारी माल का निरोध इस आधार पर न्यायोचित नहीं बता सकता कि अपराध वन विधि के विरुद्ध हुआ है, यदि उसने मामले को न्यायालय के समक्ष ले जाने के बारे में इस धारा द्वारा अपेक्षित अनुक्रम का अनुपालन नहीं किया। परन्तु इस मामले में अपील न्यायालय ने यह देखते हुए कि वामन रामचन्द्र गौण्डे सहायक वन संरक्षक ने इस संदेह के कारण कि इमारती लकड़ी सरकारी वन से चुराई गई है, विशेषकर जबकि उसके साथ विधिमान्य पास नहीं था, उसे अभिगृहीत किया और बाद में पटेल द्वारा यह लिखकर देने पर कि वह उसके मल्की की है, इस आधार पर कि वह कुलकर्णी द्वारा हस्ताक्षरित नहीं है, मामले के सब तथ्य अपने वरिष्ठ अधिकारी को भेज दिए, गौण्डे द्वारा सद्भावपूर्वक कार्य करने का तर्क स्वीकार करके उसके विरुद्ध पारित जिला न्यायालय की डिक्री को उलट दिया। Seizure Confiscation

अभिग्रहण और अधिहरण में अन्तर—(i) अभिग्रहण एक अन्तरिम व्यवस्था है जिसमें अपराध से सम्बद्ध सम्पत्ति वन अधिकारी या पुलिस अधिकारी द्वारा अपने कब्जे में इसलिए ले ली जाती है कि विचारण के दौरान वह सबूत में प्रस्तुत की जा सके। इसके विपरीत, अधिहरण अन्तिम व्यवस्था है जिसमें अभियुक्त के दोष-

सिद्ध हो जाने पर उसके द्वारा प्रयुक्त उपकरण आदि तथा अपराध से सम्बद्ध उपज यदि वह सरकार की सम्पत्ति नहीं है, दण्ड के रूप में अधिहरण कर सरकार को सौंप दी जाती है।

(ii) अभिग्रहण अपराध होने के शीघ्र बाद किया जाता है और इसे वन या पुलिस अधिकारी अपने विवेक से करता है। यह दण्ड नहीं है। इसके विपरीत अधिहरण दण्ड है और उसका आदेश विचारण के अन्त में दोषसिद्ध करने वाला न्यायालय किसी अन्य दण्ड के साथ करता है।

धारा ५३—रेन्जर से अनिम्न पंक्ति वाला वन अधिकारी, जिसने या जिसके अधीनस्थ ने कोई औजार, नावें, छकड़े या ढोर धारा ५२ के अधीन अभिगृहीत किए हैं, उन्हें उनके स्वामी द्वारा ऐसे बन्धपत्र निष्पादित किए जाने पर निर्मुक्त कर सकेगा कि यदि और जब मुझसे ऐसी अपेक्षा की जाएगी, तो और तब मैं इस प्रकार निर्मुक्त सम्पत्ति उस मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश कर दूँगा जिसको उस अपराध का, जिसके कारण अभिग्रहण हुआ है, विचारण करने की अधिकारिता प्राप्त है।

संशोधन

उत्तर प्रदेश संशोधन—उत्तर प्रदेश सरकार ने १९६० के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या २१ की धारा ७ के द्वारा वन अधिनियम की धारा ५३ में 'छकड़े' के स्थान पर 'यान' शब्द प्रतिस्थापित किया है।

पंजाब, मध्यप्रदेश और हिमाचल प्रदेश राज्यों में भी विभिन्न संशोधनों द्वारा 'छकड़े' के स्थान पर 'यान' शब्द प्रतिस्थापित किया गया है।

धारा ५४—ऐसी किसी रिपोर्ट की प्राप्ति पर मजिस्ट्रेट सब सुविधापूर्ण शीघ्रता से, ऐसे उपाय करेगा जो अपराधी की गिरफ्तारी और विचारण और सम्पत्ति के विधि के अनुसार व्ययन के लिए आवश्यक हो।

टिप्पणी—इस धारा में प्रयुक्त 'ऐसी किसी रिपोर्ट' से तात्पर्य धारा ५२ के अधीन किए गए अभिग्रहण की रिपोर्ट से है। ऐसी रिपोर्ट में वन अधिकारी सामान्यतया अपराध की रिपोर्ट, उसके सम्बन्ध में किए गए अभिग्रहण तथा अन्य आवश्यक सूचना भी भेज देते हैं। ऐसी रिपोर्ट मिलने पर मजिस्ट्रेट सुविधापूर्वक शीघ्रता से उस पर कार्यवाही करता है। इस कार्यवाही की प्रक्रिया का वन अधिनियम में विस्तृत वर्णन नहीं है। प्रक्रिया के विस्तृत वर्णन के अभाव में मजिस्ट्रेट दण्ड प्रक्रिया संहिता में वर्णित प्रक्रिया का अनुपालन करता है।

धारा ५५—(१) ऐसी सब इमारती लकड़ी या वन उपज, जो सरकार की सम्पत्ति नहीं है और जिसके विषय में वनअपराध किया गया है और ऐसे वन विषयक अपराध के करने में प्रयुक्त सब औजार, नावें, छकड़े और पशु अधिहरणीय होंगे।

(२) ऐसा अधिहरण, ऐसे अपराध के लिए विहित किसी अन्य दण्ड के अतिरिक्त हो सकेगा।

संशोधन

उत्तर प्रदेश , पंजाब, मध्यप्रदेश तथा हिमाचल प्रदेश राज्यों ने विभिन्न संशोधनों द्वारा इस धारा में 'छकड़े' के स्थान पर 'यान' शब्द प्रतिस्थापित किया है।

टिप्पणी—धारा ५५ के अधीन कार्य करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि कि अभिगृहीत सम्पत्ति का स्वामी साथ हो और अभिग्रहण उससे किया जाए। **मौहम्मद खाँ बनाम सम्राटवाद** (ए० आई० आर० १९३८ नागपुर ३६५) में अभिनिर्धारित किया गया कि इस धारा में विधान मण्डल ने 'अधिहरण' शब्द का प्रयोग किया है जो भारतीय दण्ड संहिता में प्रयुक्त 'समपहरण' शब्द से भिन्न अर्थ वाला है। किसी सम्पत्ति का समपहरण उसके स्वामी से किया जा सकता है परन्तु किसी सम्पत्ति का अधिहरण किसी व्यक्ति के कब्जे से किया जा सकता है, चाहे वह उसका स्वामी हो या नहीं।

यदि वन-उपज जिसके सम्बन्ध में अपराध किया गया है, सरकार की सम्पत्ति हो तो मजिस्ट्रेट उसके बारे में यही आदेश दे सकता है कि वह वन अधिकारी द्वारा अपने भार साधन में ले ली जाए। उसके विक्रय और आगमों से भेदियों को इनाम देने का आदेश अवैध है। **सम्राज्ञी बनाम नाथू खाँ वाद** (आई० एल० आर० ४ इलाहाबाद ४१७)में अभिनिर्धारित किया गया है कि उस वन-उपज के बारे में जिसके सम्बन्ध में कोई वन अपराध किया गया है और जो सरकार की सम्पत्ति है, अधिहरण का आदेश न तो आवश्यक है और न दिया जा सकता है। जो कुछ करना आवश्यक है वह यही है कि वन अधिकारी को निदेश दिया जाए कि वह उसे अपने भार साधन में ले ले।

धारा ५५ के अधीन अधिहरण का आदेश स्पष्ट रूप से दण्ड है और ऐसा होने के कारण वह सरकार से भिन्न अन्य व्यक्तियों की सम्पत्ति के बारे में उसी समय दिया जा सकता है जब कि वन अधिनियम के अधीन उस वन अपराध पर जिसके सम्बन्ध में अभिग्रहण किया गया, अन्य दण्ड दिया गया है। धारा २६ के अधीन दण्ड देने के बहुत समय बाद अधिहरण का आदेश देना अवैध है। [**ऐउन्दी शेख बनाम सम्राज्ञी वाद** (आई० एल० आर० २७ कलकत्ता ४५०) **तथा सम्राज्ञी बनाम नाथू खाँ वाद,** (आई० एल० आर० ४ इलाहाबाद ४१७)]

अधिहरण तथा समपहरण में अन्तर—अधिहरण और समपहरण दोनों दण्ड हैं और विचारण के अन्त में किसी अन्य दण्ड के साथ दिए जाते हैं। अधिहरण वन अधिनियम में दण्ड है और समपहरण भारतीय दण्ड संहिता के अधीन दण्ड है। इन दोनों में निम्नलिखित अन्तर हैं :

(i) अधिहरण उस सम्पत्ति का किया जाता है जो अपराध करने में काम में लाई गई हो और जो सरकार की सम्पत्ति न हो। समपहरण उस सम्पत्ति का किया जाता है जो अपराध करने में काम में न लाई गई हो और जो सरकार की सम्पत्ति न हो।

(ii) अधिहरण उस सम्पत्ति का भी किया जा सकता है जो उसके स्वामी के कब्जे में न हो। इसके विपरीत समपहरण केवल उस सम्पत्ति का होता है जो स्वामी के कब्जे में हो।

(iii) अधिहरणीय सम्पत्ति जंगम होती है। इसके विपरीत समपहरणीय सम्पत्ति जंगम या स्थावर दोनों प्रकार की हो सकती है।

धारा ५६—जब किसी वन विषयक अपराध का विचारण समाप्त हो जाता है, तब यदि वह वन-उपज, जिसके सम्बन्ध में ऐसा अपराध हुआ है, सरकार की सम्पत्ति है या उसका अधिहरण हुआ है, तो वह वन अधिकारी द्वारा अपने भार साधन में ले ली जाएगी और किसी अन्य दशा में, उसका ऐसी रीति से व्ययन किया जा सकेगा, जैसी न्यायालय निदिष्ट करे।

टिप्पणी—यह धारा तभी लागू होती है जहाँ वन-उपज, जिसके सम्बन्ध में विचारण के परिणाम स्वरूप अन्ततोगत्वा अपराध किए जाने का निष्कर्ष है, वन अधिकारी या पुलिस अधिकारी द्वारा धारा ५२ के अधीन अभिगृहीत की गई हो। [**इब्राहीम अकबर अली बनाम राज्य वाद** (१९६३ (१) क्रि० एल० ले० ६६४)] यह धारा यह भी स्पष्ट कर देती है कि उस वन-उपज के बारे में जो सरकार की सम्पत्ति है और जिसके सम्बन्ध में अपराध हुआ है, अधिहरण का आदेश न आवश्यक है और न किया जा सकता है। उस सम्पत्ति के बारे में तो वन अधिकारी को अपने भार साधन में लेने का केवल निदेश देना चाहिए। [**सम्राज्ञी बनाम नाथू खां वाद** (**आई० एल० आर० ४ इलाहाबाद ४१७**)]

धारा ५७—जब कि अपराधी अज्ञात है या पाया नहीं जा सकता, तब यदि मजिस्ट्रेट का यह निष्कर्ष है कि कोई अपराध किया गया है, तो वह यह आदेश दे सकेगा कि जिस सम्पत्ति के सम्बन्ध में अपराध हुआ है, वह अधिहृत की जाए और वन अधिकारी द्वारा अपने भार साधन में ले ली जाए या उस व्यक्ति को दे दी जाए जिसे मजिस्ट्रेट उसका हकदार समझता है :

परन्तु जब तक कि ऐसी सम्पत्ति के अभिग्रहण की तारीख से एक मास का अवसान न हो गया हो, या उस पर किसी अधिकार का दावा करने वाले व्यक्ति की, यदि कोई हो और ऐसे साक्ष्य की, यदि कोई हो, जिसे वह अपने दावे के समर्थन में पेश करे, सुनवाई नहीं हो जाती है, जब तक ऐसा कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।

धारा ५८—मजिस्ट्रेट धारा ५२ के अधीन अभिगृहीत और शीघ्र और प्रकृत्या क्षयशील सम्पत्ति के विक्रय के लिए इसमें इसके पूर्व अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी निदेश दे सकेगा और आगमों से इस प्रकार बरत सकेगा, जिस प्रकार वह ऐसी सम्पत्ति से तब बरतता जब कि वह बेची न गई होती।

धारा ५९—वह अधिकारी, जिसने धारा ५२ के अधीन अभिग्रहण किया है, या उसके पदीय वरिष्ठों में से कोई या इस प्रकार अभिगृहीत सम्पत्ति में हितबद्ध होने का दावा करने वाला कोई व्यक्ति, धारा ५५, धारा ५६, या धारा ५७ के

अधीन पारित किए गए किसी आदेश की तारीख से एक मास के अन्दर, उस आदेश की अपील उस न्यायालय में कर सकेगा जिसमें ऐसे मजिस्ट्रेट द्वारा दिए गए आदेशों की अपील मामूली तौर से होती है और ऐसी अपील पर पारित आदेश अन्तिम होगा।

टिप्पणी—धारा ५९ के अधीन कोई तीसरा व्यक्ति भी जो मूल न्यायालय की कार्यवाहियों में पक्षकार नहीं था और अधिहरण से मुक्ति के लिए जिसका दावा न्याय निर्णीत नहीं हुआ है, अपील कर सकता है। **मेहर सरदार बनाम सम्राट वाद (ए० आई० आर० १९३० कलकत्ता ५७७)** के निर्णय में कहा गया है कि इस धारा में प्रयुक्त पद 'इस प्रकार अभिगृहीत सम्पत्ति में हितबद्ध होने का दावा करने वाला कोई व्यक्ति' स्पष्ट है और उसको धारा ५७ में वर्णित प्रकरण तक सीमित नहीं समझा जा सकता क्योंकि इस प्रकार सीमित करने के लिए इस धारा में कुछ नहीं लिखा है। इस धारा की भाषा स्पष्ट है और 'इस प्रकार अभिगृहीत सम्पत्ति' पद विधि सम्मत रूप में तथा व्याकरण की दृष्टि से धारा ५२ के अधीन अभिग्रहण को निदिष्ट करता है जिसमें औजारों, नावों आदि का अभिग्रहण सम्मिलित है।

वन अधिनियम की धारा ५९ उच्च न्यायालय की सामान्य पुनरीक्षण शक्तियों को अपवर्जित नहीं करती। **सम्राज्ञी बनाम नाथू खाँ वाद (आई० एल० आर० ४ इलाहाबाद ४१७)** के निर्णय में कहा गया है कि जब किसी अधीनस्थ न्यायालय ने न्यायिक निर्णय में कोई महत्त्वपूर्ण गलती करदी हो तो उच्च न्यायालय धारा ५९ के अधीन जिला जज द्वारा दिए गए अपील आदेश को पुनरीक्षित कर सकती है।

धारा ६०—जब कि, यथास्थिति, धारा ५५ या धारा ५७ के अधीन किसी सम्पत्ति के अधिहरण के लिए आदेश पारित किया जा चुका है और ऐसे आदेश की अपील के लिए धारा ५९ द्वारा परिसीमित कालावधि बीत गई है और ऐसी कोई अपील नहीं की गई है, या जब कि ऐसी अपील किए जाने पर अपील न्यायालय, ऐसी सम्पूर्ण सम्पत्ति या उसके किसी प्रभाग के बारे में ऐसे आदेश की पुष्टि करता है, तो यथा स्थिति, ऐसी सम्पूर्ण सम्पत्ति या उसका ऐसा कोई प्रभाग सब विल्लंगमों से मुक्त होकर सरकार में निहित होगा।

धारा ६१—इसमें इसके पूर्व अन्तर्विष्ट किसी बात की बाबत यह नहीं समझा जाएगा कि वह राज्य सरकार द्वारा इस निमित सशक्त अधिकारी को ऐसी सम्पत्ति को तुरन्त निर्मुक्त करने का निदेश देने से निवारित करती है जो धारा ५२ के अधीन अभिगृहीत की गई है।

टिप्पणी—अभिगृहीत सम्पत्ति की निर्मुक्ति का उपबन्ध धारा ५३ में है। उस उपबन्ध के होते हुए धारा ६१ के उपबन्ध की आवश्यकता अधिक व्यापक तथा प्रभावशाली उपबन्ध बनाने तथा सरकार की इस सम्बन्ध में अनन्य शक्ति दिखाने के लिए पड़ी। धारा ५३ में केवल औजारों, नावों, छकड़ों या पशुओं को निर्मुक्त करने

का उल्लेख है। परन्तु धारा ५२ में तो वन-उपज भी अभिगृहीत की जाती है। अतः धारा ६१ उसको भी अपनी परिधि में लेती है। इस प्रकार यह अधिक व्यापक है। इसके अतिरिक्त धारा ५३ के अनुसार यह शक्ति रेन्जर से अनिम्न पद के केवल उस वन अधिकारी को है जिसने स्वयं या जिसके अधीनस्थ ने अभिग्रहण किया हो। वह भी बन्ध पत्र निष्पादित होने पर निर्मुक्त कर सकता है। धारा ६१ में यह शक्ति राज्य सरकार किसी अधिकारी को दे सकती है और बन्धपत्र की शर्त भी नहीं रखी। इस प्रकार निर्मुक्त करने वाले अधिकारी की दृष्टि से भी धारा ६१ धारा ५३ की तुलना में अधिक व्यापक है। वास्तव में यह शक्ति सरकार की अनन्य शक्ति का द्योतक है और सरकार किसी अधिकारी को इस निमित्त सशक्त कर सकती है, उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश में यह शक्ति समस्त डिवीजनल फॉरैस्ट आफीसरों के अतिरिक्त गढ़वाल, कुमाऊँ और नैनीताल जिलों के उपायुक्तों को भी है। इस प्रकार धारा ६१ एक विशेष शक्ति का वर्णन करती है जो वन अधिकारियों के विस्तृत अधिक्षेत्रों और ग्रामवासियों की आवश्यकताओं को देखकर विशेष परिस्थितियों में प्रयोग के लिए उपबन्धित है। इस उपबन्ध का एक लाभ यह भी है कि यदि कोई अधीनस्थ कर्मचारी तंग करने के उद्देश्य से अभिग्रहण करें तो इस प्रकार सशक्त अधिकारी अभिगृहीत सम्पत्ति को तत्काल मुक्त करा सकता है और व्यथित व्यक्ति को न्यायालय में वाद तथा अपील दायर करने का कष्ट नहीं उठाना पड़ता।

संशोधन

उत्तर प्रदेश संशोधन—उत्तर प्रदेश सरकार ने इण्डियन फॉरेस्ट (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम, १९६५ की धारा १४ के द्वारा भारतीय वन अधिनियम १९२७ की धारा ६१ के बाद निम्नलिखित नई धारा बढ़ा दी है :

६१-क कतिपय अपराधों के लिए दोषी ठहराए गए व्यक्तियों को संक्षिप्त बेदखल करना--(१) जब कोई न्यायालय धारा २६ की उपधारा (१) के खण्ड (क), खण्ड (घ) या खण्ड (ज) या धारा ३३ की उपधारा (१) के खण्ड (ग) या खण्ड (ज) के अधीन किसी अपराध के लिए किसी व्यक्ति को दोषी ठहराए तो वह निर्णय देते समय उस व्यक्ति को ऐसी भूमि से बेदखल किए जाने का निदेश दे सकता है, जिसके सम्बन्ध में अपराध किया गया हो।

(२) कोई अपील या पुनरीक्षण न्यायालय, अपने अधीनस्थ न्यायालय द्वारा उपधारा (१) के अधीन दिए गए किसी आदेश को, उस समय तक के लिए स्थगित करने का निदेश दे सकता है जब तक कि वह पूर्ववर्ती न्यायालय द्वारा विचाराधीन रहे और ऐसे आदेश को उपान्तरित, परिवर्तित या बातिल कर सकता है।

धारा ६२—जो कोई वन अधिकारी या पुलिस अधिकारी तंग करने के लिए और अनावश्यक रूप से किसी सम्पत्ति का अभिग्रहण इस बहाने करता है कि ऐसी अभिगृहीत सम्पत्ति इस अधिनियम के अधीन अधिहरणीय है, वह उस अवधि के कारा-

वास से, जो छह मास तक की हो सकेगी या जुर्माने से, जो पाँच सौ रुपए तक का हो सकेगा, या दोनों से, दण्डनीय होगा।

संशोधन

मध्य प्रदेश संशोधन—मध्य प्रदेश सरकार ने १९६५ के मध्य प्रदेश अधिनियम संख्या ६ का धारा **१२** के द्वारा भारतीय वन अधिनियम, १९२७ की धारा ६२ में 'जो छह मास तक की हो सकेगी या जुर्माने से, जो पाँच सौ रुपए तक का हो सकेगा' शब्दों के स्थान पर 'जो एक वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्माने से, जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा' शब्द प्रतिस्थापित किए हैं।

धारा ६३—जो लोक या किसी व्यक्ति को नुकसान या क्षति पहुँचाने या भारतीय दण्ड संहिता में यथा परिभाषित सदोष लाभ के आशय से—

(क) जानबूझकर किसी इमारती लकड़ी या खड़े वृक्ष पर किसी ऐसे चिन्ह का कूटकरण करेगा जिसे वन अधिकारी यह उपदर्शित करने के लिए प्रयोग करते हैं कि ऐसी इमारती लकड़ी या वृक्ष सरकार या किसी व्यक्ति की सम्पत्ति है, या उसे किसी व्यक्ति द्वारा विधितः काटा या हटाया जा सकेगा, या

(ख) किसी वन अधिकारी के प्राधिकार द्वारा या उसके अधीन किसी वृक्ष या इमारती लकड़ी पर लगे किसी ऐसे चिन्ह को बदलेगा, विरूपित करेगा या मिटाएगा, या

(ग) किसी वन या बंजर भूमि के, जिसको इस अधिनियम के उपबन्ध लागू होते हैं, सीमा चिन्ह को बदलेगा, सरकाएगा, नष्ट करेगा या विरूपित करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्माने से, या दोनों से दण्डनीय होगा।

टिप्पणी—इस धारा में प्रयुक्त कुछ शब्द या पद महत्त्वपूर्ण हैं। सब से पहले 'सदोष लाभ' पद है। यह पद भारतीय दण्ड संहिता में परिभाषित है। दण्ड संहिता के अनुसार, सदोष लाभ (या सदोष अभिलाभ, जैसाकि संहिता में प्रयुक्त है) विधि विरुद्ध साधनों द्वारा ऐसी सम्पत्ति का अभिलाभ है, जिसका वैध रूप से हकदार अभिलाभ प्राप्त करने वाला व्यक्ति न हो। इसके बाद खण्ड (क) में 'जानबूझकर' पद है। जानबूझकर पद से तात्पर्य है कि व्यक्ति को इस बात का ज्ञान है कि वह क्या कर रहा हैं और उसके क्या परिणाम होंगे। ज्ञान स्वयं अपनी आँखों से देखने या किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा जिसकी सूचना पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है, संसूचित किए जाने से प्राप्त होता है। **सम्राट बनाम जामिन वाद (ए० आई० आर० १९३२ अवध २८)** के निर्णय में कहा गया है कि व्यावहारिक और विविध प्रयोजनों के लिए 'जानकारी' या 'ज्ञान' से विद्यमान तथ्यों, जिनको किसी व्यक्ति ने स्वयं देखा है या जिनके अस्तित्व के बारे उसको ऐसे व्यक्तियों जिनकी सूचना पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है, संसूचित किया है, के बारे में उस व्यक्ति द्वारा धारणा की गई मन की दशा अभिप्रेत है। एक अन्य वाद के निर्णय में कहा

गया कि जानकारी या आशय का सबूत पूर्ण रूप से परिस्थितियों से अनुमान लगाने का मामला है। इसी खण्ड (क) में एक अन्य पद 'कूटकरण' है। दण्ड संहिता के अनुसार जो व्यक्ति एक चीज को दूसरी चीज के सदृश इस आशय से करता है कि वह उस सादृश्य से प्रवंचना करे या यह सम्भाव्य जानते हुए करता है कि तद् द्वारा प्रवंचना की जाएगी, वह 'कूटकरण' करता है, कहा जाता है।

इसी धारा के खण्ड (ग) में 'सीमा चिह्न' पद भी महत्त्वपूर्ण है। इसमें वन सम्पदा की बाह्य सीमा और आन्तरिक सीमा पर बने सीमा चिह्नों के अतिरिक्त कूप सीमाओं पर लगे चिह्न भी आते हैं। (**बाड़िक राव भड्डू कुम्बी बनाम सम्राट वाद (ए० आई० आर० १९४३ नागपुर १३९)** के निर्णय में कहा गया है कि धारा ६३ (ग) में प्रयुक्त 'सीमा चिह्न' पद के अन्तर्गत वन के अन्दर वह सीमा चिह्न भी है जो क्या गिराया जाए से क्या न गिराया जाए को अलग करने के लिए लगाया गया है।

धारा ६४—(१) ऐसे किसी व्यक्ति को, जिसके विरुद्ध यह युक्तियुक्त सन्देह विद्यमान है कि वह एक मास या उससे अधिक के कारावास से दण्डनीय किसी वन विषयक अपराध से सम्पृक्त है, कोई वन अधिकारी या पुलिस अधिकारी किसी मजिस्ट्रेट के आदेशों के और किसी वारण्ट के बिना गिरफ्तार कर सकेगा।

(२) इस धारा के अधीन गिरफ्तार करने वाला हर अधिकारी किसी अनावश्यक विलम्ब के बिना और बन्धपत्र पर निर्मुक्त करने सम्बन्धी अधिनियम के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को ऐसे मजिस्ट्रेट के, जिसे इस मामले में अधिकारिता प्राप्त है, समक्ष या निकटतम पुलिस स्टेशन के भारसाधक अधिकारी के पास ले जाएगा या भेजेगा।

(३) इस धारा की किसी बात की बाबत यह नहीं समझा जाएगा कि वह ऐसे कार्य के लिए, जो अध्याय ४ के अधीन अपराध है, तब तक ऐसी गिरफ्तारी के लिए प्राधिकृत करती है जब तक कि धारा ३० के खण्ड (ग) के अधीन ऐसा कार्य प्रतिषिद्ध न कर दिया गया हो।

टिप्पणी—इस धारा से वन अधिकारी या पुलिस अधिकारी को वन अपराध से सम्पृक्त व्यक्ति को वारण्ट के बिना गिरफ्तार करने की शक्ति मिली। वन अधिनियम के अनुसार ऐसा कोई अपराध नहीं है जिसमें एक मास से कम अवधि का कारावास विहित हो। इस प्रकार वन अधिनियम के समस्त अपराधों में बिना वारण्ट गिरफ्तारी हो सकती है, परन्तु इसमें अपवाद संरक्षित वन का है। संरक्षित वन सम्बन्धी अपराधों में गिरफ्तारी तभी हो सकती हैं जब धारा ३० (ग) के प्रतिषेध का उल्लंघन करके कोई अपराध किया जाए।

दण्ड प्रक्रिया संहिता के अनुसार अन्य विधि के जिन अपराधों में वारण्ट के बिना गिरफ्तारी हो सकती है वे सज्ञेय अपराध कहलाते हैं और जिनमें ऐसा नहीं किया जा सकता वे असंज्ञेय अपराध कहलाते हैं। दण्ड प्रक्रिया संहिता के अनुसार संज्ञेय तथा असंज्ञेय अपराधों में नीचे लिखा अन्तर है :

(i) संज्ञेय अपराध सामान्यतया गम्भीर अपराध होते हैं, इसके विपरीत असंज्ञेय अपराध सामान्यतया छोटे अपराध होते हैं।

(ii) संज्ञेय अपराध में पुलिस थाने में इत्तिला देते ही कार्यवाही प्रारम्भ हो जाती है और उसके लिए मजिस्ट्रेट को इत्तिला या परिवाद की आवश्यकता नहीं होती। इसके विपरीत असंज्ञेय अपराध में पुलिस थाने में इत्तिला देने से कार्यवाही प्रारम्भ नहीं होती। उसके लिए मजिस्ट्रेट को परिवाद करना पड़ता है और उसके आदेश पर ही कार्यवाही आरम्भ होती है।

(iii) संज्ञेय अपराध में मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस थाने का भार-साधक अधिकारी अन्वेषण कर सकता है परन्तु असंज्ञेय अपराध में वह मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना अन्वेषण नहीं कर सकता।

(iv) संज्ञेय अपराध में पुलिस अधिकारी मजिस्ट्रेट के वारण्ट के बिना अभियुक्त को गिरफ्तार कर सकता है परन्तु असंज्ञेय अपराध में वह ऐसा नहीं कर सकता।

(v) संज्ञेय अपराधों के विचारण में वारण्ट-मामले की प्रक्रिया का अनुपालन होता है। यदि संक्षिप्त विचारण अनुज्ञात हो तो, उसकी प्रक्रिया काम में लायी जाती है। असंज्ञेय अपराधों के विचारण में मामले के अनुसार वारण्ट-मामले, समन-मामले या संक्षिप्त विचारण की प्रक्रिया काम में लायी जाती है।

धारा ६५— रेन्जर से अनिम्न पंक्ति का कोई वन अधिकारी या जिसके अधीनस्थ ने धारा ६४ के उपबन्धों के अधीन किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया है, ऐसे व्यक्ति को उस द्वारा यह बंध पत्र निष्पादित कर दिए जाने पर निर्मुक्त कर सकेगा कि यदि और जब ऐसी अपेक्षा की जाएगी, तो और तब मैं मामले के बारे में अधिकारिता प्राप्त मजिस्ट्रेट के समक्ष या निकटतम पुलिस स्टेशन के भारसाधक अधिकारी के समक्ष उपसंजात हो जाऊंगा।

धारा ६६—हर वन अधिकारी और पुलिस अधिकारी किसी वन विषयक अपराध के किए जाने को निवारित करेगा और उसे निवारित करने के प्रयोजन से हस्तक्षेप कर सकेगा।

धारा ६७—जिला मजिस्ट्रेट या राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त विशेषतया सशक्त कोई प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट दण्ड प्रक्रिया संहिता, १८९८ के अधीन किसी ऐसे वन विषयक अपराध का विचारण संक्षिप्ततः कर सकेगा, जो छह मास से अनधिक कारावास या पाँच सौ रुपए से अनधिक जुर्माने से या दोनों से, दण्डनीय है।

संशोधन

मध्य प्रदेश संशोधन—मध्य प्रदेश सरकार ने १९६५ के मध्य प्रदेश अधि-नियम ९ की धारा १३ के द्वारा मूल अधिनियम के शब्दों 'छह मास से अनधिक कारावास या पाँच सौ रुपए से अनधिक जुर्माने से' के स्थान पर 'एक वर्ष से अनधिक कारावास या एक हजार रुपए से अनधिक जुर्माने से' शब्द प्रतिस्थापित किए हैं।

धारा ६८—(१) राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, किसी वन अधिकारी को शक्ति प्रदान कर सकेगी कि वह—

(क) किसी ऐसे व्यक्ति से, जिसके विरुद्ध ऐसा युक्तियुक्त सन्देह विद्यमान है कि उसने धारा ६२ या धारा ६३ में विनिर्दिष्ट किसी अपराध से भिन्न कोई वन विषयक अपराध किया है, उस अपराध के लिए, जिसके बारे में यह सन्देह है कि उसने ऐसा अपराध किया है, प्रतिकर के रूप में कोई धनराशि प्रतिगृहीत कर ले, और

(ख) जब कोई सम्पत्ति अधिहरणीय होने के नाते अभिगृहीत की गई है, तब ऐसे अधिकारी द्वारा यथा प्राक्कलित उसके मूल्य के दे दिए जाने पर उस सम्पत्ति को निर्मुक्त कर दे।

(२) ऐसे अधिकारी के, यथास्थिति, ऐसी धन राशि, या मूल्य या दोनों के दे दिए जाने पर संदिग्ध व्यक्ति को, यदि वह अभिरक्षा में है, उन्मोचित कर दिया जाएगा और वह सम्पत्ति, यदि कोई हो, जो अभिगृहीत की गई है, निर्मुक्त कर दी जाएगी तथा ऐसे व्यक्ति या ऐसी सम्पत्ति के विरुद्ध आगे कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी।

(३) इस धारा के अधीन किसी वन अधिकारी को उस दशा में ही शक्ति प्रदत्त की जाएगी जब कि वह रेंजर से अनिम्न पंक्ति का अधिकारी नहीं है और कम से कम सौ रुपए मासिक वेतन पाता है और उपधारा (१) के खण्ड (क) के अधीन प्रतिकर के रूप में प्रतिगृहीत धन राशि किसी भी दशा में पचास रुपए से अधिक नहीं है।

संशोधन

उत्तरप्रदेश संशोधन—उत्तर प्रदेश सरकार ने इण्डियन फॉरेस्ट (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम १९६० की धारा ८ के द्वारा भारतीय वन अधिनियम, १९२७ की धारा ६८ की उप धारा (३) में 'पचास' शब्द के स्थान पर 'पाँच सौ' शब्द प्रतिस्थापित किए हैं।

मध्य प्रदेश सरकार ने भी धारा ६८ में वैसा ही संशोधन किया है जैसा उत्तर प्रदेश सरकार ने किया है।

टिप्पणी–धारा ६८(१)(ख)में अधिहरणीय अभिगृहीत सम्पत्ति का मूल्य वन अधिकारी के विवेक पर छोड़ दिया गया है। यदि वह स्थानीय नियमों या वैभागिक निदेशों को छोड़कर बाजार भाव से मूल्य लगाता है तो वह अपनी शक्ति के अन्दर ही कार्य करता है। ऐसे स्थानीय नियम या वैभागिक निदेश वन अधिकारी को अपना विवेक प्रयोग में लाने से नहीं रोक सकते। **वीरसिंह बलदेव सिंह बनाम मध्य प्रदेश सरकार वाद (ए० आई० आर० १९५७ मध्य प्रदेश १६६)** में अभिनिर्धारित किया गया है कि मूल्यांकन की रीति वन अधिकारी के विवेक के अन्तर्गत होती है और उसे एक विशिष्ट रीति का अनुसरण करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। मध्य प्रदेश वन नियम संग्रह खण्ड १ में दिए गए अनुदेश समस्त जिलों में एक-

रूपात्मक दरें लगाने के लिए वन अधिकारी के केवल मार्ग दर्शन के लिए हैं परन्तु वे अधिनियम की धारा ६८ के अधीन वन अधिकारी के विवेक को नहीं बांधते। जहाँ तक अधिनियम का सम्बन्ध है, वन अधिकारी ने इमारती लकड़ी का बाजार मूल्य लेकर कोई गलती नहीं की क्योंकि अधिनियम की धारा ६८ में प्रयुक्त शब्द 'मूल्य' बाजार मूल्य को समाविष्ट करने के लिए पर्याप्त व्यापक है। इस धारा के अनुसार वन अधिकारी को अपने अनुमान के अनुसार मूल्य लगाना है। यदि उसके विवेक में बाजार दर अनुमानित मूल्य निकालने की ठीक रीति है तो वह बाजार दर से मूल्य निकाल सकता है।

धारा ६९—जब कि इस अधिनियम के अधीन की गई किसी कार्यवाही में, या इस अधिनियम के अधीन किए गए किसी कार्य के परिणामस्वरूप ऐसा प्रश्न उठता है कि क्या कोई वन-उपज सरकार की सम्पत्ति है या नहीं, तब, जब तक कि प्रतिकूल साबित न कर दिया जाए, ऐसी उपज के बारे में यह उपधारणा की जाएगी कि वह सरकार की सम्पत्ति है।

टिप्पणी—इस उपधारणा के आधार पर किसी अभियुक्त को दण्ड नहीं दिया सकता। वन अधिनियम के अधीन वादों में यह अभियोजन का कर्तव्य है कि वह निर्विवाद रूप से साबित करे कि अभियुक्त के पास पकड़े गए लट्ठे उन्हीं वृक्षों के हैं जो वन में अवैध रूप से गिराए गए। **सिद्धेश्वर पण्डा बनाम राज्य वाद** (ए० आई० आर० १९५४ उड़ीसा १६) में अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि अभियुक्त उन लट्ठों को सन्तोषजनक ढ़ग से अपना साबित नहीं कर सका तो अभियोजन यह साबित करने कि लट्ठे सरकार की सम्पत्ति हैं और अवैध रूप से सरकारी वन से लाए गए हैं, के दायित्व से मुक्त नहीं हो जाता।

अभियोजन प्रक्रिया

ऊपर वर्णित धाराओं से स्पष्ट है कि वन अधिनियम में प्रक्रिया के सम्बन्ध में केवल (i) अपराध से सम्बन्धित वन-उपज तथा औजारों आदि का अभिग्रहण, उनकी निर्मुक्ति और विचारण की समाप्ति पर वन-उपज का व्ययन; (ii) अपराध से सम्बन्धित व्यक्ति की गिरफतारी तथा निर्मुक्ति; (iii) वन अपराधों का न्यायालय में विचारण, (iv) वन अपराधों का वन अधिकारियों द्वारा शमन, तथा (v) वन-उपज का सरकार की सम्पत्ति होने सम्बन्धी उप-धारणा के बारे में उपबन्ध हैं। इन सीमित उपबन्धों से अभियोजन प्रक्रिया की पूरी जानकारी नहीं होती। उसके लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता तथा भारतीय साक्ष्य अधिनियम के सुसंगत भागों का ज्ञान अपेक्षित है। फिर भी वन अधिनियम के आधार पर प्रक्रिया का पूर्ण विवरण संक्षिप्त में यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

वन रक्षक या अन्य वन अधिकारी अपने दैनिक वन भ्रमण के दौरान वन अपराधों को या तो होता हुआ पाते हैं या किया हुआ पाते हैं। जब वे कोई वन अपराध होता हुआ पाते हैं तो उनका सर्व प्रथम कर्तव्य यह है कि वे वन अधिनियम

द्वारा प्रदत्त गिरफ्तारी तथा अभिग्रहण सम्बन्धी शक्तियों का प्रयोग विवेकपूर्ण ढंग से करें। गिरफ्तारी के सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि संरक्षित वन सम्बन्धी अपराध में गिरफ्तारी तभी की जा सकती है जब वह धारा ३० (ग) के प्रतिषेध के उल्लंघन से सम्बन्धित हो। यद्यपि एक मास या उससे अधिक के कारावास से दण्डनीय प्रत्येक अपराध में गिरफ्तारी की जा सकती है तथापि इस शक्ति का प्रयोग केवल गम्भीर अपराधों में ही करना चाहिए क्योंकि धारा ६४ (२) के अनुसार गिरफ्तार करने वाले हर व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह अनावश्यक विलम्ब के बिना गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को, यदि वह बन्धपत्र निष्पादित करने को तैयार हो तो अपने रेन्ज अधिकारी (यदि वह रेन्जर से अनिम्न पंक्ति का नहीं है) के पास ले जाए ताकि वह बन्धपत्र निष्पादित करवा कर उसे निर्मुक्त कर दे, अन्यथा उसे अधिकारिता प्राप्त मजिस्ट्रेट के समक्ष या निकटतम पुलिस स्टेशन के भार साधक अधिकारी के पास ले जाए। इस प्रकार उसे अपने सब कार्य छोड़ गिरफ्तार व्यक्ति को रेन्जर या निकटतम पुलिस स्टेशन के भार साधक अधिकारी या अपराध में अधिकारिता रखने वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष ले जाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त अधिकांश अपराध तुच्छ होते हैं, जैसे, वृक्षों की शाखाएँ काटना, छाल उतारना, पत्तियाँ तोड़ना, ईंधन ले जाना या छोटे आकार के वृक्षक काटना आदि। इनको भी अधिकांश रूप से स्त्रियाँ करती हैं। अतः इतने तुच्छ अपराधों में और विशेषकर जब अभियुक्त स्त्री हो तो, गिरफ्तार करना व्यर्थ में झंझट बढ़ाना और स्त्रियों के मामले में तो अपने लिए संकट को निमन्त्रण देना है। गम्भीर अपराधों में जैसे बड़े आकार के वृक्षों का गिराना, अधिक्रमण करना आदि में अपराधी को अवश्य गिरफ्तार करना चाहिए। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा ४६ के अनुसार गिरफ्तार करने वाला अधिकारी गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति के शरीर को वस्तुतः छूता या परिरुद्ध करता है जब तक कि वह वचन या कर्म द्वारा अपने को अभिरक्षा में समर्पित न कर दे। यदि ऐसा व्यक्ति अपने गिरफ्तार किए जाने के प्रयास का बलात् प्रतिरोध करता है या गिरफ्तारी से बचने का प्रयत्न करता है तो गिरफ्तार करने वाला अधिकारी गिरफ्तारी करने के लिए आवश्यक सब साधनों को उपयोग में ला सकता है।

अभियुक्त गिरफ्तार किया जाए या नहीं परन्तु अपराध से सम्बन्धित वनउपज और अपराध में प्रयुक्त औजार, यान, पशु आदि सब धारा ५२ के अधीन अभिगृहीत कर लेना चाहिए। पशुओं को छोड़ इस प्रकार अभिगृहीत सम्पत्ति पर वन अधिकारी को यह उपदर्शित करने के लिए कि उसका अभिग्रहण हुआ, कोई चिह्न लगाना चाहिए। पशुओं को निकटतम काँजी हाउस भेज देना चाहिए। अभिगृहीत वन-उपज रखने के लिए यदि कोई अन्य सुरक्षित स्थान न हो तो आस-पास के गाँव के प्रधान या अन्य किसी व्यक्ति की सुपर्दगी में देकर रसीद ले लेनी चाहिए। यह सब करने के बाद अपराध पकड़ने वाले वन अधिकारी को अपराध होने की रिपोर्ट रेन्ज अधिकारी के पास

अपराध देखने के यथा शीघ्र बाद (उत्तर प्रदेश में मैदानों में २४ घण्टे में और पर्वतीय प्रदेश में तीन दिन के अन्दर) पहुँचा देनी चाहिए। यह रिपोर्ट लिखित या मौखिक हो सकती है। जब वह लिखित होती है तो उसमें (i) अपराध रिपोर्ट क्रमांक तथा तारीख, (ii) अपराधी का नाम, उसके पिता का नाम तथा उसका पता, (iii) अपराध का स्थान, विवरण तथा वन अधिनियम की धारा संख्या,(iv) अपराध से हुई क्षति का मूल्य, (v) साक्षियों के नाम तथा पते तथा (vi) अन्य कोई विवरण, आदि का स्पष्ट वर्णन होना चाहिए। यदि वन रक्षक या अन्य अधिकारी लिखना न जानता हो रेंज अधिकारी अपने हाथ से अपराध रिपोर्ट लिखकर रिपोर्ट करने वाले के अँगूठे का चिन्ह लगवा लेता है।

अपराध रिपोर्ट रजिस्टर तिपर्त्ती होता है और उसमें क्रम संख्या छपी रहती है। रिपोर्ट लिखने वाला अधिकारी अपराधों की रिपोर्ट कालानुक्रम में लिखकर उसकी अन्तिम प्रति अपने रजिस्टर में छोड़ प्रथम दो रेन्ज अधिकारी को देता है। इस रिपोर्ट के साथ वह अभिगृहीत सम्पत्ति की सूची, सरलता से लाए जा सकने योग्य अभिगृहीत औजार, शेष अभिगृहीत सम्पत्ति की अभिरक्षा का विवरण (जैसे सुपुर्दगी नामा आदि), पशुओं को, यदि कोई हों, काँजी हाउस भेजने की रसीद आदि भी देता या भेजता है। यदि वन रक्षक या अन्य वन अधिकारी अपने दैनिक भ्रमण में कोई अपराध किया हुआ देखता है और अपराधी का पता नहीं है तो वह अपराध की रिपोर्ट तो रेन्ज अधिकारी को तत्काल कर देता है परन्तु उसमें अपराधी के नाम के स्थान पर 'अज्ञात' शब्द लिख देता है।

जब रेंज अधिकारी को अपराध रिपोर्ट मिलती है तो वह उसकी प्रविष्टि अपने अपराध रजिस्टर में और अभिगृहीत सम्पत्ति की प्रविष्टि अभिगृहीत सम्पत्ति रजिस्टर में करता है। ऐसा करने के बाद वह अपराध रिपोर्ट की एक प्रति प्रभागीय वन अधिकारी (डी०एफ०ओ०) को भेज देता है और वह भी उसे अपने कार्यालय में रखे अपराध रजिस्टर में चढ़ा लेता है। अभिगृहीत सम्पत्ति के बारे में रेंज अधिकारी मास के अन्त में एक विवरणी प्रभागीय वन अधिकारी को भेज देता है। अपराध रिपोर्ट की दूसरी प्रति से या तो वह स्वयं अन्वेषण करता है या अपने किसी रेंज सहायक को अन्वेषण का कार्य सौंपते हुए अपराध रिपोर्ट की दूसरी प्रति उसे भेज देता है।

वन अधिनियम में अन्वेषण तथा अन्य प्रक्रिया का वर्णन नहीं है। इसके लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता तथा पुलिस नियम संग्रह आदि का अध्ययन लाभदायक होता है। इतना विस्तृत ज्ञान न होने पर भी अन्वेषण अधिकारी को अपराध स्थल का निरीक्षण करके उसका नक्शा बना लेना चाहिए अर्थात् वन सीमा दिखाने वाले नक्शे में अपराध स्थल, उसका बिस्तार आदि चिह्नित करना चाहिए। स्थान को देखकर तथा अपराध रिपोर्ट में लिखे साक्षियों तथा अन्य व्यक्तियों से पूछताछ करके अपराध को निश्चायक रूप से साबित करने के लिए साक्ष्य एकत्र करना चाहिए।

ऐसे अन्वेषण के लिए वन अधिनियम की धारा ७२ (१) के अधीन राज्य सरकार किसी वन अधिकारी में (क) किसी भूमि पर जाने, उसका सर्वेक्षण, सीमांकन और नक्शा तैयार करने की शक्ति, (ख) साक्षियों को हाजिर होने के लिए और दस्तावेजों और सारवान् वस्तुओं को पेश करने के लिए विवश करने वाली सिविल न्यायालय की शक्तियाँ, (ग) दण्ड प्रक्रिया संहिता १८९८ के अधीन तलाशी वारण्ट निकालने की शक्ति, और (घ) वन विषयक अपराधों की जाँच करने और ऐसी जाँच के दौरान साक्ष्य लेने और उसे अभिलिखित करने की शक्ति, सब या इनमें से कोई शक्ति विनिहित कर सकती है। धारा ७२ (२) में यह भी उपबन्ध है कि उपधारा (१) के खण्ड (घ) के अधीन अभिलिखित कोई साक्ष्य मजिस्ट्रेट के सामने किसी पश्चात्-वर्ती विचारण में ग्राह्य होगा परन्तु यह तब जब कि अभियुक्त व्यक्ति की उपस्थिति में वह साक्ष्य लिया गया हो। वन अधिनियम में इन शक्तियों को विनिहित करने के सम्बन्ध में उपबन्ध होने से ही किसी वन अधिकारी को ऊपर लिखी सब शक्तियाँ या उनमें से कोई शक्ति नहीं मिल जाती। इसके लिए राज्य सरकार को इस धारा के अधीन राजपत्र में अधिसूचना प्रकाशित करके अपने अधिकारियों के विशिष्ट वर्गों में ऊपर लिखी सब या उनमें से कोई शक्ति विनिहित करनी पड़ती है।

यदि अपराध से सम्बन्धित वन-उपज कहीं छिपायी गयी हो तो अन्वेषण या रेंज अधिकारी को प्रभागीय वन अधिकारी (जिसमें सामान्यतया यह शक्ति विनि-हित होती है) से तलाशी वारण्ट लेकर, उस स्थान की, जहाँ वह छिपायी गयी है, दण्ड प्रक्रिया संहिता १९७३ की धारा १०० में वर्णित रीति से तलाशी लेकर वह वन-उपज अभिगृहीत करनी चाहिए। तलाशी वारण्ट दण्ड प्रक्रिया संहिता में दिए गए निश्चित प्ररूप में होना चाहिए। तलाशी लेने जाने से पूर्व तलाशी लेने वाले अधि-कारी को अपने साथ उसी ग्राम के दो स्वतंत्र और प्रतिष्ठित निवासियों को अपने साथ ले जाना चाहिए और तलाशी में अभिगृहीत वस्तुओं की सूची बनाकर उसपर उनके हस्ताक्षर लेने चाहिए।

वन अधिनियम में अभियुक्त के कथन लेने की शक्ति का उल्लेख नहीं है। इसका तात्पर्य यह है कि वन अधिकारी द्वारा अन्वेषण के दौरान अभिलिखित अभि-युक्त का कथन न्यायालय में ग्राह्य नहीं है। फिर भी अन्वेषण के दौरान उससे पूछ-ताछ की जाती है। अभिगृहीत सम्पत्ति की सूची पर यह दर्शित करने के लिए उसके हस्ताक्षर कराए जाते हैं कि वह सम्पत्ति उससे अभिगृहीत की गई। साक्षियों के कथन अभियुक्त के सामने लिए जाते हैं और उन पर उसके हस्ताक्षर कराए जाते हैं। अपराध के सम्बन्ध में कुछ स्वतंत्र व्यक्तियों के समक्ष उसका स्वेच्छा से किया गया कथन भी अभिलिखित किया जाता है और उन स्वतंत्र व्यक्तियों के साक्षियों के रूप में हस्ताक्षर कराए जाते हैं। यदि अभियुक्त दोषी होने का अभिवचन करता है तो उससे यह भी पूछा जाता है कि क्या वह अपराध को, जैसा कि आगे बताया जाएगा, शमन कराना चाहता है या वाद को न्यायालय में ले जाना चाहता है।

अन्वेषण (या साधारण भाषा में जाँच) समाप्त हो जाने के बाद अन्वेषण अधिकारी को यदि यह विश्वास हो जाए कि अपराध रिपोर्ट सत्य है, अभियुक्त ने अपराध किया है और उसे न्यायालय से दण्डित कराने के लिए पर्याप्त निश्चायक साक्ष्य एकत्र कर लिए गये हैं तो उसके सामने वाद को निपटाने के लिए वन अधि- नियम के अधीन निम्नलिखित दो विकल्प रहते हैं :

(i) न्यायालय के बाहर अपराध का शमन करना, या

(ii) उसे न्यायालय में विचारण के लिए भेजना।

(i) **न्यायालय के बाहर अपराध का शमन**—वन अधिनियम की धारा ६८ के अधीन वन अधिकारियों को वन अपराध का शमन करने की शक्ति मिली है। इस शक्ति को देने का मुख्य उद्देश्य पृष्ठ १२ पर पहले ही दिया जा चुका है। यदि अभि- युक्त न्यायालय के बाहर वन अधिकारी द्वारा अपराध शमन कराने को तैयार हो और वाद को न्यायालय में न चलवाना चाहता हो तो वह वन अधिकारी द्वारा नियत प्रतिकर की धन राशि या अधिहरणीय सम्पत्ति का वन अधिकारी द्वारा यथा प्राक्कलित मूल्य या दोनों देता है और तब यदि अभियुक्त अभिरक्षा में है तो उन्मो- चित कर दिया जाता है, अभिगृहीत सम्पत्ति, यदि कोई हो, निर्मुक्त कर दी जाती है और अभियुक्त या अभिगृहीत सम्पत्ति के विरुद्ध आगे कोई कार्यवाही नहीं की जाती।

यद्यपि धारा ६८(३) के अनुसार सौ रुपए या अधिक वेतन पाने वाले रेन्जर से अनिम्न पंक्ति के वन अधिकारी को अपराध शमन करने की शक्ति दी जा सकती है तथापि सामान्यतया यह शक्ति राज्य सरकार प्रभागीय वन अधिकारियों (डी० एफ० ओ०) में विनिहित करती है। राज्य सरकार यह शक्ति किसी अन्य विभाग के अधिकारी में भी उसे अधिसूचना द्वारा वन अधिकारी घोषित करके विनि- हित कर सकती है। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश में नैनीताल जिले के संरक्षित वनों के अपराधों को शमन करने की शक्ति सहायक आयुक्त नैनीताल में विनिहित की गई है। धारा ६८(३)के अनुसार प्रतिकर के रूप में प्रतिगृहीत धन राशि किसी दशा में भी पचास रुपए से अधिक नहीं हो सकती परन्तु उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश सरकारों ने वन अधिनियम में संशोधन करके प्रतिकर की अधिकतम राशि पाँच सौ रुपए कर दी है। जिन अपराधों का शमन कर दिया जाता है, अपराध पंजी में उनके सामने 'शमनित' लिखकर प्रतिकर की धन राशि तथा लेखा की मद संख्या लिख दी जाती है।

कभी-कभी अभियुक्त अपराध स्वीकार करके और उसे शमन कराने के लिए प्रतिकर देने का लिखित आश्वासन देकर बाद में प्रतिकर जमा नहीं करते। ऐसी दशा में प्रतिकर वन अधिनियम की धारा ८२ के अधीन भू-राजस्व के बकाया के

रूप में वसूल नहीं किया जा सकता। ऐसे प्रत्येक मामले में न्यायालय में वाद इस प्रकार चलाना पड़ता है, मानों कि अभियुक्त ने कोई लिखित आश्वासन नहीं दिया था। ऐसे मामलों के सफल अभियोजन के लिए यह आवश्यक है कि यदि अभियुक्त प्रतिकर अविलम्ब संदाय न करे तो वाद न्यायालय में तुरन्त भेज देना चाहिए क्योंकि विलम्ब हो जाने से साक्ष्यों का एकत्र करना कठिन होता है।

(ii) **न्यायालय में विचारण**–जिन अपराधों में अभियुक्त अपराध शमन कराने के लिए तैयार नहीं होता और जो अपराध गम्भीर होते हैं उन्हें न्यायालय में विचारण के लिए भेजना पड़ता है। वन अधिनियम के अनुसार धारा ६२ व ६३ में वर्णित अपराध शमन नहीं किए जा सकते। अतः उन्हें न्यायालय में विचारण के लिए भेजा जाता है। इसके लिए प्रभागीय वन अधिकारी जिले के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को अपनी एक रिपोर्ट के साथ अधीनस्थ अधिकारी की मूल अपराध रिपोर्ट भेज देता है और अपने कार्यालय में न्यायालय भेजे जाने वाले वादों की पंजी (रजिस्टर) में उसकी प्रविष्टि कर लेता है। प्रभागीय वन अधिकारी मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को मूल अपराध रिपोर्ट के साथ अपराध स्थल दिखाने वाला नक्शा जिससे वह स्थान आरक्षित या संरक्षित वन का भाग दिखाई दे, उन साक्षियों के नाम तथा पते जिनकी साक्षियों के रूप में परीक्षा करने का अभियोजन का विचार है, अभिगृहीत की गई वस्तुओं की सूची, तथा अभिगृहीत वन-उपज का विवरण, यदि कोई वस्तु बन्धपत्र पर निर्मुक्त की गई है तो बन्धपत्र, अभियुक्त के गिरफ्तार किए जाने की दशा में उसे यदि बन्धपत्र पर छोड़ा गया तो वह बन्धपत्र अन्यथा उसे मजिस्ट्रेट के समक्ष ले जाने पर उसके आदेश का विवरण आदि भी भेजता है। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट मामले को विचारण के लिए अपने अधीनस्थ किसी सक्षम तथा अधिकारिता रखने वाले मजिस्ट्रेट को भेज देता है।

यदि अपराध का संज्ञान करने वाले मजिस्ट्रेट की राय में कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है तो वह अभियुक्त की हाजिरी के लिए समन-मामले में समन और वारण्ट मामले में वारण्ट जारी करता है। वारण्ट मामले से ऐसा मामला अभिप्रेत है जो मृत्यु, आजीवन कारावास या दो वर्ष से अधिक की अवधि के कारावास से दण्डनीय किसी अपराध से सम्बन्धित हो और वारण्ट मामला से भिन्न मामला समन मामला कहलाता है। इस प्रकार वन अधिनियम के सब अपराध समन-मामले के वर्ग में आते हैं। परन्तु वन अधिनियम की धारा ६७ के अनुसार छह मास से अनधिक कारावास या पाँच सौ रुपए से अनधिक जुर्माने से या दोनों से दण्डनीय अपराधों का विचारण संक्षिप्ततः हो सकता है। इस धारा में लिखी दण्ड सीमा में धारा ६३ के अधीन अपराधों को छोड़कर वन अधिनियम के सब अपराध आते हैं परन्तु जिन राज्यों में दण्ड की सीमाएं बढ़ा दी गई हैं वहाँ

अपराध का विचारण संक्षिप्ततः विचारण की परिधि में न आकर समन मामलों के विचारण की प्रक्रिया के अनुसार होता है। इस प्रकार अधिकांश वन अपराधों में संक्षिप्ततः विचारण की और कुछ में समन-मामलों के विचारण की प्रक्रिया अपनाई जाती है। संक्षिप्ततः विचारण मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या उच्च न्यायालय द्वारा इस निमित विशेषतया सशक्त किया गया प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट कर सकता है। कभी-कभी यह शक्ति उच्च न्यायालय द्वारा द्वितीय वर्ग मजिस्ट्रेट को भी दी जाती है।

संक्षिप्ततः विचारण में समन-मामलों के विचारण के लिए विनिर्दिष्ट प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है। ऐसे विचारण में मजिस्ट्रेट राज्य सरकार द्वारा निर्दिष्ट प्ररूप में अग्रलिखित प्रविष्टियाँ प्रविष्ट करता है—मामले का क्रम संख्यांक, अपराध किए जाने की तारीख, रिपोर्ट या परिवाद की तारीख, परिवादी का (यदि कोई हो) नाम, अभियुक्त का नाम, उसके माता पिता का नाम और उसका निवास, वह अपराध जिसका परिवाद किया गया और वह अपराध जो साबित हुआ (यदि कोई हो), सम्पत्ति, जिसके बारे में अपराध हुआ, का मूल्य, अभियुक्त का अभिवाक् और उसकी परीक्षा (यदि कोई हो), निष्कर्ष, दण्डादेश या अन्य अन्तिम आदेश, कार्यवाही समाप्त होने की तारीख। संक्षेपतः विचारित प्रत्येक ऐसे मामले में जिसमें अभियुक्त दोषी होने का अभिवचन नहीं करता, मजिस्ट्रेट साक्ष्य का सारांश और निष्कर्ष के कारणों का कथन करते हुए निर्णय अभिलिखित करता है।

यदि संक्षेपतः विचारण न हो तो विचारण समन-मामले के विचारण के अनुसार होता हैं। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा २५६ के अनुसार यदि परिवादी मामले की सुनवाई के दिन उपस्थित न हो तो मजिस्ट्रेट अभियुक्त को दोषमुक्त कर सकता है, जब तक कि किन्ही कारणों से वह मामले की सुनवाई किसी अन्य दिन के लिए स्थगित करना ठीक न समझे। परन्तु जहाँ परिवादी का प्रतिनिधित्व प्लीडर द्वारा या अभियोजन का संचालन करने वाले अधिकारी द्वारा किया जाता है या जहाँ मजिस्ट्रेट की राय है कि परिवादी की वैयक्तिक हाजिरी आवश्यक नहीं है वहाँ मजिस्ट्रेट उसे हाजिरी से अभिमुक्ति दे सकता है और मामले की कार्यवाही कर सकता है। जब समन-मामले में अभियुक्त मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित होता है या लाया जाता है तब उसे अपराध, जिसका उसपर अभियोग है, की विशिष्टियाँ बताई जाती हैं और उससे पूछा जाता है कि क्या वह दोषी होने का अभिवाक् करता है अथवा प्रतिरक्षा करना चाहता है। ऐसे मामले में यथा रीति आरोप विरचित करना आवश्यक नहीं है। यदि अभियुक्त दोषी होने का अभिवचन करता है तो मजिस्ट्रेट अभियुक्त का अभिवाक्, यथा सम्भव उसके ही शब्दों में लेखबद्ध करके उसके आधार पर उसे, स्वविवेकानुसार, सिद्धदोष कर देता है। यदि अभियुक्त अभियोग स्वीकार नहीं करता और अपने को निर्दोष बताकर अपनी प्रतिरक्षा करने का अभिवाक् करता है तो मजिस्ट्रेट अभियोजन को सुनने के लिए, अपने समर्थन में

उसके द्वारा पेश किए गए साक्ष्य को लेने के लिए और फिर अभियुक्त को सुनने और उसके साक्ष्य को लेने के लिए अग्रसर होता है। यदि मजिस्ट्रेट अभियोजन या अभियुक्त के आवेदन पर ठीक समझे तो किसी साक्षी को हाजिर होने और कोई दस्तावेज या अन्य चीज पेश करने का निर्देश देने वाला समन जारी कर सकता है। इसके बाद दोनों पक्षकारों के कथन और उनके साक्षियों के साक्ष्य का अध्ययन करने के बाद यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि अभियुक्त दोषी नहीं है तो वह दोषमुक्ति का आदेश अभिलिखित कर देता है और यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि अभियुक्त दोषी है तो वह विधि के अनुसार दण्डादेश दे देता है।

विचारण की समाप्ति पर मजिस्ट्रेट को अभिगृहीत सम्पत्ति के व्ययन के सम्बन्ध में भी आदेश देना पड़ता है। वन अधिनियम की धारा ५२ के अधीन दो प्रकार की वस्तुएँ अभिगृहीत होती हैं : पहली वन-उपज और दूसरी वन अपराध में प्रयुक्त औजार, नावें, छकड़े (या यान) और पशु। पहली वस्तु वन-उपज या तो सरकार की हो सकती है या किसी अन्य की। दूसरी वस्तुएँ तो सदैव अन्य व्यक्तियों की होती हैं। धारा ५६ के अनुसार जब वन-उपज सरकार की सम्पत्ति हो तो वह वन अधिकारी के भार साधन में दे दी जाती है। उसके लिए अधिहरण का आदेश न तो आवश्यक है और न किया जा सकता है। उसके लिए तो मजिस्ट्रेट को केवल वन अधिकारी को उसे अपने भारसाधन में लेने का निर्देश देना पर्याप्त होता है। जब अभिगृहीत सम्पत्ति सरकार से भिन्न अन्य व्यक्तियों की होती है तो यदि मजिस्ट्रेट उचित समझे तो उसके अधिहरण का आदेश दे सकता है और ऐसी दशा में वह वन अधिकारी को अपने भारसाधन में लेने का आदेश भी दे देता है; अन्यथा वह उस सम्पत्ति के व्ययन का, स्वविवेकानुसार, आदेश देता है।

वन अधिनियम की धारा ५७ के अनुसार यदि अभियुक्त अज्ञात है या पाया नहीं जा सकता और मजिस्ट्रेट के विचार में अपराध हुआ है तो वह आदेश दे देता है कि अपराध से सम्बन्धित सम्पत्ति अभिहृत कर ली जाए और वन अधिकारी द्वारा भारसाधन में ले ली जाए या वह आदेश देता है कि वह उस व्यक्ति को, जिसे वह हकदार समझता है, दे दी जाए। यह आदेश तब दिया जाता है जब ऐसी सम्पत्ति के अभिग्रहण की तारीख से एक मास बीत गया हो या उसपर किसी अधिकार का दावा करने वाले व्यक्ति की तथा उसके द्वारा अपने दावे के समर्थन में पेश किए गए साक्ष्य की सुनवाई नहीं हो जाती। यदि धारा ५२ के अधीन अभिगृहीत सम्पत्ति शीघ्र या प्रकृत्या क्षयशील हो तो मजिस्ट्रेट वन अधिनियम की धारा ५८ के अधीन उसके विक्रय का निर्देश देता है और उसके आगमों से वह उसी प्रकार बरतता है जैसे कि वह उस सम्पत्ति से बरतता यदि वह बेची न जाती। अभिगृहीत सम्पत्ति के व्ययन सम्बन्धी आदेश के विरुद्ध उसके पारित होने के एक मास के अन्दर अपील की जा सकती है और ऐसी अपील में पारित आदेश अन्तिम होता है।

अभियोजन

वन अधिनियम में अभियोजन के सम्बन्ध में कोई उपबन्ध नहीं है। अतः दण्ड प्रक्रिया संहिता के अनुसार वन अपराधों का अभियोजन लोक अभियोजकों द्वारा कराया जा सकता है परन्तु महत्वपूर्ण मामलों में प्लीडर लगा लेना लाभदायक होता है। अभियोजन चाहे जो करे, रेन्ज अधिकारी और उसके अधीनस्थ कर्मचारियों को आवश्यक साक्ष्य आदि उपलब्ध कराने पड़ते हैं। अतः उन्हें साक्ष्य अधिनियम के महत्वपूर्ण भागों का ज्ञान होना चाहिए ताकि वे सुसंगत तथा निश्चायक साक्ष्य उपलब्ध करा सकें। यह अभियोजन का कर्तव्य है कि वह स्पष्ट, निश्चायक तथा असंदिग्ध रूप से साबित करे कि अभियुक्त आरोपित अपराध का दोषी है। यह अभियुक्त का कर्तव्य नहीं कि वह अपने आपको निर्दोष साबित करे क्योंकि हमारे देश की विधि में यह आधारभूत उपधारणा है कि कोई व्यक्ति उस समय तक दोषी नहीं समझा जा सकता जब तक कि इसके विपरीत सिद्ध न हो जाए। इसलिए प्रारम्भिक अपराध रिपोर्ट में लिखी बातें; जैसे अपराध कार्य, उसका समय, स्थान आदि एक क्रम से इस प्रकार साबित करने चाहिए कि अभियोजन पक्ष की कहानी पर मजिस्ट्रेट को विश्वास हो जाए। अपराध के सम्बन्ध में ऐसा साक्ष्य पेश किया जाए जिससे सम्बन्धित धारा के शब्दों के अनुरूप अपराध होने का विश्वास हो जाए।

अध्याय १०

पशु अतिचार

यद्यपि पशुओं द्वारा कराये गए अतिचार और अवैध चराई के लिए आरक्षित तथा संरक्षित वन सम्बन्धी अध्यायों में आवश्यक उपबन्ध हैं तथापि वन अपराधों से सम्बन्धित पशुओं को अभिगृहीत कर काँजी हाउस भेजने के लिए वन अधिनियम में कोई व्यवस्था नहीं थी। दूसरी ओर, पशुअतिचार अधिनियम १८७१ में वन में अतिचार का कोई उल्लेख नहीं है और इस कारण वह वन अपराधों के लिए लागू नहीं हो सकता था। इस कठिनाई को दूर करने के उद्देश्य से भारतीय वन अधिनियम १९२७ में 'पशु अतिचार' शीर्षक वाला अध्याय बनाकर उसमें पशु अतिचार अधिनियम आरक्षित तथा संरक्षित वनों में लागू होने का उपबन्ध बनाया गया। इसके अतिरिक्त पशुओं से होने वाली क्षति के लिए पशु अतिचार अधिनियम से अधिक जुर्माना करने की भी शक्ति सरकार ने ले ली।

पशु अतिचार सम्बन्धी उपबन्ध

धारा ७०—किसी आरक्षित वन में या किसी संरक्षित वन के किसी प्रभाग में, जो विधिपूर्वत: चरागाह के लिए बन्द किया गया है, अतिचार करने वाले पशुओं को पशु अतिचार अधिनियम १८७१ की धारा ११ के अर्थ में लोक बागान को नुकसान करने वाले पशु समझा जाएगा और किसी वन अधिकारी या पुलिस अधिकारी द्वारा उन्हें अभिगृहीत और परिबद्ध किया जा सकेगा।

टिप्पणी—इस धारा के द्वारा वन अधिकारियों को आरक्षित वन तथा संरक्षित वन के बन्द प्रभागों में अतिचार तथा अवैध चराई करने वाले पशुओं को अभिगृहीत करने के बाद काँजी हाउस में परिबद्ध कराने की शक्ति मिल गई। यही नहीं, पशु अतिचार अधिनियम की धारा ११ के अनुसार आरक्षित वन तथा संरक्षित वन के बन्द प्रभागों में भटके हुए पशु भी अभिगृहीत तथा परिबद्ध किए जा सकते हैं। **सम्राज्ञी बनाम बाबाजी लक्ष्मण वाद** (आई० एल० आर० २२ मुम्बई ६३३) में अभिनिर्धारित किया गया है कि पशु अतिचार अधिनियम की धारा ११ के अधीन वन अधिकारी द्वारा आरक्षित वन में भटके हुए पाए गए पशुओं का, चाहे उन्होंने वन को कोई नुकसान न पहुँचाया हो, अभिग्रहण वैध है। अतिचार के बाद यदि पशु भागने लगे तो वन सीमा के बाहर उसका पीछा करके अभिग्रहण किया जा सकता है। **मुन्नी अब्दुल रहम बनाम राज्य वाद**(ए० आई० आर० १९५५ एन० यू० सी० असम ५५४२) के निर्णय में कहा गया है कि उन पशुओं को जिन्होंने सरकारी वन में अतिचार किया हो, अभिगृहीत तथा परिबद्ध करने के प्रयोजन के लिए धारा ७० के अधीन वन

अधिकारी की वही शक्तियाँ हैं जो कि पुलिस अधिकारी की हैं। वह अपराध करने वाले पशुओं का पीछा, उनको अभिगृहीत करने के लिए किसी दूरी तक, न कि केवल युक्तियुक्त दूरी तक, कर सकता है और उन्हें परिबद्ध कराने के लिए काँजीहाउस ले जा सकता है और ऐसा करने में उसका बलपूर्वक विरोध करने वाला पशु अतिचार अधिनियम की धारा २४ के अधीन दण्डनीय हो जाता है। इस धारा के अधीन पशुओं का अभिग्रहण तथा परिबद्ध करना तभी वैध होता है जब पशुओं ने आरक्षित वन या संरक्षित वन के विधि पूर्णतः बन्द प्रभाग में अतिचार किया हो। **जनार्दन साहू बनाम अराखीत साहू बाद** (ए० आई० आर० १९६७ उड़ीसा १५०) के निर्णय में कहा कहा गया है कि जहाँ पशु ऐसे वन में पाए गए हों जो न तो आरक्षित वन और न संरक्षित वन का चरागाह के लिए विधितः बन्द प्रभाग बनाता है और साक्ष्य में यह भी नहीं दिखाया गया कि किसी समय भी पशु ऐसे वन में भटक गए थे तो ऐसे पशुओं का अभिग्रहण और परिबद्ध करना अवैध है।

धारा ७१—राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, निदेश दे सकेगी कि पशु अतिचार अधिनियम १८७१ की धारा १२ के अधीन नियत जुर्मानों के बदले में इस अधिनियम की धारा ७० के अधीन परिबद्ध हर पशु के लिए ऐसा जुर्माना उद्गृहीत किया जाएगा जैसा कि वह ठीक समझती है, किन्तु वह निम्नलिखित से अधिक नहीं होगा, अर्थात्—

हर हाथी के लिए	**दस रुपए**
हर भैंस या ऊँट के लिए	**दो रुपए**
हर घोड़े, खस्सी पशु, टट्टू, बछेड़े, बछेड़ी, खच्चर, साण्ड, बैल, गाय या बछड़ी के लिए	**एक रुपया**
हर बछड़े, गधे, सुअर, मेढ़े, मेढ़ी, भेड़, मेमने, बकरी या उसके मेमनों के लिए	**आठ आने**

टिप्पणी—पशु अतिचार अधिनियम की धारा १२ के अधीन जब जुर्माना नियत किया जाता है तो उसमें केवल पशु के मूल्य का ही ध्यान रखा जाता है। परन्तु यह वन को हुई क्षति के लिए पर्याप्त नहीं है। विभिन्न प्रकार के पशु वन को अधिक या कम क्षति पहुँचाते हैं। अतः इस धारा में पशु के मूल्य और उसके द्वारा की जाने वाली क्षति दोनों को ध्यान में रखकर जुर्माना नियत किया गया है।

अध्याय ११

वन अधिकारी

वन देश के आर्थिक विकास और पर्यावरण सुधार के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। ऐसे महत्त्वपूर्ण वनों का संरक्षण दक्ष वन अधिकारियों के बिना सम्भव नहीं है। इसीलिए १९५२ की राष्ट्रीय वन नीति में यह चेतावनी दी गई है कि तकनीकी ज्ञान प्राप्त वन अधिकारियों की अपर्याप्त संख्या और वन प्रबन्ध करने वालों की व्यावसायिक दक्षता में कमी से न केवल राजस्व में कमी होगी वरन् वनों का भी अवह्रास होगा जिसका परिणाम वन-उपज की घटती हुई प्राप्ति और प्राकृतिक दशाओं के प्रतिकूल परिवर्तन में दृष्टिगोचर होगा। सामान्यतया वन अधिकारी से, उसकी श्रेणी के अनुसार नीचे लिखे समस्त या कुछ कार्यों के करने की अपेक्षा की जाती है :

(i) वनवर्धन तथा वन प्रबन्ध के ज्ञान पर आधारित दक्ष व्यवस्था;

(ii) वनों का सर्वे, सीमांकन तथा उनमें मार्ग तथा भवनों का निर्माण;

(iii) वन कार्यों में किए गए व्यय का लेखा रखना;

(iv) वनों के राजस्व की वसूली; तथा

(v) वनों तथा उसकी उपज का संरक्षण।

जहाँ ऊपर लिखे प्रथम दो श्रेणियों के कार्यों के लिए केवल तकनीकी ज्ञान और तीसरी श्रेणी के कार्यों के लिए केवल नियमों का ज्ञान आवश्यक है, वहाँ शेष दो श्रेणियों के कार्यों के लिए सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ विधि सम्मत अधिकार भी चाहिए। इसलिए भारतीय वन अधिनियम १९२७ में वन अधिकारियों को आवश्यकतानुसार अधिकार ही नहीं दिए गए वरन् 'वन अधिकारियों के सम्बन्ध में' शीर्षक वाला एक अध्याय भी दिया गया है। इस अध्याय में ७२ से ७५ तक निम्नलिखित चार धाराएँ हैं :

धारा ७२ (१) राज्य सरकार किसी वन अधिकारी में निम्नलिखित सब शक्तियाँ या उनमें से कोई शक्ति विनिहित कर सकेगी, अर्थात्—

(क) किसी भूमि पर जाने और उसका सर्वेक्षण, सीमांकन और नक्शा तैयार करने की शक्ति,

(ख) साक्षियों को हाजिर होने के लिए और दस्तावेजों और सारवान् वस्तुओं को पेश करने के लिए विवश करने वाली सिविल न्यायालय की शक्तियाँ,

(ग) दण्ड प्रक्रिया संहिता १८९८ के अधीन तलाशी वारण्ट निकालने की शक्ति; और

(घ) वन विषयक अपराधों की जाँच करने और ऐसी जाँच के दौरान साक्ष्य लेने और उसे अभिलिखित करने की शक्ति।

(२) उप धारा १ के खण्ड (घ) के अधीन अभिलिखित कोई साक्ष्य मजिस्ट्रेट के सामने किसी पश्चात्वर्ती विचारण में ग्राह्य होगा, परन्तु यह तब जबकि अभियुक्त व्यक्ति की उपस्थिति में वह साक्ष्य लिया गया हो।

टिप्पणी—इस धारा का उल्लेख 'शास्ति तथा प्रक्रिया' सम्बन्धी अध्याय में पहले किया जा चुका है क्योंकि इसमें वन अपराधों में अन्वेषण के लिए वन अधिकारियों में विनिहित की जाने वाली शक्तियों का वर्णन है। ये शक्तियाँ सरकार विभिन्न पंक्ति के अधिकारियों में उनके कर्त्तव्यों को देखकर विनिहित करती है। खण्ड (क) में वर्णित शक्ति की आवश्यकता (i) अधिक्रमण की गई भूमि का नक्शा तैयार करने के लिए अभियुक्त की भूमि का सर्वेक्षण और नक्शा तैयार करने, (ii) वन विषयक अपराध से सम्बन्धित वन उपज के छिपाए जाने वाले स्थान का नक्शा तैयार करने या (iii) वन व्यवस्थापन से पूर्व तथा उसके दौरान सर्वेक्षण करने तथा नक्शा बनाने के लिए आवश्यक होती है। सामान्यतया यह शक्ति राजपत्रित अधिकारियों में विनिहित की जाती है। खण्ड (ख) में वर्णित शक्ति की आवश्यकता संरक्षित वन में विद्यमान अधिकारों की जाँच के लिए होती है। सामान्यतया यह शक्ति प्रभागीय वन अधिकारियों को दी जाती। खण्ड (ग) में वर्णित शक्ति की आवश्यकता वन अपराधों से सम्बन्धित वन-उपज ढूँढने तथा अभियोजन के दौरान उसे न्यायालय में पेश करने के लिए होती है। यह शक्ति बहुत महत्त्वपूर्ण है और यह प्रभागीय वन अधिकारी से अनिम्न पंक्ति के अधिकारी में विनिहित नहीं की जाती। इस शक्ति का प्रयोग करते समय ध्यान रखना चाहिए कि तलाशी वारण्ट दण्ड प्रक्रिया संहिता में दिए गए प्ररूप में हो। खण्ड (घ) की शक्ति वन अपराधों के अन्वेषण तथा जाँच के लिए होती है और अपराधों की संख्या को ध्यान में रखकर अराजपत्रित अधिकारियों में भी विनिहित की जाती है।

धारा ७३—सभी वन अधिकारियों को भारतीय दण्ड संहिता के अर्थान्तर्गत लोक सेवक समझा जाएगा।

धारा ७४—इस अधिनियम के अधीन किसी लोक सेवक द्वारा सद्भावपूर्वक किए गए किसी कार्य के लिए उसके विरुद्ध कोई वाद नहीं चलाया जाएगा।

टिप्पणी—'सद्भावपूर्वक' पद की परिभाषा भारतीय दण्ड संहिता में इस प्रकार की गई है कि कोई बात सद्भाव पूर्वक की गई या विश्वास की गई नहीं कही जाती जो सम्यक् सतर्कता और ध्यान के बिना की गई या विश्वास की गई हो। यद्यपि यह परिभाषा नकारात्मक है तथापि इससे स्पष्ट है कि सद्भावपूर्वक किए गए कार्य के लिए उसका सम्यक् सतर्कता और ध्यान से किया जाना आवश्यक है।

'सम्यक् सतर्कता और ध्यान' पद में सत्य का पता लगाने का वास्तविक प्रयास विवक्षित है। यदि कोई वन अधिकारी सद्भावपूर्वक कार्य करे तो व्यथित पक्षकार द्वारा उसके विरुद्ध वाद चलाने पर विधि उसकी रक्षा करती है। वामन रामचन्द्र गौण्डे उप सहायक वन संरक्षक बनाम दीपचन्द बालकिशन वाद जो पृष्ठ १०४ पर दिया गया है, इसका प्रमाण है।

धारा ७५—राज्य सरकार की लिखित अनुज्ञा के बिना, कोई वन अधिकारी मालिक या अभिकर्त्ता के रूप में इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज का व्यापार नहीं करेगा, या किसी वन के पट्टे में या किसी वन के ठेके में हितबद्ध नहीं होगा या बनेगा या चाहे ये बातें उन राज्य क्षेत्रों के, जिन पर यह अधिनियम विस्तारित होता है, अन्दर हों या बाहर हों।

ऊपर वर्णित चार धाराओं का यह तात्पर्य नहीं कि वन अधिकारियों के बारे में वन अधिनियम में केवल यही उपबन्ध हैं। वास्तव में ये उपबन्ध तो वे हैं जो और किसी अध्याय में नहीं आ सके। वन अधिनियम में वन अधिकारियों की विधिक शक्तियों, उनके विधिक संरक्षण, उनके अधिकार के विरुद्ध अपराध तथा उनके विशेष दायित्व सम्बन्धी उपबन्ध हैं।

वन अधिकारियों की विधिक शक्तियाँ

वन अधिनियम में वन अधिकारियों को नीचे लिखी विधिक शक्तियाँ मिली हैं :

(१) **वन विषयक अपराधों को निवारित करने की शक्ति**—वनों और अभिवहन के दौरान वन-उपज के संरक्षण की सर्वोत्तम रीति यही है कि अपराध यथासम्भव होने ही न दिए जाएँ। इस दृष्टि से वन अधिकारियों को वन तथा वन-उपज से सम्बन्धित अपराधों को निवारित करने के लिए निम्नलिखित शक्तियाँ मिली हैं:

(i) वन अधिनियम की धारा ६६ के अनुसार हर वन अधिकारी किसी वन विषयक अपराध के किए जाने को निवारित करेगा और निवारित करने के प्रयोजन से हस्तक्षेप कर सकेगा।

(ii) आरक्षित वनों को आग से बहुत नुकसान होता है। अतः वनों के संरक्षण के लिए वन अधिकारी उन ऋतुओं को, जिनमें ऐसे वनों में आग जलाना, रखना या ले जाना प्रतिषिद्ध हो, धारा २६ (१) (ग) के अधीन अधिसूचित कर सकता है।

(iii) धारा ४१ के अधीन बने किसी डिपो में किसी सम्पत्ति को सकटापन्न करने वाली दुर्घटना या आपात की दशा में वन अधिकारी ऐसे डिपो में, चाहे सरकार द्वारा या चाहे किसी प्राइवेट व्यक्ति द्वारा, नियोजित हर व्यक्ति से संकट टालने, नुकसान या हानि से ऐसी सम्पत्ति को बचाने के लिए धारा ४४ के अधीन सहायता

माँग सकता है और उन व्यक्तियों को ऐसी सहायता देनी पड़ेगी।

(iv) धारा ७९ के अनुसार (i) ऐसा हर व्यक्ति जो किसी आरक्षित या संरक्षित वन में किसी अधिकार का प्रयोग करता है, या (ii) जो ऐसे वन से किसी वन-उपज को लेने या इमारती लकड़ी काटने या हटाने या उसमें पशु चराने के लिए अनुज्ञात है और (iii) हर व्यक्ति जो ऐसे वन में किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा नियोजित है, (iv) ऐसे वन के समीप किसी ग्राम का हर व्यक्ति जो सरकार द्वारा नियोजित है या (v) जो समुदाय के प्रति की जाने वाली सेवाओं के लिए सरकार से उपलब्धि पाता है, ऐसे वन में किसी अपराध के किए जाने या किए जाने के आशय की जानकारी वन अधिकारी के अविलम्ब देगा, ऐसे वन में लगी आग को बुझाने तथा उसके निकट लगी आग को ऐसे वन में फैलने से रोकने के लिए तुरन्त कार्यवाही करेगा चाहे उससे इसकी अपेक्षा की गई हो या नहीं, और किसी वन अपराध को होने से रोकने, अपराध होने पर अपराधी का पता लगाने और उसे गिरफ्तार करने में वन अधिकारी द्वारा सहायता माँगे जाने पर सहायता करेगा।

(२) **अभियुक्त को वारण्ट के बिना गिरफ्तार करने की शक्ति**—धारा ६४ (१) के अनुसार कोई वन अधिकारी ऐसे किसी व्यक्ति को, जिसके विरुद्ध यह युक्तियुक्त सन्देह विद्यमान है कि वह एक मास या उससे अधिक के कारावास से दण्डनीय किसी वन विषयक अपराध से सम्पृक्त है, किसी मजिस्ट्रेट के आदेशों के और किसी वारण्ट के बिना गिरफ्तार कर सकता है। यह शक्ति वन अधिनियम के अध्याय ४ (अर्थात् संरक्षित वनों) के अधीन अपराधों पर लागू नहीं होती जब तक कि अपराध धारा ३० के खण्ड (ग) के अधीन प्रतिषिद्ध कार्य से सम्बन्धित न हो। दूसरे शब्दों में, गिरफ्तारी धारा ३० (ग) के अधीन प्रतिषेध के उल्लंघन के अपराधों में तो हो सकती है परन्तु संरक्षित वन के अन्य अपराधों में नहीं हो सकती।

(३) **किसी गिरफ्तार व्यक्ति को बन्धपत्र पर निर्मुक्त करने की शक्ति**—रेन्जर से अनिम्न पंक्ति का कोई वन अधिकारी, जिसने या जिसके अधीनस्थ ने धारा ६४ के उपबन्धों के अधीन किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया है, ऐसे व्यक्ति को इस आशय का बन्धपत्र निष्पादित कर देने पर कि जब ऐसी अपेक्षा की जाएगी वह मजिस्ट्रेट या पुलिस स्टेशन के भारसाधक अधिकारी के समक्ष उपसंजात हो जाएगा, धारा ६५ के अधीन निर्मुक्त कर सकता है।

(४) **अपराध से सम्बन्धित सम्पत्ति के अभिग्रहण की शक्ति**—जब कि यह विश्वास करने का कारण हो कि किसी वन-उपज के बारे में कोई वन विषयक अपराध किया गया है, तब ऐसी उपज, सब औजारों, नावों, छकड़ों या पशुओं सहित जिनका प्रयोग ऐसे अपराध के करने में हुआ है, किसी वन अधिकारी द्वारा धारा ५२ (१) के अधीन अभिगृहीत की जा सकती है।

(५) **अभिगृहीत सम्पत्ति को निर्मुक्त करने की शक्ति**—रेन्जर से अनिम्न पंक्ति

वाला वन अधिकारी जिसने या जिसके अधीनस्थ ने कोई औजार, नावें,छकड़े या पशु धारा ५२ के अधीन अभिगृहीत किए हैं, उन्हें उनके स्वामी द्वारा ऐसी सम्पत्ति को अधिकारिता प्राप्त मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करने का बन्धपत्र निष्पादित करने पर, धारा ५३ के अधीन निर्मुक्त कर सकता है।

(६) **धारा ७२ के अधीन विनिहित की जाने वाली शक्तियाँ**—राज्य सरकार वन अपराधों के अन्वेषण तथा अन्य कार्यों के लिए कतिपय अधिकारियों में (i) किसी भूमि पर जाने और उसका सर्वेक्षण, सीमांकन और नक्शा तैयार करने की शक्ति, (ii) साक्षियों को हाजिर होने के लिए और दस्तावेजों और सारवान् वस्तुओं को पेश करने के लिए विवश करने वाली सिविल न्यायालय की शक्तियाँ, (iii) तलाशी वारण्ट निकालने की शक्ति या, (iv) वन विषयक अपराधों की जाँच करने, साक्ष्य लेने और उन्हें अभिलिखित करने की शक्ति विनिहित कर देती है और तब वे उन्हें प्रयोग कर सकते हैं।

(७) **अपराध शमन करने की शक्ति**—राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त सशक्त वन अधिकारी धारा ६८ के अधीन अभियुक्त से प्रतिकर के रूप में कोई धन राशि तथा अभिगृहीत सम्पत्ति का मूल्य लेकर अपराध शमन कर सकता है अर्थात् इसके बाद उस व्यक्ति या उस सम्पत्ति के विरुद्ध आगे कोई कार्यवाही नहीं की जाती।

(८) **आरक्षित वनों में पथों और जलमार्गों को बन्द करने की शक्ति**—धारा २५ के अधीन वन अधिकारी को यह शक्ति है कि वह राज्य सरकार की पूर्व मंजूरी से आरक्षित वन में पथों और जल मार्गों को बन्द कर सकता है यदि इस प्रकार बन्द किए गए पथ या जल मार्ग के प्रतिस्थानी पथ या जल मार्ग विद्यमान हैं या बना दिए गए हैं।

(९) **बहती हुई या अटकी हुई इमारती लकड़ी के संग्रहण की शक्ति**—धारा ४५(२) के अनुसार बहती हुई या अटकी हुई इमारती लकड़ी को वन अधिकारी संगृहीत करा सकता है और इस प्रकार संगृहीत इमारती लकड़ी के लिए डिपो अधिसूचित कर सकता है।

(१०) **राजस्व की वसूली के लिए शक्तियाँ**—जब किसी वन-उपज के लिए कोई धन राशि देय हो तो जब तक वह चुका नहीं दी जाती तब तक वन-उपज वन अधिकारी द्वारा अपने कब्जे में ली जा सकती है। यदि शोध्य होने पर भी वह न चुकाई जावे तो वन अधिकारी उस वन-उपज की बिक्री कर उसे वसूल कर सकता है और तब भी वसूल न होने पर भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल करा सकता है। [धारा ८२ तथा ८३]

वन अधिकारियों को वन अधिनियम द्वारा प्रदत्त संरक्षण

जब वन अधिकारी अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हैं तो उनसे व्यथित

व्यक्ति उनके विरुद्ध वाद चला सकते हैं। ऐसी परिस्थिति में यदि वन अधिकारी को विधि का संरक्षण प्राप्त न हो तो वह निर्भय होकर अपनी शक्तियों का प्रयोग नहीं कर सकता। इसलिए लोक विधि में उसे संरक्षण प्रदान किया जाता है। इस संरक्षण के साथ-साथ वन अधिनियम में भी वन अधिकारी को नीचे लिखे संरक्षण प्राप्त हैं:

[i] वन अधिनियम की धारा ७३ के अधीन सभी वन अधिकारी दण्ड संहिता के अर्थों में लोक सेवक समझे जाते हैं और धारा ७४ में यह स्पष्ट लिखा है कि इस अधिनियम के अधीन किसी लोक सेवक द्वारा सद्भावपूर्वक किए गए किसी कार्य के लिए उसके विरुद्ध वाद नहीं चलाया जा सकता।

[ii] वन अधिनियम की धारा ४३ के अनुसार, धारा ४१ के अधीन स्थापित डिपो में या अन्यत्र रोकी हुई इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज को हुई किसी हानि या नुकसान के लिए कोई वन अधिकारी उत्तरदायी नहीं है जब तक कि उसने ऐसी हानि या नुकसान उपेक्षा, विद्वेष या कपट से न किया हो।

[iii] वन अधिनियम की धारा ४६ के अनुसार, धारा ४५ के अधीन संगृहीत किसी इमारती लकड़ी को हुई हानि या नुकसान के लिए कोई वन अधिकारी उत्तरदायी नहीं है जब तक कि उसने ऐसी हानि या नुकसान उपेक्षा, विद्वेष या कपट से न किया हो।

वन अधिकारियों के प्राधिकार के विरुद्ध अपराध

वन अधिकारी अपने कर्त्तव्यों का पालन सुचारु रूप से तभी कर सकते हैं जब जन साधारण उनकी विधिक शक्तियों या प्राधिकार का सम्मान करें। इसे सुनिश्चित करने के लिए वन अधिकारियों के प्राधिकार के अवमान को दण्डनीय बनाया गया है:

[i] धारा ४४ के अनुसार, धारा ४१ के अधीन स्थापित किसी डिपो में नियोजित हर व्यक्ति उस डिपो में रखी सम्पत्ति पर आए संकट को टालने और उसे नुकसान से बचाने के लिए सहायता माँगने वाले वन अधिकारी को सहायता देने के लिए आबद्ध है। यदि राज्य सरकार द्वारा बनाए नियमों में ऐसी सहायता न देने के लिए दण्ड उपबन्धित न हो तो ऐसे व्यक्ति को धारा ७७ के अधीन दण्ड दिया जा सकता है।

[ii] धारा ७६[१] में कतिपय वर्ग के व्यक्ति उस धारा में कतिपय कार्यों के लिए सहायता देने के लिए आबद्ध हैं। यदि वे ऐसी सहायता नहीं देते तो वे धारा ७६ [२] के अधीन दण्डनीय होते हैं।

वन अधिकारियों के विशेष दायित्व

वन अधिकारियों को जहाँ वन अधिनियम में इतनी शक्तियाँ और संरक्षण मिला है वहाँ उन पर निम्नलिखित विशेष दायित्व भी अधिरोपित किए हैं:

(i) वन अधिकारी अपना पूरा समय और शक्ति अपने सरकारी कार्यों में लगावें और उन पर अवैध लाभ का सन्देह न हो, इसलिए राज्य सरकार ने धारा ७५ के अधीन इनका व्यापार करना या वन-उपज के किसी ठेके या पट्टे में हितबद्ध होना प्रतिषिद्ध कर दिया है।

(ii) वन अधिकारियों को अपना कर्त्तव्य सद्भाव पूर्वक करना चाहिए। यदि कोई वन अधिकारी तंग करने के लिए या अनावश्यक रूप से किसी सम्पत्ति का अभिग्रहण इस बहाने करता है कि वह अधिहरणीय है तो वह धारा ६२ के अधीन दण्डनीय है।

अध्याय १२

समनुषंगी नियम तथा प्रकीर्ण उपबन्ध

समनुषंगी नियम (Subsidiary rules)

धारा ७६—राज्य सरकार निम्नलिखित के लिए नियम बना सकेगी—

(क) इस अधिनियम के अधीन किसी वन अधिकारी की शक्तियों और कर्तव्यों को विहित और सीमित करने के लिए,

(ख) इस अधिनियम के अधीन जुर्माना और अधिहरण के आगमों में से अधिकारियों और भेदियों को दिए जाने वाले पुरस्कारों का विनियमन करने के लिए,

(ग) सरकार के वृक्षों और इमारती लकड़ी का, जो प्राइवेट व्यक्तियों की भूमियों में उगे हुए हैं या उनके अधिभोग में हैं, संरक्षण, पुनरुत्पादन और व्ययन करने के लिए, और

(घ) साधारणतः इस अधिनियम के उपबन्धों को क्रियान्वित करने के लिए।

संशोधन

पंजाब संशोधन—पंजाब सरकार ने १९५४ के पंजाब अधिनियम संख्या २० की धारा २ के द्वारा भारतीय वन अधिनियम, १९२७ की धारा ७६ के खण्ड (ग) में 'इमारती लकड़ी' के बाद 'या अन्य वन-उपज' शब्द जोड़ दिए हैं और 'जो प्राइवेट व्यक्तियों की भूमियों में उगे हुए हैं या उनके अधिभोग में हैं' शब्द हटा दिए हैं।

हरियाणा संशोधन—जैसा पंजाब में किया गया है।

टिप्पणी—यद्यपि वन अधिनियम की कई धाराओं में नियम बनाने की शक्ति मिली है तथापि यदि किसी स्थान पर उसका लोप हो तो वहाँ के लिए धारा ७६ (क) के अधीन नियम बनाए जा सकते हैं।

धारा ७६ (ख) के अनुसार राज्य सरकार वन अधिनियम के अधीन जुर्मानों और अधिहृत वन-उपज के आगमों मे से अधिकारियों और भेदियों को दिए जाने वाले पुरस्कार के सम्बन्ध में नियम बना सकती है परन्तु यदि वन-उपज सरकार की है तो वे नियम उस पर लागू नहीं होते क्योंकि वह अधिहरणीय नहीं है। ये पुरस्कार दण्ड का भाग नहीं हैं और इनके लिए विचारण न्यायालय के आदेश की आवश्यकता नहीं। पुरस्कार तभी दिया जा सकता है जब अपराध वन अधिनियम के अधीन हो। यदि वन-उपज की चोरी के अपराध का वाद भारतीय दण्ड संहिता के अधीन

संस्थित किया गया है और दोषसिद्धि भारतीय दण्ड संहिता की धारा ३७९ के अधीन हुई है तो पुरस्कार नहीं दिया जा सकता।

धारा ७६ (ग) के अधीन केवल उन्हीं वृक्षों या वन-उपज के व्ययन के बारे में नियम बनाए जा सकते हैं जो सरकार की सम्पत्ति हो। जो वन-उपज सरकार की सम्पत्ति नहीं है उसके व्ययन के लिए नियम बनाना अधिकारातीत है। [गुलाबू बनाम सम्राट (ए० आई० आर० १९३९ लाहौर ४६९)]

धारा ७७—इस अधिनियम के अधीन किसी नियम को, जिसके उल्लंघन के लिए कोई विशेष शास्ति उपबन्धित नहीं है, भंग करने वाला कोई व्यक्ति ऐसी अवधि के कारावास से, जो एक मास तक का हो सकेगा, या जुर्माने से, जो पाँच सौ रुपए तक का हो सकेगा या दोनों से, दण्डनीय होगा।

संशोधन

मध्य प्रदेश संशोधन—मध्य प्रदेश सरकार ने १९६५ के मध्य प्रदेश अधिनियम संख्या ९ की धारा १५ के द्वारा भारतीय वन अधिनियम की धारा ७७ में 'जो एक मास तक का हो सकेगा या जुर्माने से, जो पाँच सौ रुपये तक का हो सकेगा' शब्दों के स्थान पर 'जो छह मास तक का हो सकेगा या जुर्माने से, जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा' शब्द प्रतिस्थापित किए हैं।

धारा ७८—इस अधिनियम के अधीन राज्य सरकार द्वारा बनाए गए सभी नियम राजपत्र में प्रकाशित किए जाएँगे, और तदुपरि, जहाँ तक वे इस अधिनियम से सुसंगत हैं, वहाँ तक वे इस प्रकार प्रभावशील होंगे, मानों वे इसमें अधिनियमित हुए हैं।

संशोधन

उत्तर प्रदेश संशोधन—उत्तर प्रदेश सरकार ने इण्डियन फॉरेस्ट (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम, १९६५ की धारा १५ के द्वारा भारतीय वन अधिनियम की धारा ७८ के स्थान पर नीचे लिखी नई धारा प्रतिस्थापित की है :

७८. नियमों के सम्बन्ध में अतिरिक्त उपबन्ध—(१) इस अधिनियम के अधीन सभी नियम राजपत्र में अधिसूचना द्वारा बनाए जाएँगे।

(२) इस अधिनियम के अधीन बनाए गए सभी नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशक्य शीघ्र राज्य विधान मण्डल के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब उसका सत्र हो रहा हो, कुल चौदह दिन की अवधि पर्यन्त रखे जाएंगे जो एक सत्र में या दो अथवा अधिक आनुक्रमिक सत्रों में हो सकती है और जब तक कोई बाद की तारीख नियत न की जाए, राजपत्र में प्रकाशित होने की तारीख से, ऐसे उपान्तरों तथा बातिलीकरणों के अधीन रहते हुए प्रभावी होंगे जो विधान मण्डल के दोनों सदन करने के लिए सहमत हों, किन्तु इस प्रकार का कोई उपान्तर या बातिलीकरण सम्बद्ध नियमों के अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव न डालेगा।

प्रकीर्ण उपबन्ध (Miscellaneous Provisions)

धारा ७९—(१) ऐसा हर व्यक्ति, जो किसी आरक्षित या संरक्षित वन में किसी अधिकार का प्रयोग करता है, या जो ऐसे वन से किसी वन-उपज को लेने, या इमारती लकड़ी काटने और हटाने या उसमें ढोर चराने के लिए अनुज्ञात है, और हर व्यक्ति, जो ऐसे वन में किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा नियोजित है और ऐसे वन से समीपस्थ किसी ग्राम का हर व्यक्ति, जो सरकार द्वारा नियोजित है या जो समुदाय के प्रति की जाने वाली सेवाओं के लिए सरकार से उपलब्धियाँ पाता है,

ऐसी जानकारी, जो किसी वन विषयक अपराध के किए जाने या किए जाने के आशय के विषय में उसके पास है, निकटतम वन अधिकारी या पुलिस अधिकारी को अनावश्यक विलम्ब के बिना देने के लिए आबद्ध होगा और—

(क) ऐसे वन में किसी वन अग्नि को, जिसके बारे में उसे ज्ञान या जानकारी है, बुझाने के लिए,

(ख) ऐसे वन के सामीप्य में किसी अग्नि को, जिसका उसे ज्ञान या जानकारी है, अपनी शक्ति के अनुसार किन्हीं वैध साधनों द्वारा ऐसे वन में फैल जाने से रोकने के लिए, तुरन्त कार्यवाही करेगा चाहे उससे किसी वन अधिकारी या पुलिस अधिकारी द्वारा ऐसी अपेक्षा की गई हो या नहीं, और

(ग) ऐसे वन में वन विषयक अपराध को रोकने, और

(घ) जब कि यह विश्वास करने का कारण है कि ऐसे वन में ऐसा कोई अपराध किया गया है, तब अपराधी का पता चलाने और उसे गिरफ्तार करने में,

उसकी सहायता माँगने वाले किसी वन अधिकारी या पुलिस अधिकारी की सहायता करेगा।

(२) जो कोई व्यक्ति ऐसा करने के लिए आबद्ध होते हुए विधिपूर्ण प्रतिहेतु के बिना (जिसे साबित करने का भार ऐसे व्यक्ति पर होगा)—

(क) उपधारा (१) द्वारा अपेक्षित जानकारी निकटतम वन अधिकारी या पुलिस अधिकारी को अनावश्यक विलम्ब के बिना नहीं देगा,

(ख) किसी आरक्षित या संरक्षित वन में वन अग्नि को बुझाने के लिए उपधारा (१) द्वारा यथा अपेक्षित कार्यवाही नहीं करेगा,

(ग) ऐसे वन के सामीप्य में की किसी अग्नि को ऐसे वन में फैलने से नही रोकेगा जैसा कि उपधारा (१) द्वारा अपेक्षित है, या

(घ) ऐसे वन में किसी वन अपराध का किया जाना रोकने में या उस दशा में, जिसमें कि यह विश्वास करने का कारण है कि ऐसे वन में ऐसा कोई अपराध हुआ है, अपराधी का पता चलाने और उसे गिरफ्तार करने में उसकी सहायता माँगी जाने पर किस वन अधिकारी या पुलिस अधिकारी की मदद नहीं करेगा,

वह ऐसी अवधि के कारावास से, जो एक मास तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो दो सौ रुपए तक का हो सकेगा, या दोनों से दण्डनीय होगा।

संशोधन

मध्य प्रदेश संशोधन—मध्य प्रदेश सरकार ने १९६५ के मध्यप्रदेश अधिनियम संख्या ९ की धारा १६ के द्वारा भारतीय वन अधिनियम, १९२७ की धारा ७९ की उपधारा (२) में 'जो एक मास तक की हो सकेगी या जुर्माने से, जो दो सौ रुपये तक का हो सकेगा,' शब्दों के स्थान पर 'जो छह मास तक की हो सकेगी या जुर्माने से जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा' शब्द प्रतिस्थापित किए हैं।

टिप्पणी—धारा ७९ (१) के अनुसार (i) आरक्षित या संरक्षित वन में अधिकार का प्रयोग करने वाला, (ii)ऐसे किसी वन से वन-उपज को लेने या इमारती लकड़ी काटने या हटाने या उसमें ढोर चराने के लिए अनुज्ञात, (iii) ऐसे व्यक्तियों द्वारा नियोजित, (iv) ऐसे वन के पास किसी ग्राम में रहने वाला तथा सरकार द्वारा नियोजित , या (v) समाज के प्रति की जाने वाली सेवाओं के लिए उपलब्धियाँ पाने वाला हर व्यक्ति (क) वन अपराध के किए जाने या किए जाने के आशय की जानकारी वन अधिकारी या पुलिस अधिकारी को अनावश्यक विलम्ब के बिना देने के लिए, (ख) ऐसे किसी वन में वन आग को बुझाने तथा ऐसे वन के समीप की किसी आग को उसमें फैलने से रोकने के लिए कार्यवाही करने के लिए चाहे वन अधिकारी ने उससे ऐसी अपेक्षा की हो या नहीं, (ग) ऐसे वन में किसी अपराध होने को रोकने और (घ) हो जाने पर अपराधी का पता चलाने और उसे गिरफ्तार करने में सहायता करने के लिए जब वन अधिकारी या पुलिस अधिकारी ने सहायता माँगी हो, आबद्ध है। जो व्यक्ति आबद्ध होते हुए विधिपूर्ण प्रतिहेतु के बिना (जिसे साबित करने का भार उस पर है) उर्पयुक्त कार्य नहीं करता तो वह धारा ७९ (२) के अनुसार एक मास तक के कारावास या दो सौ रुपए तक के जुर्माने या दोनों से दण्डनीय होगा।

इस धारा के अधीन दण्डित कराने के लिए यह साबित करना आवश्यक है है कि अभियुक्त धारा ७९ (१) में उल्लिखित किसी वर्ग का व्यक्ति है और उसने उन्हीं बातों में से किसी बात को नहीं किया है जिसकी धारा ७९ (१) में उससे अपेक्षा की गई थी। **सम्राज्ञी बनाम बाबाजी वाद (आई० एल० आर० २२ मुम्बई ७६९)** में अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि अभियुक्त धारा ७९(१) में वर्णित व्यक्तियों में से एक साबित नहीं किया गया और जिस प्रयोजन के लिए उससे सहायता की अपेक्षा की गई वह भी उस धारा खण्ड (क) से खण्ड (घ) में उल्लिखित प्रयोजन नहीं है तो उसकी दोषसिद्धि अवैध है।

धारा ८०-(१) यदि सरकार और कोई व्यक्ति किसी वन या बंजर भूमि में, या उसकी पूरी उपज या उसके किसी भाग में संयुक्ततः हितबद्ध हैं, तो राज्य सरकार या तो—(क) उसमें ऐसे व्यक्ति को उसके हित के लिए लेखा देते रहते हुए, ऐसे वन, बंजर भूमि या उपज का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लेगी, या (ख) इस प्रकार संयुक्ततः हितबद्ध व्यक्ति द्वारा वन, बंजर भूमि या उपज का प्रबन्ध करने के लिए

ऐसे विनियम निकाल सकेगी जैसे वह उसके प्रबन्ध और उसमें के सब पक्षकारों के हितों में आवश्यक समझती है।

(२) जब कि उपधारा (१) के खण्ड (क) के अधीन सरकार किसी वन, बंजर भूमि या उपज का प्रबन्ध अपने हाथ में लेती है, तब वह राजपत्र में अधिसूचना द्वारा यह घोषित कर सकेगी कि ऐसे वन, बंजर भूमि या उपज को अध्याय २ और ४ में अन्तर्विष्ट कोई उपबन्ध लागू होंगे और तदुपरि ऐसे उपबन्ध तदनुसार लागू होंगे।

संशोधन

उत्तर प्रदेश संशोधन—उत्तर प्रदेश सरकार ने १९५१ के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या १८ की धारा २ के द्वारा भारतीय वन अधिनियम १९२७ की धारा ८० के वाद नीचे लिखी नयी धारा अन्तःस्थापित की है :

८०-ए राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा घोषित कर सकेगी कि इस अधिनियम के अधीन या उसके उपबन्धों में से कोई उपबन्ध मार्गों के पार्श्व की या नहरों के किनारों की सब या किसी भूमि जो राज्य सरकार या किसी स्थानीय प्राधिकारी की सम्पत्ति है, पर लागू होंगे और तदुपरि ऐसे उपबन्ध तदनुसार लागू होगें।

मध्य प्रदेश संशोधन—मध्य प्रदेश सरकार ने १९६५ के मध्य प्रदेश अधिनियम संख्या ९ की धारा १७ के अनुसार भारतीय वन अधिनियम की धारा ८० के बाद निम्नलिखित नई धारा जोड़ी है :

८०-ए आरक्षित या संरक्षित वन के रूप में गठित भूमि को अनधिकृत रूप से कब्जे में लेने के लिए शास्ति—(१) कोई व्यक्ति जो धारा २० या २९ के अधीन यथा स्थिति, आरक्षित या संरक्षित वन के रूप में गठित किए गए क्षेत्रों की किसी भूमि पर अनधिकृत रूप से कब्जा करता या कब्जे में बना रहता है, इस अधिनियम के किसी अन्य उपबन्ध के अधीन उसके विरुद्ध की गई किसी अन्य कार्यवाही पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना प्रभागीय वन अधिकारी से अनिम्न पंक्ति के अधिकारी के आदेश द्वारा संक्षेपतः बेदखल किया जा सकेगा और कोई फसल जो ऐसी भूमि पर खड़ी हो या कोई निर्माण या अन्य संकर्म जो उसने उस पर बनाया हो, यदि उसके द्वारा ऐसे समय के अन्दर जो ऐसा वन अधिकारी नियत करे, नहीं हटाया गया तो समपहरणीय होंगे :

परन्तु जब तक बेदखली के लिए प्रस्थापित व्यक्ति को यह हेतुक दर्शित करने के लिए कि ऐसा आदेश क्यों न पारित किया जाए, युक्तियुक्त अवसर न दिया गया हो तब तक इस उपधारा के अधीन बेदखली का कोई आदेश पारित नहीं किया जाएगा।

(२) ऐसी समपहृत किसी सम्पत्ति का व्ययन ऐसी रीति से, जैसा वन अधि-

कारी निर्देश दे, किया जाएगा और किसी फसल, निर्माण या अन्य संकर्म के हटाने का तथा भूमि को उसकी आरम्भिक अवस्था में लाने के लिए आवश्यक सब कार्यों का खर्च धारा ८२ में उपबन्धित रीति से ऐसे व्यक्ति से वसूलीय होगा।

(३) उपधारा (१) के अधीन दिए गए वन अधिकारी के आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति ऐसी कालावधि में और ऐसी रीति से जो विहित की गई हो, ऐसे आदेश के विरुद्ध राज्य सरकार या ऐसे अधिकारी, जो राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किया गया हो, से अपील कर सकेगा और ऐसी अपील के विनिश्चय के अध्यधीन रहते हुए वन अधिकारी का आदेश अन्तिम होगा।

(४) इस धारा के उपबन्ध ऐसे क्षेत्रों में ऐसी तारीखों को, जो राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करे, लागू होंगे और भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के लिए भिन्न-भिन्न तारी ें विनिर्दिष्ट की जा सकेंगी।

टिप्पणी—सरकार और अन्य व्यक्तियों की संयुक्त सम्पत्ति के वनों के प्रबन्ध के लिए सरकार के पास दो विकल्प हैं। पहला विकल्प यह है कि वह ऐसे वन, बंजर भूमि या उपज का प्रबन्ध अपने हाथ में ले ले, उसमें अध्याय २ और ४ में अन्तर्विष्ट कोई आवश्यक उपबन्ध लागू कर दे और हितबद्ध व्यक्तियों को उनके हित का लेखा देती रहे। दूसरा विकल्प यह है कि वह संयुक्ततः हितबद्ध व्यक्ति को वन, बंजर भूमि या उपज का प्रबन्ध दे दे और उसके द्वारा किये जाने वाले प्रबन्ध के लिए विनियम बना दे।

इस धारा में 'संयुक्ततः हितबद्ध' पद महत्त्वपूर्ण है। इससे वन या उसकी उपज में संयुक्त साम्पत्तिक हित या धन सम्बन्धी हित अभिप्रेत है। इसका अर्थ इस प्रकार नहीं लगाया जा सकता कि उसमें अपने राज्य के वनों के प्रबन्ध का शासक (या सरकार) द्वारा पर्यवेक्षण और नियंत्रण करने की शक्ति समाविष्ट है। **विश्वम्भर सिंह बनाम उड़ीसा सरकार का सचिव वाद (ए० आई० आर० १९५२ उड़ीसा २८)** के निर्णय में कहा गया है कि 'हित' शब्द जब किसी सम्पत्ति या उसकी उपज के प्रति निर्देश के रूप में प्रयोग किया जाता है तब वह सामान्यतः साम्पत्तिक या धन सम्बन्धी हित को निर्दिष्ट करता है और वह अपने राज्य में स्थित समस्त सम्पत्ति पर देश या राज्य के प्रभुत्व सम्पन्न शासक की सामान्य नियंत्रक शक्ति को निर्दिष्ट नहीं करता। इसलिए अधिनियम की धारा ८० जमींदारी वनों को जिनमें जमींदारों के अनन्य अधिकार हैं और शासक या सरकार का उनमें कोई साम्पत्तिक या धन सम्बन्धी हित नहीं है, बिलकुल लागू नहीं होती।

वन अधिनियम की धारा ८० के अधीन अधिसूचना उस समय विधिमान्यतः होती है जब सरकार के किसी अन्य व्यक्ति के वन में संयुक्ततः साम्पत्तिक या धन सम्बन्धी हित हों। **महेश्वरी प्रसाद देव बनाम राज्य वाद (ए० आई० आर १९५७ उड़ीसा २१९)** के निर्णय में कहा गया कि जहाँ उड़ीसा रियासत के शासक को जमींदार को इमारती लकड़ी के दिए पट्टे में शुद्ध लाभ के आधे भाग को विनियोजित

करने का अधिकार भी था वहाँ वह अधिकार केवल प्रभुत्व सम्पन्न शासक या सरकार का अधिकार नहीं कहा जा सकता; वरन् वह एक साम्पत्तिक अधिकार है। इसलिए विलयन के बाद, जब राज्य सरकार उत्तराधिकारी है तो उस शासक के हित के लिए ऐसा नहीं कहा जा सकता कि उसका वन में कोई साम्पत्तिक या धन सम्बन्धी हित नहीं है जिससे वन अधिनियम की धारा ८० के अधीन निकाली गयी अधिसूचना अविधिमान्य बन जाए।

इस धारा के बाद कुछ राज्य सरकारों ने नई धाराएँ जोड़ी है। उत्तर प्रदेश में तो नई धारा के द्वारा वन अधिनियम के उपबन्धों को सरकार की या स्थानीय प्राधिकारी की कतिपय भूमियाँ जैसे नहरों के किनारे या मार्गों के किनारे की भूमियों पर लगाने की शक्ति राज्य सरकार को दी गई है। मध्य प्रदेश सरकार द्वारा बढ़ाई गयी नई धारा आरक्षित या संरक्षित वनों में किसी व्यक्ति द्वारा अनधिकृत रूप से किए गए कब्जे से उसे बेदखल करने से सम्बन्धित है। इस धारा के अनुसार प्रभागीय वन अधिकारी (डी० एफ० ओ०) ऐसे व्यक्ति को सुनने के बाद बेदखल कर सकता है। बेदखल किया गया आदमी राज्य सरकार से अपील कर सकता है। इस धारा में उस प्रक्रिया का भी वर्णन है जिसके द्वारा वन अधिकारी बेदखली आदेश से सम्बन्धित भूमि पर खड़ी फसल, भवन या अन्य किसी संकर्म का व्ययन करेगा।

धारा ८१—यदि कोई व्यक्ति, किसी ऐसे वन की उपज का, जो सरकार की सम्पत्ति है, या जिस पर सरकार का साम्पत्तिक अधिकार है या वन-उपज के किसी भाग के, जिसकी सरकार हकदार है, अंश का इस शर्त पर हकदार है, कि ऐसे वन से सम्बन्धित सेवा वह सम्यक् रूप से करता रहे, तो राज्य सरकार का समाधान कर देने वाले रूप में यह तथ्य सिद्ध हो जाने की दशा में कि ऐसी सेवा अब नहीं की जा रही है, ऐसा अंश अधिहरणीय हो जाएगा:

परन्तु जब तक कि राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त सम्यक् रूप से नियुक्त अधिकारी द्वारा उसके हकदार व्यक्ति की, और ऐसे साक्ष्य की, यदि कोई हो, जिसे वह ऐसी सेवा के सम्यक् रूप से किए जाने के सबूत में पेश करे, सुनवाई न की गई हो, तब तक ऐसे किसी अंश का अधिहरण नहीं होगा।

धारा ८२—इस अधिनियम या इस अधिनियम के अधीन बनाए गए किसी नियम के अधीन या किसी वन-उपज की कीमत या ऐसी उपज के सम्बन्ध में इस अधिनियम के निष्पादन में उपगत व्ययों के कारण सरकार को देय सब धन, यदि शोध्य होने पर न दिए गए हों, तत्समय प्रवृत्त विधि के अनुसार ऐसे वसूल किए जा सकेंगे मानो वे भू-राजस्व की बकाया हों।

संशोधन

मध्यप्रदेश संशोधन—मध्यप्रदेश सरकार ने १९६५ के मध्यप्रदेश अधिनियम संख्या ९ की धारा १८ के द्वारा भारतीय वन अधिनियम, १९२७ की धारा ८२ के

स्थान पर निम्न लिखित नई धारा प्रतिस्थापित की है :

८२–इस अधिनियम के या उसके अधीन बने, किन्हीं नियमों के अधीन, या इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज मद्धे, या इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज सम्बन्धी किसी संविदा के अधीन जिसमें उसके भंग के लिए उसके अधीन वसूलीय कोई रकम सम्मिलित है, या उसके रद्द करने के परिणाम स्वरूप या किसी वन अधिकारी के अधिकार से या अधीन जारी किए निविदाओं के आमंत्रण के द्वारा या नीलाम के द्वारा किए गए इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज के विक्रय सम्बन्धी किसी नोटिस के निबन्धनों के अधीन राज्य सरकार को संदेय, जुर्मानों से भिन्न, सब धन और इस अधिनियम के अधीन राज्य सरकार को अधिनिर्णीत सब प्रतिकर, यदि शोध्य होने पर न दिए गए हों, तत्समय प्रवृत्त विधि के अनुसार ऐसे वसूल किए जा सकेंगे मानो वे भू-राजस्व की बकाया हों।

हिमाचल प्रदेश संशोधन—हिमाचल प्रदेश सरकार ने १९६८ के हिमाचल प्रदेश अधिनियम संख्या २५ की धारा ५ के द्वारा भारतीय वन अधिनियम की धारा ८२ के स्थान पर निम्नलिखित नई धारा प्रतिस्थापित की है :

८२—(१) इस अधिनियम या इसके अधीन बने किसी नियम के अधीन या इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज की कीमत मद्धे या इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज के बारे में इस अधिनियम के निष्पादन से उपगत व्ययों मद्धे या इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज सम्बन्धी किसी संविदा के अधीन जिसमें उसके भंग के लिए उसके अधीन वसूलीय कोई रकम सम्मिलित है, या उसके रद्द करने के परिणाम स्वरूप या किसी वन अधिकारी के अधिकार से या के अधीन जारी किए गए निविदाओं के आमंत्रण के द्वारा या नीलाम के द्वारा किए गए इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज के विक्रय सम्बन्धी किसी नोटिस के निबन्धनों के अधीन राज्य सरकार को संदेय, जुर्मानों से भिन्न, सब धन और इस अधिनियम के अधीन राज्य सरकार को अधिनिर्णीत सब प्रतिकर, यदि शोध्य होने पर न दिए गए हों, तत्समय प्रवृत्त विधि के अनुसार ऐसे वसूल किए जा सकेंगे, मानो वे भू-राजस्व की बकाया हों।

(२) सन्देहों को हटाने के लिए, एतद्द्वारा यह घोषित किया जाता है कि, न्यायालय के किसी निर्णय, डिक्री या आदेश में कोई प्रतिकूल बात होते हुए भी उपधारा (१) के उपबन्ध वसूली के सब मामलों में जो या तो इण्डियन फॉरेस्ट (हिमाचल प्रदेश संशोधन) अधिनियम, १९६८ के प्रारम्भ के समय लम्बित हैं या ऐसे प्रारम्भ के पूर्व किए संविदा के बारे में उसके बाद शुरू किए गए हैं, लागू होंगे।

टिप्पणी—मूल धारा के अनुसार निम्नलिखित प्रकारों का सरकार को देय सब धन, यदि शोध्य होने पर न दिया जाय, भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल किया जा सकता है :

(i) इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए किसी नियम के अधीन देय धन,

(ii) किसी वन-उपज की कीमत के कारण देय धन, या

(iii) ऐसी उपज के सम्बन्ध में इस अधिनियम के निष्पादन में उपगत व्ययों के कारण देय धन।

इसलिए जहाँ देय धन इस धारा के निबन्धनों के अन्तर्गत नहीं आता, तो सरकार को केवल यही उपचार उपलब्ध है कि वह उसकी वसूली के लिए नियमित वाद चलाए।

यदि कोई व्यक्ति कोई लौट खरीदता है और वन-उपज के विक्रय की संविदा के विलेख पर हस्ताक्षर करता है तो उस लौट के असंदत्त मूल्य के लिए इस धारा के अधीन कार्यवाही की जा सकती है। **मुलमचन्द रतीलाल असाठी बनाम मध्यप्रदेश वाद (ए० आई० आर० १९६० मध्यप्रदेश १५२)** में अभिनिर्धारित किया गया कि जो अनुबन्ध निष्पादित किया गया था, उसका शीर्षक 'वन-उपज के क्रय और विक्रय की संविदा का विलेख' था। इसलिए अभिलेख की सम्पूर्ण भाषा स्पष्ट रूप से यह दिखाती हैं कि व्ययन विक्रय के रूप में किया गया था। अतः शोध्य रकम इस अधिनियम की धारा ८२ के अर्थ के अन्तर्गत वन-उपज की कीमत के कारण थी। इसी प्रकार का निर्णय **जोगेन्द्रलाल साहा बनाम बिहार राज्य वाद** (ए० आई० आर० १९७३ पटना ९८) में दिया गया क्योंकि ठेकेदार पर कुछ किश्तें बकाया थीं। वन लौटों के विक्रय में लौटों की कीमत के अतिरिक्त बिक्री कर भी वसूल किया जाता है। **ओरिएन्ट पेपर मिल्स बनाम मध्यप्रदेश सरकार वाद** (१९७१ मध्यप्रदेश लॉ जनरल ५६०) के निर्णय में कहा है कि बिक्री कर वन अधिकारियों द्वारा माल-विक्रय अधिनियम १९३० की धारा ६४ (ब) के अधीन वन-उपज की कीमत के भाग के रूप में वसूलीय हैं। अतः भारतीय वन अधिनियम, १९२७ की धारा ८२ के अधीन भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल किया जा सकता है।

परन्तु यदि विक्रय नियमों के भंग के कारण दुबारा नीलाम किया जाए और उस नीलाम में पहले नीलाम की तुलना में कीमत कम मिले तो उस कमी को धारा ८२ के अधीन भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल नहीं किया जा सकता। **गोवर्धन दास कैलाशनाथ बनाम कलक्टर मिर्जापुर वाद (ए० आई० आर० १९५६ इलाहाबाद ७२१)** के निर्णय में कहा गया कि विक्रेता को नोटिस देने के पश्चात् वन-उपज के पुर्नविक्रय पर होने वाली कमी के लिए सरकार का दावा माल विक्रय अधिनियम १९३० की धारा ५४ के अधीन नुकसानी की प्रकृति का होने के कारण असंदत्त कीमत नहीं है और इसलिये वन अधिनियम की धारा ८२ के अधीन भू-राजस्व के रूप में उसकी वसूली वैध नहीं है। इसी प्रकार का निर्णय **बालादत्त बनाम भारत का संघ वाद (ए० आई० आर० १९६० हिमाचल प्रदेश ३०), मध्य प्रदेश सरकार बनाम नागरमल भगवान दास वाद (ए० आई० आर० १९६३ मध्य प्रदेश २०५), जे० ए० दालमेट बनाम मैसूर राज्य वाद (ए० आई० आर० १९६५ मैसूर १०९), उत्तर प्रदेश सरकार बनाम दीवानचन्द वाद (१९७३ इलाहाबाद लॉ जरनल**

३०६), तथा वीरेन्द्र कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य वाद (ए० आई० आर० १६८० इलाहाबाद १००) में भी दिया गया है।

पुर्नविक्रय की दशा में कमी की वसूली की इन कठिनाइयों को देखते हुए मध्य प्रदेश सरकार ने १६६५ के मध्य प्रदेश अधिनियम संख्या ६ की धारा १८ के द्वारा वन अधिनियम की धारा ८२ के स्थान पर एक नई धारा प्रतिस्थापित की। इस संशोधित धारा के अनुसार (i) अधिनियम या उसके अधीन बने नियमों के अधीन, (ii) इमारती लकड़ी तथा अन्य वन-उपज सम्बन्धी संविदा के अधीन जिसमें उसके भंग के लिए उसके अधीन वसूलीय रकम भी है, (iii) या उसके रद्द करने के परिणाम स्वरूप (iv) या वन अधिकारी के अधिकार से जारी किए गए निविदाओं के आमन्त्रण के द्वारा या नीलाम के द्वारा इमारती लकड़ी या अन्य वन-उपज के विक्रय सम्बन्धी किसी नोटिस के निबन्धनों के अधीन राज्य सरकार को संदेय (जुर्माने से भिन्न) सब धन और (v) इस अधिनियम के अधीन राज्य सरकार को अधिनिर्णीत सब प्रतिकर, यदि शोध्य होने पर न दिए जाएँ तो वे भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल किए जा सकते हैं। इस प्रतिस्थापित धारा के परिणाम-स्वरूप बोली बोलने या निविदा देने के बाद विक्रय नियमों का अपालन, विक्रय संविदाओं का भंग, पुर्नविक्रय में होने वाली कमी आदि सब तरह के मामले इस संशोधित धारा की परिधि में आ गए। इसी के परिणाम स्वरूप **साधूलाल बनाम मध्य प्रदेश वाद** (१६७१ इलाहबाद लॉ जरनल १२६६) में अभिनिर्धारित किया गया कि इस मामले में अर्जीदार और मध्य प्रदेश सरकार में संविदा उसी समय पूरी हो गयी जब प्रतिग्रहण का पत्र २८ अप्रैल ६६ को डाक में डाला गया और अर्जीदार का १३ मई ६६ को अपनी निविदा वापिस लेना उसे कोई लाभ नहीं पहुँचा सकता। मध्य प्रदेश विधान मण्डल द्वारा यथा संशोधित वन अधिनियम की धारा ८२ के अधीन सरकार उपगत हानि को भू-राजस्व के बकाया रूप में वसूल कर सकती है।

धारा ८३—(१) जब कि किसी वन-उपज के लिए या उसके सम्बन्ध में ऐसा कोई धन देय है, तब उसकी राशि ऐसी उपज पर प्रथम भार समझी जाएगी और जब तक कि ऐसी राशि चुका नहीं दी जाए तब तक के लिए ऐसी उपज वन अधिकारी द्वारा अपने कब्जे में ली जा सकेगी।

(२) यदि जब यह राशि शोध्य होती है तब चुका नहीं दी जाती तो वन अधिकारी ऐसी उपज का लोक नीलाम द्वारा विक्रय कर सकेगा और विक्रय के आगमों को प्रथमतः ऐसी राशि चुकाने में प्रयुक्त किया जाएगा।

(३) यदि कोई अतिशेष रहे तो उस दशा में जिसमें कि उसके लिए हकदार व्यक्ति द्वारा दावा विक्रय की तारीख से दो मास के अन्दर नहीं किया जाता, वह सरकार को समपहृत हो जाएगा।

टिप्पणी—इस धारा की उपधारा (१) के अनुसार यदि किसी वन-उपज के लिए कोई धन देय हो तो उसकी राशि उस उपज पर प्रथम भार समझी जाती है

और जब तक ऐसी राशि चुका नहीं दी जाती तब तक वन अधिकारी उस वन-उपज को अपने कब्जे में रख सकता है। उपधारा (२) के अनुसार यदि शोध्य होने पर वह राशि नहीं चुकायी जाती तो वन अधिकारी उस वन-उपज को लोक नीलाम द्वारा बेचकर ऐसी राशि को चुकाने में प्रयुक्त कर सकता है। ऐसा करने पर वन अधिनियम की धारा ८३ के अधीन औचित्य का तर्क पहली बार अपील में नहीं उठाया जा सकता। धारा ८३ स्पष्ट रूप से उपबन्ध करती है कि विक्रय के आगमों को प्रथमतः शोध्य धन को चुकाने में प्रयुक्त किया जाएगा। (**चण्डीराम करण सिंह बनाम सैक्रेटरी आफ स्टेट–ए० आई० आर० १९१५ सिंध ३९**)। एक अन्य वाद— **वीरेन्द्र कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य वाद** (**ए० आई० आर० १९८० इलाहाबाद** १००) में यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि धारा ८२ तथा धारा ८३ दोनों में कार्यवाही एक साथ हो सकती है।

इस धारा में यह कहा गया है कि यदि किसी वन-उपज के लिए या उसके सम्बन्ध में कोई धन देय हो तो उसकी राशि ऐसी उपज पर प्रथम भार होती है और यदि शोध्य होने पर वह न चुकायी जावे तो वन अधिकारी उस उपज को बेच सकता है। इससे स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा ८३ के अधीन प्रदत्त विक्रय के अधिकार का प्रयोग सरकार को देयधन की वसूली के लिए केवल उसी वन-उपज पर किया जा सकता है जिसके लिए या जिसके बारे में ऐसा धन देय हो। यह अधिकार किसी अन्य वन-उपज से सम्बन्धित या किसी पुरानी बकाया की वसूली के लिए उपयोग में नहीं लाया जा सकता। दूसरे शब्दों में, जिस वन-उपज से सम्बन्धित बकाया नहीं है वह इस धारा के अधीन नहीं बेची जा सकती। **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम रघुवीर सहाय वाद** (ए० **आई० आर०** १९७२ **इलाहाबाद** ५५५) में अभिनिर्धारित किया गया है कि देय धन पुराने संव्यवहारों के बारे में था और वह केवल वन अधिनियम की धारा ८२ सपठित राजस्व वसूली अधिनियम १८९० में उपबन्धित रीति से ही वसूल हो सकता है। पुराने संव्यवहारों से सम्बन्धित बकाया की वसूली के लिए वन अधिकारी वन अधिनियम की धारा ८३ के उपबन्धों के अधीन (किसी वर्तमान लाट के) काष्ठ के स्टाक को नहीं बेच सकता था।

यदि क्रेता विक्रय मूल्य की किस्तें नहीं देता है तो ठेके का पर्यवसान करके कटे लट्ठे, इमारती लकड़ी और कभी-कभी खड़े वृक्ष भी बेच दिए जाते हैं। ऐसे विक्रय में यदि अधिक धन मिले तो उस पर धारा (३) के अनुसार पूर्व क्रेता का हक हो सकता है। यह हक किस दशा में होता है, क्या खड़े वृक्षों का मूल्य भी पुनर्विक्रय में लगाना चाहिए आदि प्रश्नों का उत्तर **पश्चिम बंगाल राज्य बनाम नरेन्द्र नाथ राय वाद** (ए० **आई० आर०** १९५८ **कलकत्ता २१**) में दिया गया है। इस मामले में वादी ने एक नीलाम में कुछ वृक्ष खरीदे। किस्तों के न चुकाने के कारण विभाग ने ठेके के करार का पर्यवसान करके कटे हुए लट्ठों को कब्जे में ले लिया। लट्ठों के विक्रय से बकाया पूरी वसूल नहीं हुई। **विभाग ने खड़े वृक्ष** जब

बेचे तो धन अधिक हो गया और अतिशेष के लिए वादी ने दावा किया। तब यह अभिनिर्धारित किया गया—

(i) विक्रय के करार के अधीन वादी द्वारा काटे गए वृक्षों का हक तो वादी को संक्रान्त हो गया था क्योंकि एक अन्य वाद में न्यायमूर्ति पार्कर के निर्णय के अनुसार जब क्रेता कुछ वृक्षों को काट देता है तो ऐसी कटी हुई इमारती लकड़ी पर विधिक अधिकार निश्चित रूप से क्रेता का होता है और जहाँ तक उस इमारती लकड़ी से सम्बधित लाइसैन्स का है वह विधि में अप्रतिसंहरणीय है। इस प्रकार उसके द्वारा काटे गए वृक्षों में वादी का अविशिर्ष्टीय अधिकार सरकार के करार के अधीन उन्हें कुर्क और अभिग्रहण करने के अधिकार के अध्यधीन था। धारा ८३ (१) के अनुसार वादी पर बकाया ९७०० रुपए की धनराशि उन लट्ठों पर प्रथम भार थी और चूंकि उनका विक्रय मूल्य ९७०० रुपयों से कम था, अतः अतिशेष देने का प्रश्न ही नहीं था।

(ii) खड़े वृक्षों का हक तो वादी को संक्रान्त ही नहीं हुआ था। अतः तीसरे व्यक्ति को किए गए इन वृक्षों के दूसरे पुनर्विक्रय में मिले १०,१७० रुपए की धनराशि अतिशेष के अवधारण के लिए इसलिए नहीं लगाई जा सकती क्योंकि करार के अधीन उनको काटने का अधिकार वह खो चुका था और उन पर उसका कोई हक नहीं था। इसी निर्णय में यह भी कहा गया कि अतिशेष का दावा भी विक्रय की तारीख के २ महीने के अन्दर होना चाहिए। अतिशेष के लिए पुनर्विक्रय के सात वर्ष बाद किया गया दावा वन अधिनियम की धारा ८२ (३) के अर्थ के अन्तर्गत दावा नहीं है।

धारा ८४—जब कभी राज्य सरकार को ऐसा प्रतीत होता है कि इस अधिनियम के प्रयोजनों में से किसी प्रयोजन के लिए कोई भूमि अपेक्षित है, तो ऐसी भूमि के बारे में यह समझा जाएगा कि भूमि अर्जन अधिनियम १८९४ की धारा ४ के अर्थ के अन्दर उसकी लोक प्रयोजन के लिए आवश्यकता है।

संशोधन

पंजाब संशोधन—पंजाब राज्य ने १९६२ के पंजाब अधिनियम संख्या १३ की धारा ६ के द्वारा भारतीय वन अधिनियम १९२७ की धारा ८४ के बाद निम्नलिखित नई धारा अन्तः स्थापित की है :

८४-ए कावेनेन्टिग राज्यों के व्यवस्थापन आदि की विधिमान्यता—सन्देहों को हटाने के लिए एतद्द्वारा यह घोषित किया जाता है कि २० अगस्त १९४८ से पूर्व धारा १ की उपधारा (२-ए) में निर्देशित राज्य क्षेत्रों के भाग रूप कावेनेन्टिग राज्य की सरकार के प्राधिकार के अधीन, किन्हीं व्यक्तियों के किन्हीं दावों या अधिकारों के बारे में, जिनके किसी वन या बंजर भूमि, जो उस सरकार की सम्पत्ति हो, या जिस पर उस राज्य के साम्पत्तिक अधिकार हैं या जिसकी पूरी वन-उपज या उसके किसी भाग की वह सरकार हकदार है, में अस्तित्व में होने की बात उस राज्य सरकार ने मंजूर करली है, की गई प्रत्येक व्यवस्था या इन्तजाम, दावों और

अधिकारों का इस अधिनियम के अधीन व्यवस्थापन समझा जाएगा और ऐसे सब दावे तथा अधिकार इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए सम्यक् रूप से जाँच किए गए और मंजूर किए गए दावे तथा अधिकार समझे जाएँगे और पटियाला वन अधिनियम १९९९ (BK) के प्रयोजनों के लिए इस प्रकार जाँच किए गए और मंजूर किए गए हमेशा समझे जाएँगे और किसी वन या बंजर भूमि को आरक्षित या संरक्षित वन या प्रथम या द्वितीय वर्ग का वन घोषित करने के लिए, यथास्थिति, अध्याय २ और ४ के अनुसार व्यक्तियों के अधिकारों का अवधारण आवश्यक नहीं होगा और कभी आवश्यक नहीं समझा जाएगा।

हरियाणा तथा हिमाचल प्रदेश संशोधन—पंजाब के संशोधन के समान संशोधन किया गया है।

धारा ८५—जब कि कोई व्यक्ति, इस अधिनियम के किसी उपबन्ध के अनुसार या उसके अधीन बनाए गए किसी नियम के अनुपालन में, किसी बन्धपत्र या लिखत द्वारा किसी कर्त्तव्य या कार्य के पालन के लिए, अपने को आबद्ध करता है या किसी बन्धपत्र या लिखत द्वारा प्रसंविदा करता है कि मैं और मेरे सेवक और अभिकर्त्तागण किसी कार्य से प्रविरत रहेंगे, तब भारतीय संविदा अधिनियम, १८७२ की धारा ७४ में किसी बात के होते हुए भी ऐसे बन्धपत्र या लिखत में जो राशि उसकी शर्तों के भंग होने की दशा में दी जाने वाली राशि के रूप में वर्णित है, ऐसे भंग होने की दशा में उस समस्त राशि को ऐसे वसूल किया जा सकेगा मानों वह भू-राजस्व की बकाया हो।

धारा ८५ क–इस अधिनियम की कोई बात, किसी राज्य सरकार को, उस राज्य में निहित न हुई सम्पत्ति के सम्बन्ध में कोई आदेश देने या कोई कार्य करने के लिए या सम्पृक्त सरकार की सम्मति के बिना केन्द्रीय सरकार या किसी अन्य राज्य सरकार के किन्हीं अधिकारों पर अन्यथा प्रतिकूल प्रभाव डालने के लिए प्राधिकृत नहीं करेगी।

टिप्पणी—इस धारा का तात्पर्य यह है कि कोई राज्य सरकार कोई ऐसा आदेश नहीं दे सकती या ऐसा कार्य नहीं कर सकती जो ऐसी वन-उपज पर, जो उसमें निहित नहीं है या किसी अन्य सरकार या केन्द्रीय सरकार के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले। यह धारा विधि अनुकूलन आदेश १९५० के द्वारा केन्द्रीय या अन्य सरकारों के अधिकारों को बचाने के लिए वन अधिनियम की पूर्ववर्ती धारा ८५ क के स्थान पर प्रतिस्थापित की गई थी। पर इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि अधिनियम की अन्य धाराएँ भी केवल उसी वन-उपज से सम्बन्धित हैं जो सरकार की सम्पत्ति हैं। **काशीप्रसाद साहू बनाम उड़ीसा राज्य वाद(ए. आई.आर.१९६३ उड़ीसा २४)** के निर्णय में कहा गया है कि इस धारा का इस प्रश्न से पूर्णरूप से कोई सम्बन्ध नहीं है कि क्या अधिनियम की अन्य धाराएँ, अर्थान्वयन के विषय के रूप में, केवल उसी वन-उपज पर, जो सरकार की सम्पत्ति है, लागू होने वाली समझी जाएं?